ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

आश्रमवासिकपर्व

(आश्रमवासपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

भाइयोंसहित युधिष्ठिर तथा कुन्ती आदि देवियोंके द्वारा धृतराष्ट्र और गान्धारीकी सेवा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उनकी लीलाओं-का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये॥

जनमेजय उवाच

प्राप्य राज्यं महात्मानः पाण्डवा मे पितामहाः।
कथमासन् महाराज्ञि धृतराष्ट्रे महात्मनि॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! मेरे प्रपितामह महात्मा पाण्डव अपने राज्यपर अधिकार प्राप्त कर लेनेके बाद महाराज धृतराष्ट्रके प्रति कैसा बर्ताव करते थे?॥ १ ॥

स तु राजा हतामात्यो हतपुत्रो निराश्रयः।
कथमासीद्धतैश्वर्यो गान्धारी च यशस्विनी॥ २ ॥

राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्री और पुत्रोंके मारे जानेसे निराश्रय हो गये थे। उनका ऐश्वर्य नष्ट हो गया था। ऐसी अवस्थामें वे और यशस्विनी गान्धारी देवी किस प्रकार जीवन व्यतीत करते थे॥ २ ॥

कियन्तं चैव कालं ते मम पूर्वपितामहाः।
स्थिता राज्ये महात्मानस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३ ॥

मेरे पूर्वपितामह महात्मा पाण्डव कितने समयतक अपने राज्यपर प्रतिष्ठित रहे? ये सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

प्राप्य राज्यं महात्मानः पाण्डवा हतशत्रवः।
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य पृथिवीं पर्यपालयन्॥ ४ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! जिनके शत्रु मारे गये थे, वे महात्मा पाण्डव राज्य पानेके अनन्तर राजा धृतराष्ट्रको ही आगे रखकर पृथ्वीका पालन करने लगे॥ ४॥

धृतराष्ट्रमुपातिष्ठद् विदुरः संजयस्तथा।
वैश्यापुत्रश्च मेधावी युयुत्सुः कुरुसत्तम॥ ५ ॥

कुरुश्रेष्ठ! विदुर, संजय तथा वैश्यापुत्र मेधावी युयुत्सु—ये लोग सदा धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित रहते थे॥ ५ ॥

पाण्डवाः सर्वकार्याणि सम्पृच्छन्ति स्म तं नृपम्।
चक्रुस्तेनाभ्यनुज्ञाता वर्षाणि दश पञ्च च॥ ६ ॥

पाण्डवलोग सभी कार्योंमें राजा धृतराष्ट्रकी सलाह पूछा करते थे और उनकी आज्ञा लेकर प्रत्येक कार्य करते थे। इस तरह उन्होंने पंद्रह वर्षोंतक राज्यका शासन किया॥ ६॥

सदा हि गत्वा ते वीराः पर्युपासन्त तं नृपम्।
पादाभिवादनं कृत्वा धर्मराजमते स्थिताः॥ ७ ॥

वीर पाण्डव प्रतिदिन राजा धृतराष्ट्रके पास जा उनके चरणोंमें प्रणाम करके कुछ कालतक उनकी सेवामें बैठे रहते थे और सदा धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञाके अधीन रहते थे॥

ते मूर्ध्नि समुपाघ्राताः सर्वकार्याणि चक्रिरे।
कुन्तिभोजसुता चैव गान्धारीमन्ववर्तत॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र भी स्नेहवश पाण्डवोंका मस्तक सूँघकर जब उन्हें जानेकी आज्ञा देते, तब वे आकर सब कार्य किया करते थे। कुन्तीदेवी भी सदा गान्धारीकी सेवामें लगी रहती थीं॥

द्रौपदी च सुभद्रा च याश्चान्याः पाण्डवस्त्रियः।
समां वृत्तिमवर्तन्त तयोः श्वश्र्वोर्यथाविधि॥ ९ ॥

द्रौपदी, सुभद्रा तथा पाण्डवोंकी अन्य स्त्रियाँ भी कुन्ती और गान्धारी दोनों सासुओंकी समान भावसे विधिवत् सेवा किया करती थीं॥ ९ ॥

शयनानि महार्हाणि वासांस्याभरणानि च।
राजार्हाणि च सर्वाणि भक्ष्यभोज्यान्यनेकशः॥ १० ॥
युधिष्ठिरो महाराज धृतराष्ट्रेऽभ्युपाहरत्।
तथैव कुन्ती गान्धार्यां गुरुवृत्तिमवर्तत॥ ११ ॥

महाराज ! राजा युधिष्ठिर बहुमूल्य शय्या, वस्त्र, आभूषण तथा राजाके उपभोगमें आने योग्य सब प्रकारके उत्तम पदार्थ एवं अनेकानेक भक्ष्य, भोज्य पदार्थ धृतराष्ट्रको अर्पण किया करते थे । इसी प्रकार कुन्तीदेवी भी अपनी सासकी भाँति गान्धारीकी परिचर्या किया करती थीं ॥

विदुरः संजयश्चैव युयुत्सुश्चैव कौरव ।
उपासते स्म तं वृद्धं हतपुत्रं जनाधिपम् ॥ १२ ॥

कुरुनन्दन ! जिनके पुत्र मारे गये थे, उन बूढ़े राजा धृतराष्ट्रकी विदुर, संजय और युयुत्सु—ये तीनों सदा सेवा करते रहते थे ॥ १२ ॥

श्यालो द्रोणस्य यश्चासीद् दयितो ब्राह्मणो महान् ।
स च तस्मिन् महेष्वासः कृपः समभवत् तदा ॥ १३ ॥

द्रोणाचार्यके प्रिय साले महान् ब्राह्मण महाधनुर्धर कृपाचार्य तो उन दिनों सदा धृतराष्ट्रके ही पास रहते थे ॥ १३ ॥

व्यासश्च भगवान् नित्यमासांचक्रे नृपेण ह ।
कथाः कुर्वन् पुराणर्षिर्देवर्षिपितृरक्षसाम् ॥ १४ ॥

पुरातन ऋषि भगवान् व्यास भी प्रतिदिन उनके पास आकर बैठते और उन्हें देवर्षि, पितर तथा राक्षसोंकी कथाएँ सुनाया करते थे ॥ १४ ॥

धर्मयुक्तानि कार्याणि व्यवहारान्वितानि च ।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो विदुरस्तान्यकारयत् ॥ १५ ॥

धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुरजी उनके समस्त धार्मिक और व्यावहारिक कार्य करते-कराते थे ॥ १५ ॥

सामन्तेभ्यः प्रियाण्यस्य कार्याणि सुबहून्यपि ।
प्राप्यन्तेऽर्थैः सुलघुभिः सुनयाद् विदुरस्य वै ॥ १६ ॥

विदुरजीकी अच्छी नीतिके कारण उनके बहुतेरे प्रिय कार्य थोड़े खर्चमें ही सामन्तों (सीमावर्ती राजाओं) से सिद्ध हो जाया करते थे ॥ १६ ॥

अकरोद् बन्धमोक्षं च वध्यानां मोक्षणं तथा ।
न च धर्मसुतो राजा कदाचित् किंचिदब्रवीत् ॥ १७ ॥

वे कैदियोंको कैदसे छुटकारा दे देते और वधके योग्य मनुष्योंको भी प्राणदान देकर छोड़ देते थे; किंतु धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर इसके लिये उनसे कभी कुछ कहते नहीं थे ॥ १७ ॥

विहारयात्रासु पुनः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
सर्वान् कामान् महातेजाः प्रददावम्बिकासुते ॥ १८ ॥

महातेजस्वी कुरुराज युधिष्ठिर विहार और यात्राके अवसरोंपर राजा धृतराष्ट्रको समस्त मनोवाञ्छित वस्तुओंकी सुविधा देते थे ॥ १८ ॥

आरालिकाः सूपकारा रागखाण्डविकास्तथा ।
उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं यथा पुरा ॥ १९ ॥

राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें पहलेकी ही भाँति उक्त अवस[र] पर भी रसोईके काममें निपुण आरालिक[1], सूपकार[2] औ[र] रागखाण्डविक[3] मौजूद रहते थे ॥ १९ ॥

वासांसि च महार्हाणि माल्यानि विविधानि च ।
उपाजह्रुर्यथान्यायं धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः ॥ २०

पाण्डवलोग धृतराष्ट्रको यथोचित रूपसे बहुमूल्य व[स्त्र] और नाना प्रकारकी मालाएँ भेंट करते थे ॥ २० ॥

मैरेयकाणि मांसानि पानकानि लघूनि च ।
चित्रान् भक्ष्यविकारांश्च चक्रुस्तस्य यथा पुरा ॥ २१

वे उनकी सेवामें पहलेकी ही भाँति सुखभोगप्रद फल[,] गूदे, हल्के पानक (मीठे शर्बत) और अन्यान्य विचि[त्र] प्रकारके भोजन प्रस्तुत करते थे ॥ २१ ॥

ये चापि पृथिवीपालाः समाजग्मुस्ततस्ततः ।
उपातिष्ठन्त ते सर्वे कौरवेन्द्रं यथा पुरा ॥ २२

भिन्न-भिन्न देशोंसे जो-जो भूपाल वहाँ पधारते थे, सब पहलेकी ही भाँति कौरवराज धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थि[त] होते थे ॥ २२ ॥

कुन्ती च द्रौपदी चैव सात्वती च यशस्विनी ।
उलूपी नागकन्या च देवी चित्राङ्गदा तथा ॥ २३
धृष्टकेतोश्च भगिनी जरासंधसुता तथा ।
एताश्चान्याश्च बह्व्यो वै योषितः पुरुषर्षभ ॥ २४
किंकराः पर्युपातिष्ठन् सर्वाः सुबलजां तथा ।

पुरुषप्रवर ! कुन्ती, द्रौपदी, यशस्विनी सुभद्रा, नाग[-] कन्या उलूपी, देवी चित्राङ्गदा, धृष्टकेतुकी बहिन तथा जर[ा-] संधकी पुत्री—ये तथा कुरुकुलकी दूसरी बहुत-सी स्त्रि[याँ] दासीकी भाँति सुबलपुत्री गान्धारीकी सेवामें लगी रहती थीं

यथा पुत्रवियुक्तोऽयं न किंचिद् दुःखमाप्नुयात् ॥ २५
इति तानन्वशाद् भ्रातॄन् नित्यमेव युधिष्ठिरः ।

राजा युधिष्ठिर सदा भाइयोंको यह उपदेश देते [थे] कि 'बन्धुओ ! तुम ऐसा बर्ताव करो, जिससे अपने पुत्रों[से] बिछुड़े हुए इन राजा धृतराष्ट्रको किंचिन्मात्र भी दुः[ख] न प्राप्त हो' ॥ २५½ ॥

एवं ते धर्मराजस्य श्रुत्वा वचनमर्थवत् ॥ २६ ॥
सविशेषमवर्तन्त भीममेकं तदा विना ।

धर्मराजका यह सार्थक वचन सुनकर भीमसेनको छो[ड़कर]

---

१. 'अरा' नामक शस्त्रसे काटकर बनाये जानेके कारण साग[-] भाजी आदिको 'अरालु' कहते हैं । उसको सुन्दर रीतिसे तैया[र] करनेवाले रसोइये 'आरालिक' कहलाते हैं। २. दाल आदि बनानेवा[ले] सामान्यतः सभी रसोइयोंको 'सूपकार' कहते हैं । ३. पीपल, सों[ठ] और चीनी मिलाकर मूँगका रसा तैयार करनेवाले रसोइ[ये] 'रागखाण्डविक' कहलाते हैं ।

अन्य सभी भाई धृतराष्ट्रका विशेष आदर-सत्कार करते थे ॥ २६½ ॥

न हि तत् तस्य वीरस्य हृदयादपसर्पति ।
धृतराष्ट्रस्य दुर्बुद्ध्या यद् वृत्तं द्यूतकारितम् ॥ २७ ॥

वीरवर भीमसेनके हृदयसे कभी भी यह बात दूर नहीं होती थी कि जूएके समय जो कुछ भी अनर्थ हुआ था, वह धृतराष्ट्रकी ही खोटी बुद्धिका परिणाम था ॥ २७ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

पाण्डवोंका धृतराष्ट्र और गान्धारीके अनुकूल बर्ताव

वैशम्पायन उवाच

एवं सम्पूजितो राजा पाण्डवैरम्बिकासुतः ।
विजहार यथापूर्वमृषिभिः पर्युपासितः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार पाण्डवोंसे भलीभाँति सम्मानित हो अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र पूर्ववत् ऋषियोंके साथ गोष्ठी-सुखका अनुभव करते हुए वहाँ सानन्द निवास करने लगे ॥ १ ॥

ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च प्रददौ स कुरूद्वहः ।
तच्च कुन्तीसुतो राजा सर्वमेवान्वपद्यत ॥ २ ॥

कुरुकुलके स्वामी महाराज धृतराष्ट्र ब्राह्मणोंको देनेयोग्य अग्रहार (माफी जमीन) देते थे और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर सभी कार्योंमें उन्हें सहयोग देते थे ॥ २ ॥

आनृशंस्यपरो राजा प्रीयमाणो युधिष्ठिरः ।
उवाच स तदा भ्रातॄनमात्यांश्च महीपतिः ॥ ३ ॥
मया चैव भवद्भिश्च मान्य एष नराधिपः ।
निदेशे धृतराष्ट्रस्य यस्तिष्ठति स मे सुहृत् ॥ ४ ॥
विपरीतश्च मे शत्रुर्नियम्यश्च भवेन्नरः ।

राजा युधिष्ठिर बड़े दयालु थे । वे सदा प्रसन्न रहकर अपने भाइयों और मन्त्रियोंसे कहा करते थे कि 'ये राजा धृतराष्ट्र मेरे और आपलोगोंके माननीय हैं । जो इनकी आज्ञाके अधीन रहता है, वही मेरा सुहृद् है । विपरीत आचरण करनेवाला मेरा शत्रु है । वह मेरे दण्डका भागी होगा ॥ ३-४½ ॥

पितृवृत्तेषु चाहःसु पुत्राणां श्राद्धकर्मणि ॥ ५ ॥
सुहृदां चैव सर्वेषां यावदस्य चिकीर्षितम् ।

'पिता आदिकी क्षयाह तिथियोंपर तथा पुत्रों और समस्त सुहृदोंके श्राद्धकर्ममें राजा धृतराष्ट्र जितना धन खर्च करना चाहें, वह सब इन्हें मिलना चाहिये' ॥ ५½ ॥

ततः स राजा कौरव्यो धृतराष्ट्रो महामनाः ॥ ६ ॥
ब्राह्मणेभ्यो यथार्हेभ्यो ददौ वित्तान्यनेकशः ।
धर्मराजश्च भीमश्च सव्यसाची यमावपि ॥ ७ ॥
तत् सर्वमन्ववर्तन्त तस्य प्रियचिकीर्षया ।

तदनन्तर महामना कुरुकुलनन्दन राजा धृतराष्ट्र उक्त अवसरोंपर सुयोग्य ब्राह्मणोंको बारंबार प्रचुर धनका दान करते थे । धर्मराज युधिष्ठिर, भीमसेन, सव्यसाची अर्जुन और नकुल-सहदेव भी उनका प्रिय करनेकी इच्छासे सब कार्योंमें उनका साथ देते थे ॥ ६-७½ ॥

कथं नु राजा वृद्धः स पुत्रपौत्रवधार्दितः ॥ ८ ॥
शोकमस्मत्कृतं प्राप्य न म्रियेतेति चिन्त्यते ।

उन्हें सदा इस बातकी चिन्ता बनी रहती थी कि पुत्र-पौत्रोंके वधसे पीड़ित हुए बूढ़े राजा धृतराष्ट्र हमारी ओरसे शोक पाकर कहीं अपने प्राण न त्याग दें ॥ ८½ ॥

यावद्धि कुरुवीरस्य जीवत्पुत्रस्य वै सुखम् ॥ ९ ॥
बभूव तदवाप्नोति भोगांश्चेति व्यवस्थिताः ।

अपने पुत्रोंकी जीवितावस्थामें कुरुवीर धृतराष्ट्रको जितने सुख और भोग प्राप्त थे, वे अब भी उन्हें मिलते रहें—इसके लिये पाण्डवोंने पूरी व्यवस्था की थी ॥ ९½ ॥

ततस्ते सहिताः पञ्च भ्रातरः पाण्डुनन्दनाः ॥ १० ॥
तथाशीलाः समातस्थुर्धृतराष्ट्रस्य शासने ।

इस प्रकारके शील और बर्तावसे युक्त होकर वे पाँचों भाई पाण्डव एक साथ धृतराष्ट्रकी आज्ञाके अधीन रहते थे ॥ १०½ ॥

धृतराष्ट्रश्च तान् सर्वान् विनीतान् नियमे स्थितान् ॥ ११ ॥
शिष्यवृत्तिं समापन्नान् गुरुवत् प्रत्यपद्यत ।

धृतराष्ट्र भी उन सबको परम विनीत, अपनी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले और शिष्य-भावसे सेवामें संलग्न जानकर पिताकी भाँति उनसे स्नेह रखते थे ॥ ११½ ॥

गान्धारी चैव पुत्राणां विविधैः श्राद्धकर्मभिः ॥ १२ ॥
आनृण्यमगमत् कामान् विप्रेभ्यः प्रतिपाद्य सा ।

गान्धारी देवीने भी अपने पुत्रोंके निमित्त नाना प्रकारके श्राद्धकर्मका अनुष्ठान करके ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन दान किया और ऐसा करके वे पुत्रोंके ऋणसे मुक्त हो गयीं ॥ १२½ ॥

एवं धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
भ्रातृभिः सहितो धीमान् पूजयामास तं नृपम् ।

इस प्रकार धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ रहकर सदा राजा धृतराष्ट्रका आदर-सत्कार करते रहते थे ॥ १३½ ॥

स राजा सुमहातेजा वृद्धः कुरुकुलोद्वहः ॥ १४ ॥
न ददर्श तदा किंचिदप्रियं पाण्डुनन्दने ।

कुरुकुलशिरोमणि महातेजस्वी बूढ़े राजा धृतराष्ट्रने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरका कोई ऐसा बर्ताव नहीं देखा, जो उनके मनको अप्रिय लगनेवाला हो ॥ १४½ ॥

वर्तमानेषु सद्वृत्तिं पाण्डवेषु महात्मसु ॥ १५ ॥
प्रीतिमानभवद् राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।

महात्मा पाण्डव सदा अच्छा बर्ताव करते थे; इसलिये अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र उनके ऊपर बहुत प्रसन्न रहते थे ॥ १५½ ॥

सौबलेयी च गान्धारी पुत्रशोकमपास्य तम् ॥ १६ ॥
सदैव प्रीतिमत्यासीत् तनयेषु निजेष्विव ।

सुबलपुत्री गान्धारी भी अपने पुत्रोंका शोक छोड़कर पाण्डवोंपर सदा अपने सगे पुत्रोंके समान प्रेम करती थीं ॥ १६½ ॥

प्रियाण्येव तु कौरव्यो नाप्रियाणि कुरूद्वहः ॥ १७ ॥
वैचित्रवीर्ये नृपतौ समाचरत वीर्यवान् ।

पराक्रमी कुरुकुलतिलक राजा युधिष्ठिर महाराज धृतराष्ट्रका सदा प्रिय ही करते थे, अप्रिय नहीं करते थे ॥

यद् यद् ब्रूते च किंचित् स धृतराष्ट्रो जनाधिपः॥ १८ ॥
गुरु वा लघु वा कार्यं गान्धारी च तपस्विनी ।
तं स राजा महाराज पाण्डवानां धुरंधरः ॥ १९ ॥
पूजयित्वा वचस्तत् तदकार्षीत् परवीरहा ।

महाराज ! राजा धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारी देवी ये दोनों जो कोई भी छोटा या बड़ा कार्य करनेके लिये कहते, पाण्डवधुरन्धर शत्रुसूदन राजा युधिष्ठिर उनके उस आदेशको सादर शिरोधार्य करके वह सारा कार्य पूर्ण करते थे ॥ १८-१९½ ॥

तेन तस्याभवत् प्रीतो वृत्तेन स नराधिपः ॥ २० ॥
अन्वतप्यत संस्मृत्य पुत्रं तं मन्दचेतसम् ।

उनके उस बर्तावसे राजा धृतराष्ट्र सदा प्रसन्न रहते और अपने उस मन्दबुद्धि दुर्योधनको याद करके पछताया करते थे ॥ २०½ ॥

सदा च प्रातरुत्थाय कृतजप्यः शुचिर्नृपः ॥ २१ ॥
आशास्ते पाण्डुपुत्राणां समरेष्वपराजयम् ।

प्रतिदिन सबेरे उठकर स्नान-संध्या एवं गायत्रीजप कर लेनेके पश्चात् पवित्र हुए राजा धृतराष्ट्र सदा पाण्डवोंके समरविजयी होनेका आशीर्वाद देते थे ॥ २१½ ॥

ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्याथ हुत्वा चैव हुताशनम्॥ २२॥
आयूंषि पाण्डुपुत्राणामाशंसत नराधिपः ।

ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर अग्निमें हवन करनेके पश्चात् राजा धृतराष्ट्र सदा यह शुभकामना करते थे कि पाण्डवोंकी आयु बढ़े ॥ २२½ ॥

न तां प्रीतिं परामाप पुत्रेभ्यः स कुरूद्वहः ॥ २३ ॥
यां प्रीतिं पाण्डुपुत्रेभ्यः सदावाप नराधिपः ।

राजा धृतराष्ट्रको सदा पाण्डवोंके बर्तावसे जितनी प्रसन्नता होती थी, उतनी उत्कृष्ट प्रीति उन्हें अपने पुत्रोंसे भी कभी प्राप्त नहीं हुई थी ॥ २३½ ॥

ब्राह्मणानां यथावृत्तः क्षत्रियाणां यथाविधः ॥ २४ ॥
तथा विट्शूद्रसंघानामभवत् स प्रियस्तदा ।

युधिष्ठिर ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके साथ जैसा सद्बर्ताव करते थे, वैसा ही वैश्यों और शूद्रोंके साथ भी करते थे । इसलिये वे उन दिनों सबके प्रिय हो गये थे ॥ २४½ ॥

यच्च किंचित् तदा पापं धृतराष्ट्रसुतैः कृतम् ॥ २५ ॥
अकृत्वा हृदि तत् पापं तं नृपं सोऽन्ववर्तत ।

धृतराष्ट्रके पुत्रोंने उनके साथ जो कुछ बुराई की थी, उसे अपने हृदयमें स्थान न देकर वे युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्रकी सेवामें संलग्न रहते थे ॥ २५½ ॥

यश्च कश्चिन्नरः किंचिदप्रियं चाम्बिकासुते ॥ २६ ॥
कुरुते द्वेष्यतामेति स कौन्तेयस्य धीमतः ।

जो कोई मनुष्य राजा धृतराष्ट्रका थोड़ा-सा भी अप्रिय कर देता, वह बुद्धिमान् कुन्तीकुमार युधिष्ठिरके द्वेषका पात्र बन जाता था ॥ २६½ ॥

न राज्ञो धृतराष्ट्रस्य न च दुर्योधनस्य वै ॥ २७ ॥
उवाच दुष्कृतं कश्चिद् युधिष्ठिरभयान्नरः ।

युधिष्ठिरके भयसे कोई भी मनुष्य कभी राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधनके कुकृत्योंकी चर्चा नहीं करता था ॥ २७½ ॥

धृत्या तुष्टो नरेन्द्रः स गान्धारी विदुरस्तथा ॥ २८ ॥
शौचेन चाजातशत्रोर्न तु भीमस्य शत्रुहन् ।

शत्रुसूदन जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुरजी अजातशत्रु युधिष्ठिरके धैर्य और शुद्ध व्यवहारसे विशेष प्रसन्न थे, किंतु भीमसेनके बर्तावसे उन्हें संतोष नहीं था ॥

अन्ववर्तत भीमोऽपि निश्चितो धर्मजं नृपम् ॥ २९ ॥
धृतराष्ट्रं च सम्प्रेक्ष्य सदा भवति दुर्मनाः ।

यद्यपि भीमसेन भी दृढ़ निश्चयके साथ युधिष्ठिरके ही पथका अनुसरण करते थे, तथापि धृतराष्ट्रको देखकर उनके मनमें सदा ही दुर्भावना जाग उठती थी ॥ २९½ ॥

राजानमनुवर्तन्तं धर्मपुत्रममित्रहा ।
अन्ववर्तत कौरव्यो हृदयेन पराङ्मुखः ॥ ३० ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके अनुकूल बर्ताव करते देख शत्रुसूदन कुरुनन्दन भीमसेन स्वयं भी ऊपरसे उनका अनुसरण ही करते थे, तथापि उनका हृदय धृतराष्ट्रसे विमुख ही रहता था ॥ ३० ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

राजा धृतराष्ट्रका गान्धारीके साथ वनमें जानेके लिये उद्योग एवं युधिष्ठिरसे अनुमति देनेके लिये अनुरोध तथा युधिष्ठिर और कुन्ती आदिका दुखी होना

वैशम्पायन उवाच

युधिष्ठिरस्य नृपतेर्दुर्योधनपितुस्तदा ।
नान्तरं ददृशू राज्ये पुरुषाः प्रणयं प्रति ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा युधिष्ठिर और धृतराष्ट्रमें जो पारस्परिक प्रेम था, उसमें राज्यके लोगोंने कभी कोई अन्तर नहीं देखा ॥ १ ॥

यदा तु कौरवो राजा पुत्रं सस्मार दुर्मतिम् ।
तदा भीमं हृदा राजन्नपध्याति स पार्थिवः ॥ २ ॥

राजन्! परंतु वे कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र जब अपने दुर्बुद्धि पुत्र दुर्योधनका स्मरण करते थे, तब मन-ही-मन भीमसेनका अनिष्ट-चिन्तन किया करते थे ॥ २ ॥

तथैव भीमसेनोऽपि धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ।
नामर्षयत राजेन्द्र सदैव दुष्टवद्धृदा ॥ ३ ॥

राजेन्द्र! उसी प्रकार भीमसेन भी सदा ही राजा धृतराष्ट्रके प्रति अपने मनमें दुर्भावना रखते थे। वे कभी उन्हें क्षमा नहीं कर पाते थे ॥ ३ ॥

अप्रकाशान्यप्रियाणि चकारास्य वृकोदरः ।
आज्ञां प्रत्यहरच्चापि कृतज्ञैः पुरुषैः सदा ॥ ४ ॥

भीमसेन गुप्त रीतिसे धृतराष्ट्रको अप्रिय लगनेवाले काम किया करते थे तथा अपने द्वारा नियुक्त किये हुए कृतज्ञ पुरुषोंसे उनकी आज्ञा भी भङ्ग करा दिया करते थे ॥ ४ ॥

स्मरन् दुर्मन्त्रितं तस्य वृत्तान्यप्यस्य कानिचित् ।
अथ भीमः सुहृन्मध्ये बाहुशब्दं तथाकरोत् ॥ ५ ॥
संश्रवे धृतराष्ट्रस्य गान्धार्याश्चाप्यमर्षणः ।
स्मृत्वा दुर्योधनं शत्रुं कर्णदुःशासनावपि ॥ ६ ॥
प्रोवाचेदं सुसंरब्धो भीमः स परुषं वचः ।

राजा धृतराष्ट्रकी जो दुष्टतापूर्ण मन्त्रणाएँ होती थीं और तदनुसार ही जो उनके कई दुर्बर्ताव हुए थे, उन्हें सदा भीमसेन याद रखते थे। एक दिन अमर्षमें भरे हुए भीमसेनने अपने मित्रोंके बीचमें बारंबार अपनी भुजाओंपर ताल ठोंका और धृतराष्ट्र एवं गान्धारीको सुनाते हुए रोषपूर्वक यह कठोर वचन कहा। वे अपने शत्रु दुर्योधन, कर्ण और दुःशासनको याद करके यों कहने लगे— ॥ ५-६½ ॥

अन्धस्य नृपतेः पुत्रा मया परिघबाहुना ॥ ७ ॥
नीता लोकममुं सर्वे नानाशस्त्रास्त्रयोधिनः ।

'मित्रो! मेरी भुजाएँ परिघके समान सुदृढ़ हैं। मैंने ही उस अंधे राजाके समस्त पुत्रोंको, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा युद्ध करते थे, यमलोकका अतिथि बनाया है ॥ ७½ ॥

इमौ तौ परिघप्रख्यौ भुजौ मम दुरासदौ ॥ ८ ॥
ययोरन्तरमासाद्य धार्तराष्ट्राः क्षयं गताः ।

'देखो, ये हैं मेरे दोनों परिघके समान सुदृढ़ एवं दुर्जय बाहुदण्ड; जिनके बीचमें पड़कर धृतराष्ट्रके बेटे पिस गये हैं ॥ ८½ ॥

ताविमौ चन्दनेनाक्तौ चन्दनार्हौ च मे भुजौ ॥ ९ ॥
याभ्यां दुर्योधनो नीतः क्षयं ससुतबान्धवः ।

'ये मेरी दोनों भुजाएँ चन्दनसे चर्चित एवं चन्दन लगानेके ही योग्य हैं, जिनके द्वारा पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंसहित राजा दुर्योधन नष्ट कर दिया गया' ॥ ९½ ॥

एताश्चान्याश्च विविधाः शल्यभूता नराधिपः ॥ १० ॥
वृकोदरस्य ता वाचः श्रुत्वा निर्वेदमागमत् ।

ये तथा और भी नाना प्रकारकी भीमसेनकी कही हुई कठोर बातें जो हृदयमें काँटोंके समान कसक पैदा करनेवाली थीं, राजा धृतराष्ट्रने सुनीं। सुनकर उन्हें बड़ा खेद हुआ ॥

सा च बुद्धिमती देवी कालपर्यायवेदिनी ॥ ११ ॥
गान्धारी सर्वधर्मज्ञा तान्यलीकानि शुश्रुवे ।

समयके उलट-फेरको समझने और समस्त धर्मोंको जाननेवाली बुद्धिमती गान्धारी देवीने भी इन कठोर वचनोंको सुना था ॥ ११½ ॥

ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः ॥ १२ ॥
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीडितः ।

उस समयतक उन्हें राजा युधिष्ठिरके आश्रयमें रहते

पंद्रह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। पंद्रहवाँ वर्ष बीतनेपर भीमसेनके वाग्बाणोंसे पीड़ित हुए राजा धृतराष्ट्रको खेद एवं वैराग्य हुआ ॥ १२½ ॥

नान्वबुध्यत तद् राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १३ ॥
श्वेताश्वो वाथ कुन्ती वा द्रौपदी वा यशस्विनी ।

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरको इस बातकी जानकारी नहीं थी। अर्जुन, कुन्ती तथा यशस्विनी द्रौपदीको भी इसका पता नहीं था ॥ १३½ ॥

माद्रीपुत्रौ च धर्मज्ञौ चित्तं तस्यान्ववर्तताम् ॥ १४ ॥
राज्ञस्तु चित्तं रक्षन्तौ नोचतुः किंचिदप्रियम् ।

धर्मके ज्ञाता माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव सदा राजा धृतराष्ट्रके मनोऽनुकूल ही बर्ताव करते थे। वे उनका मन रखते हुए कभी कोई अप्रिय बात नहीं कहते थे ॥ १४½ ॥

ततः समानयामास धृतराष्ट्रः सुहृज्जनम् ॥ १५ ॥
बाष्पसंदिग्धमत्यर्थमिदमाह च तान् भृशम् ।

तदनन्तर धृतराष्ट्रने अपने मित्रोंको बुलवाया और नेत्रोंमें आँसू भरकर अत्यन्त गद्गद वाणीमें इस प्रकार कहा ॥

धृतराष्ट्र उवाच

विदितं भवतामेतद् यथा वृत्तः कुरुक्षयः ॥ १६ ॥
ममापराधात् तत् सर्वमनुज्ञातं च कौरवैः ।

धृतराष्ट्र बोले—मित्रो! आपलोगोंको यह मालूम ही है कि कौरववंशका विनाश किस प्रकार हुआ है। समस्त कौरव इस बातको जानते हैं कि मेरे ही अपराधसे सारा अनर्थ हुआ है ॥ १६½ ॥

योऽहं दुष्टमतिं मन्दो ज्ञातीनां भयवर्धनम् ॥ १७ ॥
दुर्योधनं कौरवाणामाधिपत्येऽभ्यषेचयम् ।

दुर्योधनकी बुद्धिमें दुष्टता भरी थी। वह जाति-भाइयोंका भय बढ़ानेवाला था तो भी मुझ मूर्खने उसे कौरवोंके राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया ॥ १७½ ॥

यच्चाहं वासुदेवस्य नाश्रौषं वाक्यमर्थवत् ॥ १८ ॥
वध्यतां साध्वयं पापः सामात्य इति दुर्मतिः ।
पुत्रस्नेहाभिभूतस्तु हितमुक्तो मनीषिभिः ॥ १९ ॥

मैंने वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णकी अर्थभरी बातें नहीं सुनीं। मनीषी पुरुषोंने मुझे यह हितकी बात बतायी थी कि इस खोटी बुद्धिवाले पापी दुर्योधनको मन्त्रियोंसहित मार डाला जाय, इसीमें संसारका हित है; किंतु पुत्रस्नेहके वशीभूत होकर मैंने ऐसा नहीं किया ॥ १८-१९ ॥

विदुरेणाथ भीष्मेण द्रोणेन च कृपेण च ।
पदे पदे भगवता व्यासेन च महात्मना ॥ २० ॥
संजयेनाथ गान्धार्या तदिदं तप्यते च माम् ।

विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, महात्मा भगवान् व्यास, संजय और गान्धारी देवीने भी मुझे पग-पगपर उचित सलाह दी, किंतु मैंने किसीकी बात नहीं मानी। यह भूल मुझे सदा संताप देती रहती है ॥ २०½ ॥

यच्चाहं पाण्डुपुत्रेषु गुणवत्सु महात्मसु ॥ २१ ॥
न दत्तवाञ्छ्रियं दीप्तां पितृपैतामहीमिमाम् ।

महात्मा पाण्डव गुणवान् हैं तथापि उनके बाप-दादोंकी यह उज्ज्वल सम्पत्ति भी मैंने उन्हें नहीं दी ॥ २१½ ॥

विनाशं पश्यमानो हि सर्वराज्ञां गदाग्रजः ॥ २२ ॥
एतच्छ्रेयस्तु परमममन्यत जनार्दनः ।

समस्त राजाओंका विनाश देखते हुए गदाग्रज भगवान् श्रीकृष्णने यही परम कल्याणकारी माना कि मैं पाण्डवोंको राज्य उन्हें लौटा दूँ; परंतु मैं वैसा नहीं कर सका ॥२२½॥

सोऽहमेतान्यलीकानि निवृत्तान्यात्मनस्तदा ॥ २३ ॥
हृदये शल्यभूतानि धारयामि सहस्रशः ।

इस तरह अपनी की हुई हजारों भूलें मैं अपने हृदयमें धारण करता हूँ, जो इस समय काँटोंके समान कसक पैदा करती हैं ॥ २३½ ॥

विशेषतस्तु पश्यामि वर्षे पञ्चदशेऽद्य वै ॥ २४ ॥
अस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं नियतोऽस्मि सुदुर्मतिः ।

विशेषतः पंद्रहवें वर्षमें आज मुझ दुर्बुद्धिकी आँखें खुली हैं और अब मैं इस पापकी शुद्धिके लिये नियमका पालन करने लगा हूँ ॥ २४½ ॥

चतुर्थे नियते काले कदाचिदपि चाष्टमे ॥ २५ ॥
तृष्णाविनयनं भुञ्जे गान्धारी वेद तन्मम ।
करोत्याहारमिति मां सर्वः परिजनः सदा ॥ २६ ॥

कभी चौथे समय (अर्थात् दो दिनपर) और कभी आठवें समय अर्थात् चार दिनपर केवल भूखकी आग बुझानेके लिये मैं थोड़ा-सा आहार करता हूँ। मेरे इस नियमको केवल गान्धारी देवी जानती हैं। अन्य सब लोगोंको यही मालूम है कि मैं प्रतिदिन पूरा भोजन करता हूँ ॥

युधिष्ठिरभयादेति भृशं तप्यति पाण्डवः ।
भूमौ शये जप्यपरो दर्भेष्वजिनसंवृतः ॥ २७ ॥
नियमव्यपदेशेन गान्धारी च यशस्विनी ।

लोग युधिष्ठिरके भयसे मेरे पास आते हैं। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर मुझे आराम देनेके लिये अत्यन्त चिन्तित रहते हैं। मैं और यशस्विनी गान्धारी दोनों नियम-पालनके व्याजसे मृगचर्म पहन कुशासनपर बैठकर मन्त्रजप करते और भूमिपर सोते हैं ॥ २७½ ॥

हतं शतं तु पुत्राणां ययोर्युद्धेऽपलायिनाम् ॥ २८ ॥
नानुतप्यामि तच्चाहं क्षत्रधर्मं हि ते विदुः ।

हम दोनोंके युद्धमें पीठ न दिखानेवाले सौ पुत्र मारे गये हैं, किंतु उनके लिये मुझे दुःख नहीं है; क्योंकि वे क्षत्रिय धर्मको जानते थे (और उसीके अनुसार उन्होंने युद्धमें प्राण-त्याग किया है) ॥ २८½ ॥

इत्युक्त्वा धर्मराजानमभ्यभाषत कौरवः ॥ २९ ॥
भद्रं ते यादवीमातर्वचश्चेदं निबोध मे ।

अपने सुहृदोंसे ऐसा कहकर धृतराष्ट्र राजा युधिष्ठिरसे बोले—'कुन्तीनन्दन ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम मेरी यह बात सुनो ॥ २९½ ॥

सुखमस्म्युषितः पुत्र त्वया सुपरिपालितः ॥ ३० ॥
महादानानि दत्तानि श्राद्धानि च पुनः पुनः ।

'बेटा ! तुम्हारे द्वारा सुरक्षित होकर मैं यहाँ बड़े सुखसे रहा हूँ । मैंने बड़े-बड़े दान दिये हैं और बारंबार श्राद्धकर्मोंका अनुष्ठान किया है ॥ ३०½ ॥

प्रकृष्टं च यया पुत्र पुण्यं चीर्णं यथाबलम् ॥ ३१ ॥
गान्धारी हतपुत्रेयं धैर्येणोदीक्षते च माम् ।

'पुत्र ! जिसने अपनी शक्तिके अनुसार उत्कृष्ट पुण्यका अनुष्ठान किया है और जिसके सौ पुत्र मारे गये हैं, वही यह गान्धारीदेवी धैर्यपूर्वक मेरी देख-भाल करती है ॥

द्रौपद्या ह्यपकर्तारस्तव चैश्वर्यहारिणः ॥ ३२ ॥
समतीता नृशंसास्ते स्वधर्मेण हता युधि ।
न तेषु प्रतिकर्तव्यं पश्यामि कुरुनन्दन ॥ ३३ ॥

'कुरुनन्दन ! जिन्होंने द्रौपदीके साथ अत्याचार किया, तुम्हारे ऐश्वर्यका अपहरण किया, वे क्रूरकर्मी मेरे पुत्र क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्धमें मारे गये हैं । अब उनके लिये कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं दिखायी देती है ॥ ३२-३३ ॥

सर्वे शस्त्रभृतां लोकान् गतास्तेऽभिमुखं हताः ।
आत्मनस्तु हितं पुण्यं प्रतिकर्तव्यमद्य वै ॥ ३४ ॥
गान्धार्याश्चैव राजेन्द्र तदनुज्ञातुमर्हसि ।

'वे सब युद्धमें सम्मुख मारे गये हैं, अतः शस्त्रधारियोंको मिलनेवाले लोकोंमें गये हैं । राजेन्द्र ! अब तो मुझे और गान्धारीदेवीको अपने हितके लिये पवित्र तप करना है; अतः इसके लिये हमें अनुमति दो ॥ ३४½ ॥

त्वं तु शस्त्रभृतां श्रेष्ठः सततं धर्मवत्सलः ॥ ३५ ॥
राजा गुरुः प्राणभृतां तस्मादेतद् ब्रवीम्यहम् ।
अनुज्ञातस्त्वया वीर संश्रयेयं वनान्यहम् ॥ ३६ ॥

'तुम शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और सदा धर्मपर अनुराग रखनेवाले हो । राजा समस्त प्राणियोंके लिये गुरुजनकी भाँति आदरणीय होता है । इसलिये तुमसे ऐसा अनुरोध करता हूँ । वीर ! तुम्हारी अनुमति मिल जानेपर मैं वनको चला जाऊँगा ॥ ३५-३६ ॥

चीरवल्कलभृद् राजन् गान्धार्या सहितोऽनया ।
तवाशिषः प्रयुञ्जानो भविष्यामि वनेचरः ॥ ३७ ॥

'राजन् ! वहाँ मैं चीर और वल्कल धारण करके इस गान्धारीके साथ वनमें विचरूँगा और तुम्हें आशीर्वाद देता रहूँगा ॥ ३७ ॥

उचितं नः कुले तात सर्वेषां भरतर्षभ ।
पुत्रेष्वैश्वर्यमाधाय वयसोऽन्ते वनं नृप ॥ ३८ ॥

'तात ! भरतश्रेष्ठ नरेश्वर ! हमारे कुलके सभी राजाओंके लिये यही उचित है कि वे अन्तिम अवस्थामें पुत्रोंको राज्य देकर स्वयं वनमें पधारें ॥ ३८ ॥

तत्राहं वायुभक्षो वा निराहारोऽपि वा वसन् ।
पत्न्या सहानया वीर चरिष्यामि तपः परम् ॥ ३९ ॥

'वीर ! वहाँ मैं वायु पीकर अथवा उपवास करके रहूँगा तथा अपनी इस धर्मपत्नीके साथ उत्तम तपस्या करूँगा॥

त्वं चापि फलभाक् तात तपसः पार्थिवो ह्यसि ।
फलभाजो हि राजानः कल्याणस्येतरस्य वा ॥ ४० ॥

'बेटा ! तुम भी उस तपस्याके उत्तम फलके भागी बनोगे; क्योंकि तुम राजा हो और राजा अपने राज्यके भीतर होनेवाले भले-बुरे सभी कर्मोंके फलभागी होते हैं' ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर उवाच

न मां प्रीणयते राज्यं त्वय्येवं दुःखिते नृप ।
धिङ्मामस्तु सुदुर्बुद्धिं राज्यसक्तं प्रमादिनम् ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिरने कहा—महाराज ! आप यहाँ रहकर इस प्रकार दुःख उठा रहे थे और मुझे इसकी जानकारी न हो सकी, इसलिये अब यह राज्य मुझे प्रसन्न नहीं रख सकता । हाय ! मेरी बुद्धि कितनी खराब है ? मुझ-जैसे प्रमादी और राज्यासक्त पुरुषको धिक्कार है ॥ ४१ ॥

योऽहं भवन्तं दुःखार्तमुपवासकृशं भृशम् ।
जिताहारं क्षितिशयं न विन्दे भ्रातृभिः सह ॥ ४२ ॥

आप दुःखसे आतुर और उपवास करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल होकर पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं तथा भोजनपर भी संयम कर लिया है और मैं भाइयोंसहित आपकी इस अवस्थाका पता ही न पा सका ॥ ४२ ॥

अहोऽस्मि वञ्चितो मूढो भवता गूढबुद्धिना ।
विश्वासयित्वा पूर्वं मां यदिदं दुःखमश्नुथाः ॥ ४३ ॥

अहो ! आपने अपने विचारोंको छिपाकर मुझ मूर्खको अबतक धोखेमें ही डाल रखा था; क्योंकि पहले मुझे यह विश्वास दिलाकर कि मैं सुखी हूँ, आप आजतक यह दुःख भोगते रहे ॥ ४३ ॥

किं मे राज्येन भोगैर्वा किं यज्ञैः किं सुखेन वा ।
यस्य मे त्वं महीपाल दुःखान्येतान्यवाप्तवान् ॥ ४४ ॥

महाराज ! इस राज्यसे, इन भोगोंसे, इन यज्ञोंसे अथवा

इस सुख-सामग्रीसे मुझे क्या लाभ हुआ ? जब कि मेरे ही पास रहकर आपको इतने दुःख उठाने पड़े ॥ ४४ ॥

पीडितं चापि जानामि राज्यमात्मानमेव च ।
अनेन वचसा तुभ्यं दुःखितस्य जनेश्वर ॥ ४५ ॥

जनेश्वर ! आप दुखी होकर जो ऐसी बात कह रहे हैं, इससे मैं उस समस्त राज्यको और अपनेको भी दुःखित समझता हूँ ॥ ४५ ॥

भवान् पिता भवान् माता भवान् नः परमो गुरुः ।
भवता विप्रहीणा वै क नु तिष्ठामहे वयम् ॥ ४६ ॥

आप ही हमारे पिता, आप ही माता और आप ही हमारे परम गुरु हैं । आपसे विलग होकर हम कहाँ रहेंगे ॥

औरसो भवतः पुत्रो युयुत्सुर्नृपसत्तम ।
अस्तु राजा महाराज यमन्यं मन्यते भवान् ॥ ४७ ॥
अहं वनं गमिष्यामि भवान् राज्यं प्रशास्तु ।
न मामयशसा दग्धं भूयस्त्वं दग्धुमर्हसि ॥ ४८ ॥

नृपश्रेष्ठ ! महाराज ! युयुत्सु आपके औरस पुत्र हैं; ये ही राजा हों अथवा और किसीको जिसे आप उचित समझते हों, राजा बना दें या स्वयं ही इस राज्यका शासन करें । मैं ही वनको चला जाऊँगा । पिताजी ! मैं पहलेसे ही अपयश की आगमें जल चुका हूँ, अब पुनः आप भी मुझे न जलाइये ॥ ४७-४८ ॥

नाहं राजा भवान् राजा भवतः परवानहम् ।
कथं गुरुं त्वां धर्मज्ञमनुज्ञातुमिहोत्सहे ॥ ४९ ॥

मैं राजा नहीं, आप ही राजा हैं । मैं तो आपकी आज्ञाके अधीन रहनेवाला सेवक हूँ । आप धर्मके ज्ञाता गुरु हैं । मैं आपको कैसे आज्ञा दे सकता हूँ ॥ ४९ ॥

न मन्युर्हृदि नः कश्चित् सुयोधनकृतेऽनघ ।
भवितव्यं तथा तद्धि वयं चान्ये च मोहिताः ॥ ५० ॥

निष्पाप नरेश ! दुर्योधनने जो कुछ किया है, उसके लिये हमारे हृदयमें तनिक भी क्रोध नहीं है । जो कुछ हुआ है, वैसी ही होनहार थी । हम और दूसरे लोग उसीसे मोहित थे ॥ ५० ॥

वयं पुत्रा हि भवतो यथा दुर्योधनादयः ।
गान्धारी चैव कुन्ती च निर्विशेषे मते मम ॥ ५१ ॥

जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र थे, वैसे ही हम भी हैं । मेरे लिये गान्धारी और कुन्तीमें कोई अन्तर नहीं है ॥५१॥

स मां त्वं यदि राजेन्द्र परित्यज्य गमिष्यसि ।
पृष्ठतस्त्वनुयास्यामि सत्यमात्मानमालभे ॥ ५२ ॥

राजन् ! यदि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो मैं अपनी सौगन्ध खाकर सत्य कहता हूँ कि मैं भी आपके पीछे-पीछे चल दूँगा ॥ ५२ ॥

इयं हि वसुसम्पूर्णा मही सागरमेखला ।
भवता विप्रहीणस्य न मे प्रीतिकरी भवेत् ॥ ५३ ॥

आपके त्याग देनेपर यह धन-धान्यसे परिपूर्ण समुद्रसे घिरी हुई सारी पृथ्वीका राज्य भी मुझे प्रसन्न नहीं रख सकता ॥ ५३ ॥

भवदीयमिदं सर्वं शिरसा त्वां प्रसादये ।
त्वदधीनाः स्म राजेन्द्र व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ५४ ॥

राजेन्द्र ! यह सब कुछ आपका है । मैं आपके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रार्थना करता हूँ कि आप प्रसन्न हो जाइये । हम सब लोग आपके अधीन हैं । आपकी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ ५४ ॥

भवितव्यमनुप्राप्तो मन्ये त्वं वसुधाधिप ।
दिष्ट्या शुश्रूषमाणस्त्वां मोक्षिष्ये मनसो ज्वरम् ॥ ५५ ॥

पृथ्वीनाथ ! मैं समझता हूँ कि आप भवितव्यताके वशमें पड़ गये थे । यदि सौभाग्यवश मुझे आपकी सेवाका अवसर मिलता रहा तो मेरी मानसिक चिन्ता दूर हो जायगी ॥ ५५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

तापस्ये मे मनस्तात वर्तते कुरुनन्दन ।
उचितं च कुलेऽस्माकमरण्यगमनं प्रभो ॥ ५६ ॥

धृतराष्ट्र बोले—बेटा ! कुरुनन्दन ! अब मेरा मन तपस्यामें ही लग रहा है । प्रभो ! जीवनकी अन्तिम अवस्थामें वनको जाना हमारे कुलके लिये उचित भी है ॥ ५६ ॥

चिरमस्म्युषितः पुत्र चिरं शुश्रूषितस्त्वया ।
वृद्धं मामप्यनुज्ञातुमर्हसि त्वं नराधिप ॥ ५७ ॥

पुत्र ! नरेश्वर ! मैं दीर्घकालतक तुम्हारे पास रह चुका और तुमने भी बहुत दिनोंतक मेरी सेवा-शुश्रूषा की । अब मेरी वृद्धावस्था आ गयी । अब तो मुझे वनमें जानेकी अनुमति देनी ही चाहिये ॥ ५७ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा धर्मराजानं वेपमानं कृताञ्जलिम् ।
उवाच वचनं राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ५८ ॥
संजयं च महात्मानं कृपं चापि महारथम् ।
अनुनेतुमिहेच्छामि भवद्भिर्वसुधाधिपम् ॥ ५९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! धृतराष्ट्रकी यह बात सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर काँपने लगे और हाथ जोड़कर चुपचाप बैठे रहे । अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्रने उनसे उपर्युक्त बात कहकर महात्मा संजय और महारथी कृपाचार्यसे कहा—'मैं आपलोगोंके द्वारा राजा युधिष्ठिरको समझाना चाहता हूँ' ॥ ५८-५९ ॥

लायते मे मनो हीदं मुखं च परिशुष्यति।
यसा च प्रकृष्टेन वाग्व्यायामेन चैव ह॥ ६०॥

'एक तो मेरी वृद्धावस्था और दूसरे बोलनेका परिश्रम, न कारणोंसे मेरा जी घबरा रहा है और मुँह सूखा ाता है'॥ ६०॥

त्युक्त्वा स तु धर्मात्मा वृद्धो राजा कुरूद्वहः।
ान्धारीं शिश्रिये धीमान् सहसैव गतासुवत्॥ ६१॥

ऐसा कहकर धर्मात्मा बूढ़े राजा कुरुकुलशिरोमणि द्धिमान् धृतराष्ट्रने सहसा ही निर्जीवकी भाँति गान्धारीका हारा ले लिया॥ ६१॥



तु दृष्ट्वा समासीनं विसंज्ञमिव कौरवम्।
ार्तिं राजागमत् तीव्रां कौन्तेयः परवीरहा॥ ६२॥

कुरुराज धृतराष्ट्रको संज्ञाहीन-सा बैठा देख शत्रुवीरोंका ार करनेवाले कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिरको बड़ा दुःख ुआ॥ ६२॥

युधिष्ठिर उवाच

स्य नागसहस्रेण शतसंख्येन वै बलम्।
ोऽयं नारीं व्यपाश्रित्य शेते राजा गतासुवत्॥ ६३॥

युधिष्ठिरने कहा—ओह! जिसमें एक लाख हाथियों-के समान बल था, वे ही ये राजा धृतराष्ट्र आज प्राणहीन-से होकर स्त्रीका सहारा लिये सो रहे हैं॥ ६३॥

यसी प्रतिमा येन भीमसेनस्य सा पुरा।
र्णीकृता बलवता सोऽबलामाश्रितः स्त्रियम्॥ ६४॥

जिन बलवान् नरेशने पहले भीमसेनकी लोहमयी प्रतिमा-को चूर्ण कर डाला था, वे आज अबला नारीके सहारे पड़े हैं॥ ६४॥

धिगस्तु मामधर्मज्ञं धिग् बुद्धिं धिक् च मे श्रुतम्।
यत्कृते पृथिवीपालः शेतेऽयमतथोचितः॥ ६५॥

मुझे धर्मका कोई ज्ञान नहीं है। मुझे धिक्कार है। मेरी बुद्धि और विद्याको भी धिक्कार है, जिसके कारण ये महाराज इस समय अपने लिये अयोग्य अवस्थामें पड़े हुए हैं॥ ६५॥

अहमप्युपवत्स्यामि यथैवायं गुरुर्मम।
यदि राजा न भुङ्क्तेऽयं गान्धारी च यशस्विनी॥ ६६॥

यदि यशस्विनी गान्धारी देवी और राजा धृतराष्ट्र भोजन नहीं करते हैं तो अपने इन गुरुजनोंकी भाँति मैं भी उपवास करूँगा॥ ६६॥

वैशम्पायन उवाच

ततोऽस्य पाणिना राजन् जलशीतेन पाण्डवः।
उरो मुखं च शनकैः पर्यमार्जत धर्मवित्॥ ६७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! यह कहकर धर्म-के ज्ञाता पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने जलसे शीतल किये हुए हाथसे धृतराष्ट्रकी छाती और मुँहको धीरे-धीरे पोंछा॥ ६७॥

तेन रत्नौषधिमता पुण्येन च सुगन्धिना।
पाणिस्पर्शेन राज्ञः स राजा संज्ञामवाप ह॥ ६८॥

महाराज युधिष्ठिरके रत्नौषधिसम्पन्न उस पवित्र एवं सुगन्धित कर-स्पर्शसे राजा धृतराष्ट्रकी चेतना लौट आयी॥ ६८॥

धृतराष्ट्र उवाच

स्पृश मां पाणिना भूयः परिष्वज च पाण्डव।
जीवामीवातिसंस्पर्शात् तव राजीवलोचन॥ ६९॥

धृतराष्ट्र बोले—कमलनयन पाण्डुनन्दन! तुम फिरसे मेरे शरीरपर अपना हाथ फेरो और मुझे छातीसे लगा लो। तुम्हारे सुखदायक स्पर्शसे मानो मेरे शरीरमें प्राण आ जाते हैं॥ ६९॥

मूर्धानं च तवाघ्रातुमिच्छामि मनुजाधिप।
पाणिभ्यां हि परिस्प्रष्टुं प्रीणनं हि महन्मम॥ ७०॥

नरेश्वर! मैं तुम्हारा मस्तक सूँघना चाहता हूँ और अपने दोनों हाथोंसे तुम्हें स्पर्श करनेकी इच्छा रखता हूँ। इससे मुझे परम तृप्ति मिल रही है॥ ७०॥

अष्टमो ह्यद्य कालोऽयमाहारस्य कृतस्य मे।
येनाहं कुरुशार्दूल शक्नोमि न विचेष्टितुम्॥ ७१॥

पिछले दिनों जब मैंने भोजन किया था, तबसे आज यह आठवाँ समय–चौथा दिन पूरा हो गया है। कुरुश्रेष्ठ! इसीसे शिथिल होकर मैं कोई चेष्टा नहीं कर पाता॥ ७१॥

व्यायामश्चायमत्यर्थं कृतस्त्वामभियाचता।
ततो ग्लानमनास्तात नष्टसंज्ञ इवाभवम्॥ ७२॥

तात ! तुमसे अनुरोध करनेके लिये बोलते समय मुझे बड़ा भारी परिश्रम करना पड़ा है । अतः क्षीणशक्ति होकर मैं अचेत-सा हो गया था ॥ ७२ ॥

तवामृतरसप्रख्यं हस्तस्पर्शमिमं प्रभो ।
लब्ध्वा संजीवितोऽस्मीति मन्ये कुरुकुलोद्वह ॥ ७३ ॥

प्रभो ! तुम्हारे हाथोंका यह स्पर्श अमृत-रसके समान शीतल एवं सुखद है । कुरुकुलनाथ ! इसे पाकर मुझमें नया जीवन आ गया है, मैं ऐसा मानता हूँ ॥ ७३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु कौन्तेयः पित्रा ज्येष्ठेन भारत ।
पस्पर्श सर्वगात्रेषु सौहार्दात् तं शनैस्तदा ॥ ७४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भारत ! अपने ज्येष्ठ पितृव्य धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने बड़े स्नेहके साथ उनके समस्त अङ्गोंपर धीरे-धीरे हाथ फेरा ॥ ७४ ॥

उपलभ्य ततः प्राणान् धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य मूर्ध्न्याजिघ्रत पाण्डवम् ॥ ७५ ॥

उनके स्पर्शसे राजा धृतराष्ट्रके शरीरमें मानो नूतन प्राण आ गये और उन्होंने अपनी दोनों भुजाओंसे युधिष्ठिरको छातीसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा ॥ ७५ ॥

विदुरादयश्च ते सर्वे रुरुदुर्दुःखिता भृशम् ।
अतिदुःखात् तु राजानं नोचुः किंचन पाण्डवम् ॥ ७६ ॥

यह करुण दृश्य देखकर विदुर आदि सब लोग अत्यन्त दुखी हो रोने लगे । अधिक दुःखके कारण वे लोग पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिरसे कुछ न बोले ॥ ७६ ॥

गान्धारी त्वेव धर्मज्ञा मनसोद्वहती भृशम् ।
दुःखान्यधारयद् राजन् मैवमित्येव चाब्रवीत् ॥ ७७ ॥

धर्मको जाननेवाली गान्धारी अपने मनमें दुःखका बड़ा भारी बोझ ढो रही थी । उसने दुःखोंको मनमें ही दबा लिया और रोते हुए लोगोंसे कहा—'ऐसा न करो' ॥ ७७ ॥

इतरास्तु स्त्रियः सर्वाः कुन्त्या सह सुदुःखिताः ।
नेत्रैरागतविक्लेदैः परिवार्य स्थिताऽभवन् ॥ ७८ ॥

कुन्तीके साथ कुरुकुलकी अन्य स्त्रियाँ भी अत्यन्त दुखी हो नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई उन्हें घेरकर खड़ी हो गयीं ॥ ७८ ॥

अथाब्रवीत् पुनर्वाक्यं धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम् ।
अनुजानीहि मां राजंस्तापस्ये भरतर्षभ ॥ ७९ ॥

तदनन्तर धृतराष्ट्रने पुनः युधिष्ठिरसे कहा—'राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! मुझे तपस्याके लिये अनुमति दे दो ॥ ७९ ॥

ग्लायते मे मनस्तात भूयो भूयः प्रजल्पतः ।
न मामतः परं पुत्र परिक्लेष्टुमिहार्हसि ॥ ८०

'तात ! बार-बार बोलनेसे मेरा जी घबराता है, अ बेटा ! अब मुझे अधिक कष्टमें न डालो' ॥ ८० ॥

तस्मिंस्तु कौरवेन्द्रे तं तथा ब्रुवति पाण्डवम् ।
सर्वेषामेव योधानामार्तनादो महानभूत् ॥ ८१

कौरव-राज धृतराष्ट्र जब पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे ऐसी कह रहे थे, उस समय वहाँ उपस्थित हुए समस्त यो महान् आर्तनाद (हाहाकार) करने लगे ॥ ८१ ॥

दृष्ट्वा कृशं विवर्णं च राजानमतथोचितम् ।
उपवासपरिश्रान्तं त्वगस्थिपरिवारणम् ॥ ८२
धर्मपुत्रः स्वपितरं परिष्वज्य महाप्रभुम् ।
शोकजं बाष्पमुत्सृज्य पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ८३

अपने ताऊ महाप्रभु राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार उपव करनेके कारण थके हुए, दुर्बल, कान्तिहीन, अस्थिचर्मावशि और अयोग्य अवस्थामें स्थित देख धर्मपुत्र युधिष्ठिर शो जनित आँसू बहाते हुए उनसे इस प्रकार बोले—॥८२-८

न कामये नरश्रेष्ठ जीवितं पृथिवीं तथा ।
यथा तव प्रियं राजंश्चिकीर्षामि परंतप ॥ ८४

'नरश्रेष्ठ ! मैं न तो जीवन चाहता हूँ न पृथ्वीका राज्य परंतप नरेश ! जिस तरह भी आपका प्रिय हो, वही करना चाहता हूँ ॥ ८४ ॥

यदि चाहमनुग्राह्यो भवतो दयितोऽपि वा ।
क्रियतां तावदाहारस्ततो वेत्स्याम्यहं परम् ॥ ८५

'यदि आप मुझे अपनी कृपाका पात्र समझते हों अ यदि मैं आपका प्रिय होऊँ तो मेरी प्रार्थनासे इस स भोजन कीजिये । इसके बाद मैं आगेकी बात सोचूँगा'॥८

ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रो युधिष्ठिरम् ।
अनुज्ञातस्त्वया पुत्र भुञ्जीयामिति कामये ॥ ८६

तब महातेजस्वी धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरसे कहा—'बेटा ! मुझे वनमें जानेकी अनुमति दे दो तो मैं भोजन करूँ; य मेरी इच्छा है' ॥ ८६ ॥

इति ब्रुवति राजेन्द्रे धृतराष्ट्रे युधिष्ठिरम् ।
ऋषिः सत्यवतीपुत्रो व्यासोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८

महाराज धृतराष्ट्र युधिष्ठिरसे ये बातें कह ही रहे थे महर्षि सत्यवतीनन्दन व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और इ प्रकार कहने लगे ॥ ८७ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रनिर्वेदे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रका निर्वेदविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

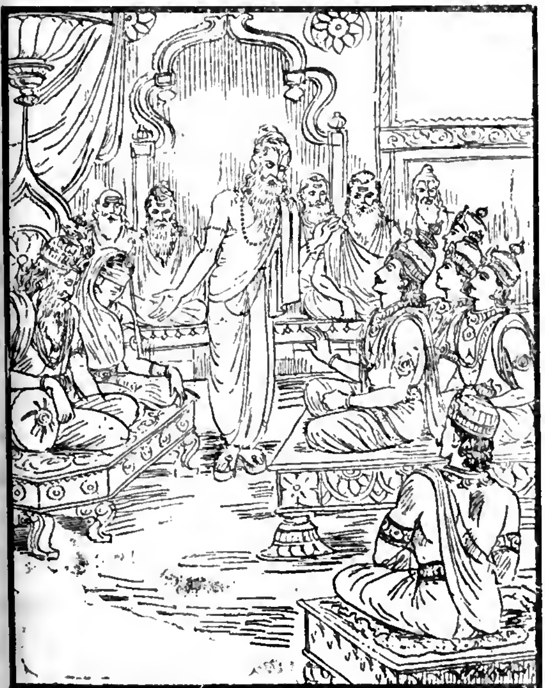
चतुर्थोऽध्यायः

व्यासजीके समझानेसे युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको वनमें जानेके लिये अनुमति देना

व्यास उवाच

युधिष्ठिर महाबाहो यथाह कुरुनन्दनः ।
धृतराष्ट्रो महातेजास्तत् कुरुष्वाविचारयन् ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—महाबाहु युधिष्ठिर ! कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले महातेजस्वी धृतराष्ट्र जो कुछ कह रहे हैं, उसे बिना विचारे पूरा करो ॥ १ ॥



अयं हि वृद्धो नृपतिर्हतपुत्रो विशेषतः ।
नेदं कृच्छ्रं चिरतरं सहेदिति मतिर्मम ॥ २ ॥

अब ये राजा बूढ़े हो गये हैं, विशेषतः इनके सभी पुत्र नष्ट हो चुके हैं । मेरा ऐसा विश्वास है कि अब ये इस कष्टको अधिक कालतक नहीं सह सकेंगे ॥ २ ॥

गान्धारी च महाभागा प्राज्ञा करुणवेदिनी ।
पुत्रशोकं महाराज धैर्येणोद्वहते भृशम् ॥ ३ ॥

महाराज ! महाभागा गान्धारी परम विदुषी और करुणाका अनुभव करनेवाली हैं;इसीलिये ये महान् पुत्रशोकको धैर्यपूर्वक सहती चली आ रही हैं ॥ ३ ॥

अहमप्येतदेव त्वां ब्रवीमि कुरु मे वचः ।
अनुज्ञां लभतां राजा मा वृथेह मरिष्यति ॥ ४ ॥

मैं भी तुमसे यही कहता हूँ, तुम मेरी बात मानो । राजा धृतराष्ट्रको तुम्हारी ओरसे वनमें जानेकी अनुमति मिलनी ही चाहिये, नहीं तो यहाँ रहनेसे इनकी व्यर्थ मृत्यु होगी ॥ ४ ॥

राजर्षीणां पुराणानामनुयातु गतिं नृपः ।
राजर्षीणां हि सर्वेषामन्ते वनमुपाश्रयः ॥ ५ ॥

तुम उन्हें अवसर दो, जिससे ये नरेश प्राचीन राजर्षियोंके पथका अनुसरण कर सकें । समस्त राजर्षियोंने जीवनके अन्तिम भागमें वनका ही आश्रय लिया है ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः स तदा राजा व्यासेनाद्भुतकर्मणा ।
प्रत्युवाच महातेजा धर्मराजो महामुनिम् ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! अद्भुतकर्मा व्यासजीके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिरने उन महामुनिको इस प्रकार उत्तर दिया—॥ ६ ॥

भगवानेव नो मान्यो भगवानेव नो गुरुः ।
भगवानस्य राज्यस्य कुलस्य च परायणम् ॥ ७ ॥

'भगवन् ! आप ही हमलोगोंके माननीय और आप ही हमारे गुरु हैं । इस राज्य और पुरके परम आधार भी आप ही हैं ॥ ७ ॥

अहं तु पुत्रो भगवन् पिता राजा गुरुश्च मे ।
निदेशवर्ती च पितुः पुत्रो भवति धर्मतः ॥ ८ ॥

'भगवन् ! राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता और गुरु हैं । धर्मतः पुत्र ही पिताकी आज्ञाके अधीन होता है । (वह पिताको आज्ञा कैसे दे सकता है)' ॥ ८ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः स तु तं प्राह व्यासो वेदविदां वरः ।
युधिष्ठिरं महातेजाः पुनरेव महाकविः ॥ ९ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, महातेजस्वी, महाज्ञानी व्यासजीने युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर उन्हें समझाते हुए पुनः इस प्रकार कहा—॥ ९ ॥

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
राजायं वृद्धतां प्राप्तः प्रमाणे परमे स्थितः ॥ १० ॥

'महाबाहु भरतनन्दन ! तुम जैसा कहते हो, वैसा ही ठीक है, तथापि राजा धृतराष्ट्र बूढ़े हो गये हैं और अन्तिम अवस्थामें स्थित हैं ॥ १० ॥

सोऽयं मयाभ्यनुज्ञातस्त्वया च पृथिवीपतिः ।
करोतु स्वमभिप्रायं मास्य विघ्नकरो भव ॥ ११ ॥

'अतः अब ये भूपाल मेरी और तुम्हारी अनुमति लेकर तपस्याके द्वारा अपना मनोरथ सिद्ध करें । इनके शुभ कार्यमें विघ्न न डालो ॥ ११ ॥

एष एव परो धर्मो राजर्षीणां युधिष्ठिर।
समरे वा भवेन्मृत्युर्वने वा विधिपूर्वकम्॥ १२॥

'युधिष्ठिर! राजर्षियोंका यही परम धर्म है कि युद्धमें अथवा वनमें उनकी शास्त्रोक्त विधिपूर्वक मृत्यु हो॥ १२॥

पित्रा तु तव राजेन्द्र पाण्डुना पृथिवीक्षिता।
शिष्यवृत्तेन राजायं गुरुवत् पर्युपासितः॥ १३॥

'राजेन्द्र! तुम्हारे पिता राजा पाण्डुने भी धृतराष्ट्रको गुरुके समान मानकर शिष्यभावसे इनकी सेवा की थी॥ १३॥

क्रतुभिर्दक्षिणावद्भी रत्नपर्वतशोभितैः।
महद्भिरिष्टं गौर्भुक्ता प्रजाश्च परिपालिताः॥ १४॥

'इन्होंने रत्नमय पर्वतोंसे सुशोभित और प्रचुर दक्षिणासे सम्पन्न अनेक बड़े-बड़े यज्ञ किये हैं, पृथ्वीका राज्य भोगा है और प्रजाका भलीभाँति पालन किया है॥ १४॥

पुत्रसंस्थं च विपुलं राज्यं विप्रोषिते त्वयि।
त्रयोदशसमा भुक्तं दत्तं च विविधं वसु॥ १५॥

'जब तुम वनमें चले गये थे, उन दिनों तेरह वर्षोंतक अपने पुत्रके अधीन रहनेवाले विशाल राज्यका इन्होंने उपभोग किया और नाना प्रकारके धन दिये हैं॥ १५॥

त्वया चायं नरव्याघ्र गुरुशुश्रूषयानघ।
आराधितः सभृत्येन गान्धारी च यशस्विनी॥ १६॥

'निष्पाप नरव्याघ्र! सेवकोंसहित तुमने भी गुरुसेवाके भावसे इनकी तथा यशस्विनी गान्धारी देवीकी आराधना की है॥ १६॥

अनुजानीहि पितरं समयोऽस्य तपोविधौ।
न मन्युर्विद्यते चास्य सुसूक्ष्मोऽपि युधिष्ठिर॥ १७॥

'अतः तुम अपने पिताको वनमें जानेकी अनुमति दे दो; क्योंकि अब इनके तप करनेका समय आया है। युधिष्ठिर! इनके मनमें तुम्हारे ऊपर अणुमात्र भी रोष नहीं है'॥ १७॥

वैशम्पायन उवाच

एतावदुक्त्वा वचनमनुमान्य च पार्थिवम्।
तथास्त्विति च तेनोक्तः कौन्तेयेन ययौ वनम्॥ १८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर महर्षि व्यासने राजा युधिष्ठिरको राजी कर लिया और 'बहुत अच्छा,' कहकर जब युधिष्ठिरने उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली, तब वे वनमें अपने आश्रमपर चले गये॥ १८॥

गते भगवति व्यासे राजा पाण्डुसुतस्तदा।
प्रोवाच पितरं वृद्धं मन्दं मन्दमिवानतः॥ १९॥

भगवान् व्यासके चले जानेपर राजा युधिष्ठिरने अपने बूढ़े ताऊ धृतराष्ट्रसे नम्रतापूर्वक धीरे-धीरे कहा—॥ १९॥

यदाह भगवान् व्यासो यच्चापि भवतो मतम्।
यथाऽऽह च महेष्वासः कृपो विदुर एव च॥ २०॥
युयुत्सुः संजयश्चैव तत्कर्तास्म्यहमञ्जसा।
सर्वे एव हि मान्या मे कुलस्य हि हितैषिणः॥ २१॥

'पिताजी! भगवान् व्यासने जो आज्ञा दी है और आपने जो कुछ करनेका निश्चय किया है तथा महान् धनुर्धर कृपाचार्य, विदुर, युयुत्सु और संजय जैसा कहेंगे, निस्संदेह मैं वैसा ही करूँगा; क्योंकि ये सब लोग इस कुलके हितैषी होनेके कारण मेरे लिये माननीय हैं॥२०-२१॥

इदं तु याचे नृपते त्वामहं शिरसा नतः।
क्रियतां तावदाहारस्ततो गच्छाश्रमं प्रति॥ २२॥

'किंतु नरेश्वर! इस समय आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि पहले भोजन कर लीजिये, फिर आश्रमको जाइयेगा'॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासानुज्ञायां चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें व्यासकी आज्ञाविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके द्वारा युधिष्ठिरको राजनीतिका उपदेश

वैशम्पायन उवाच

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातो धृतराष्ट्रः प्रतापवान्।
ययौ स्वभवनं राजा गान्धार्यानुगतस्तदा॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—तदनन्तर जनमेजय! राजा युधिष्ठिरकी अनुमति पाकर प्रतापी राजा धृतराष्ट्र गान्धारीके साथ अपने भवनमें गये॥ १॥

मन्दप्राणगतिर्धीमान् कृच्छ्रादिव समुद्वहन्।
पदातिः स महीपालो जीर्णो गजपतिर्यथा॥ २॥

उस समय उनकी चलने-फिरनेकी शक्ति बहुत कम हो गयी थी। वे बुद्धिमान् भूपाल बूढ़े हाथीकी भाँति पैदल चलते समय बड़ी कठिनाईसे पैर उठाते थे॥ २॥

तमन्वगच्छद् विदुरो विद्वान् सूतश्च संजयः।
स चापि परमेष्वासः कृपः शारद्वतस्तथा॥ ३॥

उस समय उनके पीछे-पीछे ज्ञानी विदुर, सारथि संजय तथा शरद्वान्के पुत्र महाधनुर्धर कृपाचार्य भी गये॥ ३॥

स प्रविश्य गृहं राजन् कृतपूर्वाह्णिकक्रियः।
तर्पयित्वा द्विजश्रेष्ठानाहारमकरोत् तदा॥ ४॥

राजन् ! घरमें प्रवेश करके उन्होंने पूर्वाह्णकालकी [ध]ार्मिक क्रिया पूरी की; फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अन्न-पान [आ]दिसे तृप्त करके स्वयं भी भोजन किया ॥ ४ ॥

[ग]ान्धारी चैव धर्मज्ञा कुन्त्या सह मनस्विनी ।
[व]धूभिरुपचारेण पूजिताभुङ्क्त भारत ॥ ५ ॥

भरतनन्दन ! इसी प्रकार धर्मको जाननेवाली मनस्विनी [ग]ान्धारी देवीने भी कुन्तीसहित पुत्रवधुओंद्वारा विविध उपचारोंसे पूजित होकर आहार ग्रहण किया ॥ ५ ॥

[कृ]ताहारं कृताहाराः सर्वे ते विदुरादयः ।
[प]ाण्डवाश्च कुरुश्रेष्ठमुपातिष्ठन्त तं नृपम् ॥ ६ ॥

कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रके भोजन कर लेनेपर पाण्डव [त]था विदुर आदि सब लोगोंने भी भोजन किया, फिर [स]ब-के-सब धृतराष्ट्रकी सेवामें उपस्थित हुए ॥ ६ ॥

[त]तोऽब्रवीन्महाराज कुन्तीपुत्रमुपह्वरे ।
निषण्णं पाणिना पृष्ठे संस्पृशन्नम्बिकासुतः ॥ ७ ॥

महाराज ! उस समय कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको एकान्तमें अपने निकट बैठा जान धृतराष्ट्रने उनकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—॥ ७ ॥



अप्रमादस्त्वया कार्यः सर्वथा कुरुनन्दन ।
अष्टाङ्गे राजशार्दूल राज्ये धर्मपुरस्कृते ॥ ८ ॥

'कुरुनन्दन ! राजसिंह ! इस आठ अङ्गोंवाले राज्यमें तुम सदा धर्मको ही आगे रखना और इसके संरक्षण और संचालनमें कभी किसी तरह भी प्रमाद न करना ॥ ८ ॥

तत्तु शक्यं महाराज रक्षितुं पाण्डुनन्दन ।
राज्यं धर्मेण कौन्तेय विद्वानसि निबोध तत् ॥ ९ ॥

'महाराज पाण्डुनन्दन ! कुन्तीकुमार ! राज्यकी रक्षा धर्मसे ही हो सकती है। इस बातको तुम स्वयं भी जानते हो तथापि मुझसे भी सुनो ॥ ९ ॥

विद्यावृद्धान् सदैव त्वमुपासीथा युधिष्ठिर ।
शृणुयास्ते च यद् ब्रूयुः कुर्याश्चैवाविचारयन् ॥ १० ॥

'युधिष्ठिर ! विद्यामें बढ़े-चढ़े विद्वान् पुरुषोंका सदा ही सङ्ग किया करो। वे जो कुछ कहें, उसे ध्यानपूर्वक सुनो और उसका बिना विचारे पालन करो ॥ १० ॥

प्रातरुत्थाय तान् राजन् पूजयित्वा यथाविधि ।
कृत्यकाले समुत्पन्ने पृच्छेथाः कार्यमात्मनः ॥ ११ ॥

'राजन् ! प्रातःकाल उठकर उन विद्वानोंका यथायोग्य सत्कार करके कोई कार्य उपस्थित होनेपर उनसे अपना कर्तव्य पूछो ॥ ११ ॥

ते तु सम्मानिता राजंस्त्वया कार्यहितार्थिना ।
प्रवक्ष्यन्ति हितं तात सर्वथा तव भारत ॥ १२ ॥

'राजन् ! तात ! भरतनन्दन ! अपना हित करनेकी इच्छासे तुम्हारे द्वारा सम्मानित होनेपर वे सर्वथा तुम्हारे हितकी ही बात बतायेंगे ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणि च सर्वाणि वाजिवत् परिपालय ।
हितायैव भविष्यन्ति रक्षितं द्रविणं यथा ॥ १३ ॥

'जैसे सारथि घोड़ोंको काबूमें रखता है, उसी प्रकार तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अधीन रखकर उनकी रक्षा करो। ऐसा करनेसे वे इन्द्रियाँ सुरक्षित धनकी भाँति भविष्यमें तुम्हारे लिये निश्चय ही हितकर होंगी ॥ १३ ॥

अमात्यानुपधातीतान् पितृपैतामहाञ्शुचीन् ।
दान्तान् कर्मसु पुण्यांश्च पुण्यान् सर्वेषु योजयेः ॥ १४ ॥

'जो जाँचे-बूझे हुए तथा निष्कपटभावसे काम करनेवाले हों, जो पिता-पितामहोंके समयसे काम देखते आ रहे हों तथा जो बाहर-भीतरसे शुद्ध, संयमी और जन्म एवं कर्मसे भी पवित्र हों, ऐसे मन्त्रियोंको ही सब तरहके उत्तरदायित्वपूर्ण कार्योंमें नियुक्त करना ॥ १४ ॥

चारयेथाश्च सततं चारैरविदितैः परैः ।
परीक्षितैर्बहुविधैः स्वराष्ट्रप्रतिवासिभिः ॥ १५ ॥

'जिनकी किसी अवसरपर परीक्षा कर ली गयी हो और जो अपने ही राज्यके भीतर निवास करनेवाले हों, ऐसे अनेक जासूसोंको भेजकर उनके द्वारा शत्रुओंका गुप्त भेद लेते रहना और प्रयत्नपूर्वक ऐसी चेष्टा करना, जिससे शत्रु तुम्हारा भेद न जान सकें ॥ १५ ॥

पुरं च ते सुगुप्तं स्याद् दृढप्राकारतोरणम् ।
अट्टाट्टालकसम्बाधं षट्पदं सर्वतोदिशम् ॥ १६ ॥

'तुम्हारे नगरकी रक्षाका पूर्ण प्रबन्ध रहना चाहिये।

उसके चारों ओरकी दीवारें तथा मुख्य द्वार अत्यन्त सुदृढ़ होने चाहिये। बीचका सारा नगर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओंसे भरा होना चाहिये। सब दिशाओंमें छः चहारदीवारियाँ बननी चाहिये ॥ १६ ॥

तस्य द्वाराणि सर्वाणि पर्याप्तानि बृहन्ति च।
सर्वतः सुविभक्तानि यन्त्रैरारक्षितानि च ॥ १७ ॥

'नगरके सभी दरवाजे विस्तृत एवं विशाल हों। सब ओर उनकी रक्षाके लिये यन्त्र लगे हों तथा उन द्वारोंका विभाग सुन्दर ढंगसे सम्पन्न हो ॥ १७ ॥

पुरुषैरलमर्थस्ते विदितैः कुलशीलतः।
आत्मा च रक्ष्यः सततं भोजनादिषु भारत ॥ १८ ॥

'भारत ! जिन मनुष्योंके कुल और शील अच्छी तरह ज्ञात हों, उन्हींसे तुम्हें काम लेना चाहिये। भोजन आदिके अवसरोंपर सदा तुम्हें आत्मरक्षापर ध्यान देना चाहिये ॥ १८ ॥

विहाराहारकालेषु माल्यशय्यासनेषु च।
स्त्रियश्च ते सुगुप्ताः स्युर्वृद्धैराप्तैरधिष्ठिताः ॥ १९ ॥
शीलवद्भिः कुलीनैश्च विद्वद्भिश्च युधिष्ठिर।

'आहार-विहारके समय तथा माला पहनने, शय्यापर सोने और आसनोंपर बैठनेके समय भी तुम्हें सावधानीके साथ अपनी रक्षा करनी चाहिये। युधिष्ठिर ! कुलीन, शीलवान्, विद्वान्, विश्वासपात्र एवं वृद्ध पुरुषोंकी अध्यक्षतामें रखकर तुम्हें अन्तःपुरकी स्त्रियोंकी रक्षाका सुन्दर प्रबन्ध करना चाहिये ॥ १९½ ॥

मन्त्रिणश्चैव कुर्वीथा द्विजान् विद्याविशारदान् ॥ २० ॥
विनीतांश्च कुलीनांश्च धर्मार्थकुशलानृजून्।
तैः सार्धं मन्त्रयेथास्त्वं नात्यर्थं बहुभिः सह ॥ २१ ॥

'राजन् ! तुम उन्हीं ब्राह्मणोंको अपने मन्त्री बनाओ, जो विद्यामें प्रवीण, विनम्रशील, कुलीन, धर्म और अर्थमें कुशल तथा सरल स्वभाववाले हों। उन्हींके साथ तुम गूढ़ विषयपर विचार करो; किंतु अधिक लोगोंको साथ लेकर देरतक मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये ॥ २०-२१ ॥

समस्तैरपि च व्यस्तैर्व्यपदेशेन केनचित्।
सुसंवृतं मन्त्रगृहं स्थलं चारुह्य मन्त्रयेः ॥ २२ ॥

'सम्पूर्ण मन्त्रियोंको अथवा उनमेंसे दो-एकको किसी कामके बहाने चारों ओरसे घिरे हुए बंद कमरेमें या खुले मैदानमें ले जाकर उनके साथ किसी गूढ़ विषयपर विचार करना ॥ २२ ॥

अरण्ये निःशलाके वा न च रात्रौ कथंचन।
वानराः पक्षिणश्चैव ये मनुष्यानुसारिणः ॥ २३ ॥
सर्वे मन्त्रगृहे वर्ज्या ये चापि जडपङ्गवः।

'जहाँ अधिक घास-फूस या झाड़-झंखाड़ न हो, ऐसे जंगलमें भी गुप्त मन्त्रणा की जा सकती है; परंतु रात्रिके समय इन स्थानोंमें किसी तरह गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिये। मनुष्योंका अनुसरण करनेवाले जो वानर और पक्षी आदि हैं, उन सबको तथा मूर्ख एवं पङ्गु मनुष्योंको भी मन्त्रणागृहमें नहीं आने देना चाहिये ॥ २३½ ॥

मन्त्रभेदे हि ये दोषा भवन्ति पृथिवीक्षिताम् ॥ २४ ॥
न ते शक्याः समाधातुं कथंचिदिति मे मतिः।

'गुप्त मन्त्रणाके दूसरोंपर प्रकट हो जानेसे राजाओंको जो संकट प्राप्त होते हैं, उनका किसी तरह समाधान नहीं किया जा सकता—ऐसा मेरा विश्वास है ॥ २४½ ॥

दोषांश्च मन्त्रभेदस्य ब्रूयास्त्वं मन्त्रिमण्डले ॥ २५ ॥
अभेदे च गुणा राजन् पुनः पुनररिंदम।

'शत्रुदमन नरेश ! गुप्त मन्त्रणा फूट जानेपर जो दोष पैदा होते हैं और न फूटनेसे जो लाभ होते हैं, उनको तुम मन्त्रिमण्डलके समक्ष बारंबार बतलाते रहना ॥ २५½ ॥

पौरजानपदानां च शौचाशौचे युधिष्ठिर ॥ २६ ॥
यथा स्याद् विदितं राजंस्तथा कार्यं कुरूद्वह।

'राजन् ! कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! नगर और जनपदके लोगोंका हृदय तुम्हारे प्रति शुद्ध है या अशुद्ध, इस बातका तुम्हें जैसे भी ज्ञान प्राप्त हो सके, वैसा उपाय करना ॥ २६½ ॥

व्यवहारश्च ते राजन् नित्यमाप्तैरधिष्ठितः ॥ २७ ॥
योज्यस्तुष्टैर्हितै राजन् नित्यं चारैरनुष्ठितः।

'नरेश्वर ! न्याय करनेके कामपर तुम सदा ऐसे ही पुरुषोंको नियुक्त करना, जो विश्वासपात्र, संतोषी और हितैषी हों तथा गुप्तचरोंके द्वारा सदा उनके कार्योंपर दृष्टि रखना ॥

परिमाणं विदित्वा च दण्डं दण्ड्येषु भारत ॥ २८ ॥
प्रणयेयुर्यथान्यायं पुरुषास्ते युधिष्ठिर।

'भरतनन्दन युधिष्ठिर ! तुम्हें ऐसा विधान बनाना चाहिये, जिससे तुम्हारे नियुक्त किये हुए न्यायाधिकारी पुरुष अपराधियोंके अपराधकी मात्राको भलीभाँति जानकर जो दण्डनीय हों, उन्हें ही उचित दण्ड दें ॥ २८½ ॥

आदानरुचयश्चैव परदाराभिमर्शिनः ॥ २९ ॥
उग्रदण्डप्रधानाश्च मिथ्या व्याहारिणस्तथा।
आक्रोष्टारश्च लुब्धाश्च हर्तारः साहसप्रियाः ॥ ३० ॥
सभाविहारभेत्तारो वर्णानां च प्रदूषकाः।
हिरण्यदण्ड्या वध्याश्च कर्तव्या देशकालतः ॥ ३१ ॥

'जो दूसरोंसे घूस लेनेकी रुचि रखते हों, परायी स्त्रियोंसे जिनका सम्पर्क हो, जो विशेषतः कठोर दण्ड देनेके पक्षपाती हों, झूठा फैसला देते हों, जो कटुवादी, लोभी, दूसरोंका धन हड़पनेवाले, दुस्साहसी, सभाभवन और उद्यान आदिको नष्ट करनेवाले तथा सभी वर्णके लोगोंको कलङ्कित करनेवाले हों,

उन न्यायाधिकारियोंको देश-कालका ध्यान रखते हुए सुवर्णदण्ड अथवा प्राणदण्डके द्वारा दण्डित करना चाहिये ॥२९-३१॥

प्रातरेव हि पश्येथा ये कुर्युर्व्ययकर्म ते।
अलंकारमथो भोज्यमत ऊर्ध्वं समाचरेः ॥ ३२ ॥

'प्रातःकाल उठकर (नित्य नियमसे निवृत्त होनेके बाद) पहले तुम्हें उन लोगोंसे मिलना चाहिये, जो तुम्हारे खर्चके कामपर नियुक्त हों। उसके बाद आभूषण पहनने या भोजन करनेके कामपर ध्यान देना चाहिये ॥ ३२ ॥

पश्येथाश्च ततो योधान् सदा त्वं प्रतिहर्षयन्।
दूतानां च चराणां च प्रदोषस्ते सदा भवेत् ॥ ३३ ॥

'तत्पश्चात् सैनिकोंका हर्ष और उत्साह बढ़ाते हुए उनसे मिलना चाहिये। दूतों और जासूसोंसे मिलनेके लिये तुम्हारे लिये सर्वोत्तम समय संध्याकाल है ॥ ३३ ॥

सदा चापररात्रान्ते भवेत् कार्यार्थनिर्णयः।
मध्यरात्रे विहारस्ते मध्याह्ने च सदा भवेत् ॥ ३४ ॥

'पहरभर रात बाकी रहते ही उठकर अगले दिनके कार्यक्रमका निश्चय कर लेना चाहिये। आधी रात और दोपहरके समय तुम्हें स्वयं घूम-फिरकर प्रजाकी अवस्थाका निरीक्षण करना उचित है ॥ ३४ ॥

सर्वे त्वौपयिकाः कालाः कार्याणां भरतर्षभ।
तथैवालंकृतः काले तिष्ठेथा भूरिदक्षिण ॥ ३५ ॥

'प्रचुर दक्षिणा देनेवाले भरतश्रेष्ठ! काम करनेके लिये सभी समय उपयोगी हैं तथा तुम्हें समय-समयपर सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत रहना चाहिये ॥ ३५ ॥

चक्रवत् तात कार्याणां पर्यायो दृश्यते सदा।
कोशस्य निचये यत्नं कुर्वीथा न्यायतः सदा ॥ ३६ ॥
विविधस्य महाराज विपरीतं विवर्जयेः।

'तात! चक्रकी भाँति सदा कार्योंका क्रम चलता रहता है, यह देखनेमें आता है। महाराज! नाना प्रकारके कोषका संग्रह करनेके लिये तुम्हें सदा न्यायानुकूल प्रयत्न करना चाहिये। इसके विपरीत अन्यायपूर्ण प्रयत्नको त्याग देना चाहिये ॥ ३६½ ॥

चारैर्विदित्वा शत्रूंश्च ये राज्ञामन्तरैषिणः ॥ ३७ ॥
तानाप्तैः पुरुषैर्दूराद् घातयेथा नराधिप।

'नरेश्वर! जो राजाओंके छिद्र देखा करते हैं, ऐसे राजविद्रोही शत्रुओंका गुप्तचरोंद्वारा पता लगाकर विश्वसनीय पुरुषोंद्वारा उन्हें दूरसे ही मरवा डालना चाहिये ॥ ३७½ ॥

कर्म दृष्ट्वाथ भृत्यांस्त्वं वरयेथाः कुरूद्वह ॥ ३८ ॥
कारयेथाश्च कर्माणि युक्तायुक्तैरधिष्ठितैः।

'कुरुश्रेष्ठ! पहले काम देखकर सेवकोंको नियुक्त करना चाहिये और अपने आश्रित मनुष्य योग्य हों या अयोग्य, उनसे काम अवश्य लेना चाहिये ॥ ३८½ ॥

सेनाप्रणेता च भवेत् तव तात दृढव्रतः ॥ ३९ ॥
शूरः क्लेशसहश्चैव हितो भक्तश्च पूरुषः।

'तात! तुम्हारे सेनापतिको दृढ़प्रतिज्ञ, शूरवीर, क्लेश सह सकनेवाला, हितैषी, पुरुषार्थी और स्वामिभक्त होना चाहिये ॥ ३९½ ॥

सर्वे जनपदाश्चैव तव कर्माणि पाण्डव ॥ ४० ॥
गोवद्रासभवश्चैव कुर्युर्ये व्यवहारिणः।

'पाण्डुनन्दन! तुम्हारे राज्यके अंदर रहनेवाले जो कारीगर और शिल्पी तुम्हारा काम करें, तुम्हें उनके भरण-पोषणका प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये; जैसे गधों और बैलोंसे काम लेनेवाले लोग उन्हें खानेको देते हैं ॥ ४०½ ॥

स्वरन्ध्रं पररन्ध्रं च स्वेषु चैव परेषु च ॥ ४१ ॥
उपलक्षयितव्यं ते नित्यमेव युधिष्ठिर।

'युधिष्ठिर! तुम्हें सदा ही स्वजनों और शत्रुओंके छिद्रोंपर दृष्टि रखनी चाहिये ॥ ४१½ ॥

देशजाश्चैव पुरुषा विक्रान्ताः स्वेषु कर्मसु ॥ ४२ ॥
यात्राभिरनुरूपाभिरनुग्राह्या हितास्त्वया।
गुणार्थिनां गुणः कार्यो विदुषां वै जनाधिप।
अविचार्याश्च ते ते स्युरचला इव नित्यशः ॥ ४३ ॥

'जनेश्वर! अपने देशमें उत्पन्न होनेवाले पुरुषोंमेंसे जो लोग अपने कार्यमें विशेष कुशल और हितैषी हों, उन्हें उनके योग्य आजीविका देकर अनुग्रहपूर्वक अपनाना चाहिये। विद्वान् राजाको उचित है कि वह गुणार्थी मनुष्यके गुण बढ़ानेका प्रयत्न करता रहे। उनके सम्बन्धमें तुम्हें कोई विचार नहीं करना चाहिये। वे तुम्हारे लिये सदा पर्वतके समान अविचल सहायक सिद्ध होंगे' ॥ ४२-४३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रोपदेशे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रका उपदेशविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

धृतराष्ट्रद्वारा राजनीतिका उपदेश

धृतराष्ट्र उवाच

मण्डलानि च बुध्येथाः परेषामात्मनस्तथा ।
उदासीनगणानां च मध्यस्थानां च भारत ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—भरतनन्दन ! तुम्हें शत्रुओंके, अपने, उदासीन राजाओंके तथा मध्यस्थ पुरुषोंके मण्डलोंका ज्ञान रखना चाहिये ॥ १ ॥

चतुर्णां शत्रुजातानां सर्वेषामाततायिनाम् ।
मित्रं चामित्रमित्रं च बोद्धव्यं तेऽरिकर्शन ॥ २ ॥

शत्रुसूदन ! तुम्हें चार प्रकारके शत्रुओंके और छः प्रकारके आततायियोंके भेदोंको एवं मित्र और शत्रुके मित्रको भी पहचानना चाहिये ॥ २ ॥

तथामात्या जनपदा दुर्गाणि विविधानि च ।
बलानि च कुरुश्रेष्ठ भवन्त्येषां यथेच्छकम् ॥ ३ ॥
ते च द्वादश कौन्तेय राज्ञां वै विषयात्मकाः ।
मन्त्रिप्रधानाश्च गुणाः षष्टिर्द्वादश च प्रभो ॥ ४ ॥
एतन्मण्डलमित्याहुराचार्या नीतिकोविदाः ।

कुरुश्रेष्ठ ! अमात्य (मन्त्री), जनपद (देश), नाना प्रकारके दुर्ग और सेना—इनपर शत्रुओंका यथेष्ट लक्ष्य रहता है (अतः इनकी रक्षाके लिये सदा सावधान रहना चाहिये) । प्रभो ! कुन्तीनन्दन ! उपर्युक्त बारह प्रकारके मनुष्य राजाओंके ही मुख्य विषय हैं । मन्त्रीके अधीन रहनेवाले कृषी आदि साठ[१] गुण और पूर्वोक्त बारह प्रकारके मनुष्य—इन सबको नीतिज्ञ आचार्योंने 'मण्डल' नाम दिया है ॥ ३-४½ ॥

अत्र षाड्गुण्यमायत्तं युधिष्ठिर निबोध तत् ॥ ५ ॥
वृद्धिक्षयौ च विज्ञेयौ स्थानं च कुरुसत्तम ।

युधिष्ठिर ! तुम इस मण्डलको अच्छी तरह जानो; क्योंकि राज्यकी रक्षाके संधि-विग्रह आदि छः उपायोंका उचित उपभोग इन्हींके अधीन है । कुरुश्रेष्ठ ! राजाको चाहिये कि वह अपनी वृद्धि, क्षय और स्थितिका सदा ही ज्ञान रखे ॥ ५½ ॥

द्विसप्तत्यां महाबाहो ततः षाड्गुण्यजा गुणाः ॥ ६ ॥
यदा स्वपक्षो बलवान् परपक्षस्तथाबलः ।
विगृह्य शत्रून् कौन्तेय जेयः क्षितिपतिस्तदा ॥ ७ ॥

महाबाहो ! पहले राजप्रधान बारह और मन्त्रिप्रधा[न] साठ—इन बहत्तरका ज्ञान प्राप्त करके संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—इन छः गुणोंका यथावस[र] उपयोग किया जाता है । कुन्तीनन्दन ! जब अपना प[क्ष] बलवान् तथा शत्रुका पक्ष निर्बल जान पड़े, उस समय शत्रु[के] साथ युद्ध छेड़कर विपक्षी राजाको जीतनेका प्रयत्न कर[ना] चाहिये ॥ ६-७ ॥

यदा परे च बलिनः स्वपक्षश्चैव दुर्बलः ।
सार्धं विद्वांस्तदा क्षीणः परैः संधिं समाश्रयेत् ॥ ८ [॥]

परंतु जब शत्रु-पक्ष प्रबल और अपना ही पक्ष दुर्ब[ल] हो, उस समय क्षीणशक्ति विद्वान् पुरुष शत्रुओंके साथ सं[धि] कर ले ॥ ८ ॥

द्रव्याणां संचयश्चैव कर्तव्यः सुमहांस्तथा ।
यदा समर्थो यानाय नचिरेणैव भारत ॥ ९ [॥]
तदा सर्वं विधेयं स्यात् स्थाने न स विचारयेत् ।

भारत ! राजाको सदैव द्रव्योंका महान् संग्रह करते रह[ना] चाहिये । जब वह शीघ्र ही शत्रुपर आक्रमण करनेमें सम[र्थ] हो, उस समय उसका जो कर्तव्य हो, उसे वह स्थिरतापू[र्वक] भलीभाँति विचार ले ॥ ९½ ॥

भूमिरल्पफला देया विपरीतस्य भारत ॥ १० [॥]
हिरण्यं कुप्यभूयिष्ठं मित्रं क्षीणमथो बलम् ।

भारत ! यदि अपनी विपरीत अवस्था हो तो शत्रु[को] कम उपजाऊ भूमि, थोड़ा-सा सोना और अधिक मात्र[ा में] जस्ता-पीतल आदि धातु तथा दुर्बल मित्र एवं सेना दे[कर] उसके साथ संधि करे ॥ १०½ ॥

विपरीतान्निगृह्णीयात् स्वयं हि संधिविशारदः ॥ ११ [॥]
संध्यर्थं राजपुत्रं वा लिप्सेथा भरतर्षभ ।
विपरीतं न तच्छ्रेयः पुत्र कस्यांचिदापदि ॥ १२ [॥]
तस्याः प्रमोक्षे यत्नं च कुर्याः सोपायमन्त्रवित् ।

यदि शत्रुकी विपरीत दशा हो और वह संधिके लि[ये] प्रार्थना करे तो संधिविशारद पुरुष उससे उपजाऊ भूमि, सोन[ा,] चाँदी आदि धातु तथा बलवान् मित्र एवं सेना लेकर उसके सा[थ] संधि करे अथवा भरतश्रेष्ठ ! प्रतिद्वन्द्वी राजाके राजकुमा[र]को ही अपने यहाँ जमानतके तौरपर रखनेकी चेष्टा कर[नी] चाहिये । इसके विपरीत बर्ताव करना अच्छा नहीं है । बेटा ! यदि कोई आपत्ति आ जाय तो उचित उपाय औ[र] मन्त्रणाके ज्ञाता तुम-जैसे राजाको उससे छूटनेका प्रय[त्न] करना चाहिये ॥ ११-१२½ ॥

---

१. कृषी आदि आठ सन्धान कर्म हैं । बाल आदि बीस असन्धेय हैं । नास्तिकता आदि चौदह दोष हैं और मन्त्र आदि अठारह तीर्थ हैं । उन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन पहले आ चुका है ।

[प्र]कृतीनां च राजेन्द्र राजा दीनान् विभावयेत्॥ १३ ॥
[क्र]मेण युगपत् सर्वं व्यवसायं महाबलः ।
[पी]डनं स्तम्भनं चैव कोशभङ्गस्तथैव च ॥ १४ ॥

राजेन्द्र ! प्रजाजनोंके भीतर जो दीन-दरिद्र (अन्ध-[ब]धिर आदि) मनुष्य हों, उनका भी राजा आदर करे। [म]हाबली राजा अपने शत्रुके विपरीत क्रमशः अथवा एक [सा]थ सारा उद्योग आरम्भ कर दे। वह उसे पीड़ा दे। [उ]सकी गति अवरुद्ध करे और उसका खजाना नष्ट कर [दे] ॥ १३-१४ ॥

[का]र्यं यत्नेन शत्रूणां स्वराज्यं रक्षता स्वयम्।
[न] च हिंस्योऽभ्युपगतः सामन्तो वृद्धिमिच्छता ॥१५॥

अपने राज्यकी रक्षा करनेवाले राजाको यत्नपूर्वक [श]त्रुओंके साथ उपर्युक्त बर्ताव करना चाहिये; परंतु अपनी [वृ]द्धि चाहनेवाले नरेशको शरणमें आये हुए सामन्तका वध [क]दापि नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

[कौ]न्तेय तं न हिंसेत् स यो महीं विजिगीषते।
[ग]णानां भेदने योगमीप्सेथाः सह मन्त्रिभिः ॥ १६ ॥

कुन्तीकुमार ! जो समूची पृथ्वीपर विजय पाना चाहता [हो], वह तो कदापि उस (सामन्त) की हिंसा न करे। तुम [अ]पने मन्त्रियोंसहित सदा शत्रुगणोंमें फूट डालनेकी इच्छा [र]खना ॥ १६ ॥

[स]ाधुसंग्रहणाच्चैव पापनिग्रहणात् तथा।
[दु]र्बलाश्चैव सततं नान्वेष्टव्या बलीयसा ॥ १७ ॥

अच्छे पुरुषोंसे मेल-जोल बढ़ाये और दुष्टोंको कैद करके उन्हें दण्ड दे। महाबली नरेशको दुर्बल शत्रुके पीछे सदा नहीं पड़े रहना चाहिये ॥ १७ ॥

तिष्ठेथा राजशार्दूल वैतसीं वृत्तिमास्थितः।
यद्येनमभियायाच्च बलवान् दुर्बलं नृपः ॥ १८ ॥
सामादिभिरुपायैस्तं क्रमेण विनिवर्तयेः।

राजसिंह ! तुम्हें बेंतकी-सी वृत्ति (नम्रता) का आश्रय लेकर रहना चाहिये। यदि किसी दुर्बल राजापर बलवान् राजा आक्रमण करे तो क्रमशः साम आदि उपायोंद्वारा उस बलवान् राजाको लौटानेका प्रयत्न करना चाहिये ॥१८½॥

अशक्नुवंश्च युद्धाय निष्पतेत् सह मन्त्रिभिः ॥ १९ ॥
कोशेन पौरैर्दण्डेन ये चास्य प्रियकारिणः।

यदि अपनेमें युद्धकी शक्ति न हो तो मन्त्रियोंके साथ उस आक्रमणकारी राजाकी शरणमें जाय तथा कोश, पुरवासी मनुष्य, दण्डशक्ति एवं अन्य जो प्रिय कार्य हों, उन सबको अर्पित करके उस प्रतिद्वन्द्वीको लौटानेकी चेष्टा करे ॥१९½॥

असम्भवे तु सर्वस्य यथा मुख्येन निष्पतेत्।
क्रमेणानेन मुक्तिः स्याच्छरीरमिति केवलम् ॥ २० ॥

यदि किसी भी उपायसे संधि न हो तो मुख्य साधनको लेकर विपक्षीपर युद्धके लिये टूट पड़े। इस क्रमसे शरीर चला जाय तो भी वीर पुरुषकी मुक्ति ही होती है। केवल शरीर दे देना ही उसका मुख्य साधन है ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रोपदेशे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रका उपदेशविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

युधिष्ठिरको धृतराष्ट्रके द्वारा राजनीतिका उपदेश

धृतराष्ट्र उवाच

[सं]धिविग्रहमप्यत्र पश्येथा राजसत्तम।
[द्वि]योनिं विविधोपायं बहुकल्पं युधिष्ठिर ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! तुम्हें संधि [औ]र विग्रहपर भी दृष्टि रखनी चाहिये। शत्रु प्रबल हो तो [उ]सके साथ संधि करना और दुर्बल हो तो उसके [सा]थ युद्ध छेड़ना—ये संधि और विग्रहके दो आधार [हैं]। इनके प्रयोगके उपाय भी नाना प्रकारके हैं और इनके [प्र]कार भी बहुत हैं ॥ १ ॥

कौरव्य पर्युपासीथाः स्थित्वा द्वैविध्यमात्मनः।
तुष्टपुष्टबलः शत्रुरात्मवानिति च स्मरेत् ॥ २ ॥

कुरुनन्दन ! अपनी द्विविध अवस्था—बलाबलका अच्छी तरह विचार करके शत्रुसे युद्ध या मेल करना उचित है। यदि शत्रु मनस्वी है और उसके सैनिक हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट हैं तो उसपर सहसा धावा न करके उसे परास्त करनेका कोई दूसरा उपाय सोचे ॥ २ ॥

पर्युपासनकाले तु विपरीतं विधीयते।
आमर्दकाले राजेन्द्र व्यपसर्पेत् ततः परम् ॥ ३ ॥

आक्रमणकालमें शत्रुकी स्थिति विपरीत रहनी चाहिये अर्थात् उसके सैनिक हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट नहीं होने चाहिये। राजेन्द्र ! यदि शत्रुसे अपना मान मर्दन होनेकी सम्भावना हो तो वहाँसे भागकर किसी दूसरे मित्र राजाकी शरण लेनी चाहिये ॥ ३ ॥

व्यसनं भेदनं चैव शत्रूणां कारयेत् ततः।
कर्षणं भीषणं चैव युद्धे चैव बलक्षयम् ॥ ४ ॥

वहाँ यह प्रयत्न करना चाहिये कि शत्रुओंपर कोई संकट आ जाय या उनमें फूट पड़ जाय, वे क्षीण और भयभीत हो जायँ तथा युद्धमें उनकी सेना नष्ट हो जाय ॥४॥

प्रयास्यमानो नृपतिस्त्रिविधां परिचिन्तयेत्।
आत्मनश्चैव शत्रोश्च शक्तिं शास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥

शत्रुपर चढ़ाई करनेवाले शास्त्रविशारद राजाको अपनी और शत्रुकी त्रिविध शक्तियोंपर भलीभाँति विचार कर लेना चाहिये ॥ ५ ॥

उत्साहप्रभुशक्तिभ्यां मन्त्रशक्त्या च भारत।
उपपन्नो नृपो यायाद् विपरीतं च वर्जयेत् ॥ ६ ॥

भारत ! जो राजा उत्साह-शक्ति, प्रभुशक्ति और मन्त्र-शक्तिमें शत्रुकी अपेक्षा बढ़ा-चढ़ा हो, उसे ही आक्रमण करना चाहिये। यदि इसके विपरीत अवस्था हो तो आक्रमणका विचार त्याग देना चाहिये ॥ ६ ॥

आददीत बलं राजा मौलं मित्रबलं तथा।
अटवीबलं भृतं चैव तथा श्रेणीबलं प्रभो ॥ ७ ॥

प्रभो ! राजाको अपने पास सैनिकबल, धनबल, मित्रबल, अरण्यबल, भृत्यबल और श्रेणीबलका संग्रह करना चाहिये ॥ ७ ॥

तत्र मित्रबलं राजन् मौलं चैव विशिष्यते।
श्रेणीबलं भृतं चैव तुल्ये एवेति मे मतिः ॥ ८ ॥

राजन् ! इनमें मित्रबल और धनबल सबसे बढ़कर है। श्रेणीबल और भृत्यबल—ये दोनों समान ही हैं, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ८ ॥

तथा चारबलं चैव परस्परसमं नृप।
विज्ञेयं बहुकालेषु राज्ञा काल उपस्थिते ॥ ९ ॥

नरेश्वर ! चारबल (दूतोंका बल) भी परस्पर समान ही है। राजाको समय आनेपर अधिक अवसरोंपर इस तत्त्व-को समझे रहना चाहिये ॥ ९ ॥

आपदश्चापि बोद्धव्या बहुरूपा नराधिप।
भवन्ति राज्ञः कौरव्य यास्ताः पृथगतः शृणु ॥ १० ॥

महाराज ! कुरुनन्दन ! राजापर आनेवाली अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ भी होती हैं, जिन्हें जानना चाहिये। अतः उनका पृथक्-पृथक् वर्णन सुनो ॥ १० ॥

विकल्पा बहुधा राजन्नापदां पाण्डुनन्दन।
सामादिभिरुपन्यस्य गणयेत् तान् नृपः सदा ॥ ११

राजन् ! पाण्डुनन्दन ! उन आपत्तियोंके अनेक प्रका विकल्प हैं। राजा साम आदि उपायोंद्वारा उन सबको साम लाकर सदा गिने ॥ ११ ॥

यात्रां गच्छेद् बलैर्युक्तो राजा सद्भिः परंतप।
युक्तश्च देशकालाभ्यां बलैरात्मगुणैस्तथा ॥ १२

परंतप नरेश ! देश-कालकी अनुकूलता होनेपर सैनि बल तथा राजोचित गुणोंसे युक्त राजा अच्छी सेना स लेकर विजयके लिये यात्रा करे ॥ १२ ॥

हृष्टपुष्टबलो गच्छेद् राजा वृद्ध्युदये रतः।
अकृशश्चाप्यथो यायादनृतावपि पाण्डव ॥ १३

पाण्डुनन्दन ! अपने अभ्युदयके लिये तत्पर रहनेवा राजा यदि दुर्बल न हो और उसकी सेना हृष्ट-पुष्ट हो वह युद्धके अनुकूल मौसम न होनेपर भी शत्रु चढ़ाई करे ॥ १३ ॥

तूणाश्मानं वाजिरथप्रवाहां
ध्वजद्रुमैः संवृतकूलरोधसम्।
पदातिनागैर्बहुकर्दमां नदीं
सपत्ननाशे नृपतिः प्रयोजयेत् ॥ १४

शत्रुओंके विनाशके लिये राजा अपनी सेनारूपी नदी प्रयोग करे। जिसमें तरकस ही प्रस्तरखण्डके समान घोड़े और रथरूपी प्रवाह शोभा पाते हैं, जिसका कूल-किन ध्वजरूपी वृक्षोंसे आच्छादित है तथा पैदल और हाथी जि भीतर अगाध पङ्कके समान जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥

अथोपपत्त्या शकटं पद्मवज्रं च भारत।
उशना वेद यच्छास्त्रं तत्रैतद् विहितं विभो ॥ १५

भारत ! युद्धके समय युक्ति करके सेनाका शकट, अथवा वज्र नामक व्यूह बना ले। प्रभो ! शुक्राचार्य शास्त्रको जानते हैं, उसमें ऐसा ही विधान मिलता है ॥१

चारयित्वा परबलं कृत्वा स्वबलदर्शनम्।
स्वभूमौ योजयेद् युद्धं परभूमौ तथैव च ॥ १

गुप्तचरोंद्वारा शत्रुसेनाकी जाँच-पड़ताल करके अ सैनिक शक्तिका भी निरीक्षण करे। फिर अपनी या श भूमिपर युद्ध आरम्भ करे ॥ १६ ॥

बलं प्रसादयेद् राजा निक्षिपेद् बलिनो नरान्।
ज्ञात्वा स्वविषयं तत्र सामादिभिरुपक्रमेत् ॥ १

राजाको चाहिये कि वह पारितोषिक आदिके द्वारा सेन संतुष्ट रखे और उसमें बलवान् मनुष्योंकी भर्ती करे। अ

बलाबलको अच्छी तरह समझकर साम आदि उपायोंके द्वारा संधि या युद्धके लिये उद्योग करे ॥ १७ ॥

सर्वथैव महाराज शरीरं धारयेदिह ।
प्रेत्य चेह च कर्तव्यमात्मनिःश्रेयसं परम् ॥ १८ ॥

महाराज ! इस जगत्‌में सभी उपायोंद्वारा शरीरकी रक्षा करनी चाहिये और उसके द्वारा इहलोक तथा परलोकमें भी अपने कल्याणका उत्तम साधन करना उचित है ॥ १८ ॥

एवमेतन्महाराज राजा सम्यक् समाचरन् ।
प्रेत्य स्वर्गमवाप्नोति प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ १९ ॥

महाराज ! जो राजा इन सब बातोंका विचार करके इनके अनुसार ठीक-ठीक आचरण और प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करता है, वह मृत्युके पश्चात् स्वर्गलोकमें जाता है ॥ १९ ॥

एवं त्वया कुरुश्रेष्ठ वर्तितव्यं प्रजाहितम् ।
उभयोर्लोकयोस्तात प्राप्तये नित्यमेव हि ॥ २० ॥

तात ! कुरुश्रेष्ठ ! इस प्रकार तुम्हें इहलोक और परलोकमें सुख पानेके लिये सदा ही प्रजावर्गके हित-साधनमें संलग्न रहना चाहिये ॥ २० ॥

भीष्मेण सर्वमुक्तोऽसि कृष्णेन विदुरेण च ।
मयाप्यवश्यं वक्तव्यं प्रीत्या ते नृपसत्तम ॥ २१ ॥

नृपश्रेष्ठ ! भीष्मजी, भगवान् श्रीकृष्ण तथा विदुरने तुम्हें सभी बातोंका उपदेश कर दिया है । मेरा भी तुम्हारे ऊपर प्रेम है, इसलिये मैंने भी तुम्हें कुछ बताना आवश्यक समझा है ॥ २१ ॥

एतत् सर्वं यथान्यायं कुर्वीथा भूरिदक्षिण ।
प्रियस्तथा प्रजानां त्वं स्वर्गे सुखमवाप्स्यसि ॥ २२ ॥

यज्ञमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाले महाराज ! इन सब बातोंका यथोचित रूपसे पालन करना । इससे तुम प्रजाके प्रिय बनोगे और स्वर्गमें भी सुख पाओगे ॥ २२ ॥

अश्वमेधसहस्रेण यो यजेत् पृथिवीपतिः ।
पालयेद् वापि धर्मेण प्रजास्तुल्यं फलं लभेत् ॥ २३ ॥

जो राजा एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करता है अथवा दूसरा जो नरेश धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करता है, उन दोनोंको समान फल प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रोपसंवादे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रका उपसंवादविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका कुरुजाङ्गलदेशकी प्रजासे वनमें जानेके लिये आज्ञा माँगना

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतत् करिष्यामि यथाऽऽत्थ पृथिवीपते ।
भूयश्चैवानुशास्योऽहं भवता पार्थिवर्षभ ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले—पृथ्वीनाथ ! नृपश्रेष्ठ ! आप जैसा कहते हैं, वैसा ही करूँगा । अभी आप मुझे कुछ और उपदेश दीजिये ॥ १ ॥

भीष्मे स्वर्गमनुप्राप्ते गते च मधुसूदने ।
विदुरे संजये चैव कोऽन्यो मां वक्तुमर्हति ॥ २ ॥

भीष्मजी स्वर्ग सिधारे, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका पधारे और विदुर तथा संजय भी आपके साथ ही जा रहे हैं । अब दूसरा कौन रह जाता है, जो मुझे उपदेश दे सके ॥ २ ॥

यत् तु मामनुशास्तीह भवानद्य हिते स्थितः ।
कर्तास्मि तन्महीपाल निर्वृतो भव पार्थिव ॥ ३ ॥

भूपाल ! पृथ्वीपते ! आज मेरे हितसाधनमें संलग्न होकर आप मुझे यहाँ जो कुछ उपदेश देते हैं, मैं उसका पालन करूँगा । आप संतुष्ट हों ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मराजेन धीमता ।
कौन्तेयं समनुज्ञातुमियेष भरतर्षभ ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ ! बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर राजर्षि धृतराष्ट्रने कुन्तीकुमारसे जानेके लिये अनुमति लेनेकी इच्छा की और कहा—॥ ४ ॥

पुत्र संशाम्यतां तावन्ममापि बलवाञ्श्रमः ।
इत्युक्त्वा प्राविशद् राजा गान्धार्या भवनं तदा॥ ५ ॥

'बेटा ! अब शान्त रहो । मुझे बोलनेमें बड़ा परिश्रम होता है (अब तो मैं जानेकी ही अनुमति चाहता हूँ) ।' ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्रने उस समय गान्धारीके भवनमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥

तमासनगतं देवी गान्धारी धर्मचारिणी ।
उवाच काले कालज्ञा प्रजापतिसमं पतिम् ॥ ६ ॥

वहाँ जब वे आसनपर विराजमान हुए, तब समयका

ज्ञान रखनेवाली धर्मपरायणा गान्धारी देवीने उस समय प्रजापतिके समान अपने पतिसे इस प्रकार पूछा—॥ ६ ॥

अनुज्ञातः स्वयं तेन व्यासेन त्वं महर्षिणा ।
युधिष्ठिरस्यानुमते कदारण्यं गमिष्यसि ॥ ७ ॥

'महाराज ! स्वयं महर्षि व्यासने आपको वनमें जानेकी आज्ञा दे दी है और युधिष्ठिरकी भी अनुमति मिल ही गयी है । अब आप कब वनको चलेंगे ?' ॥ ७ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

गान्धार्यहमनुज्ञातः स्वयं पित्रा महात्मना ।
युधिष्ठिरस्यानुमते गन्तास्मि नचिराद् वनम् ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्रने कहा—गान्धारि ! मेरे महात्मा पिता व्यासने स्वयं तो आज्ञा दे ही दी है, युधिष्ठिरकी भी अनुमति मिल गयी है; अतः अब मैं जल्दी ही वनको चलूँगा ॥ ८ ॥

अहं हि तावत् सर्वेषां तेषां दुर्द्यूतदेविनाम् ।
पुत्राणां दातुमिच्छामि प्रेतभावानुगं वसु ॥ ९ ॥
सर्वप्रकृतिसांनिध्यं कारयित्वा स्ववेश्मनि ।

जानेके पहले मैं चाहता हूँ कि समस्त प्रजाको घरपर बुलाकर अपने मरे हुए उन जुआरी पुत्रोंके उद्देश्यसे उनके पारलौकिक लाभके लिये कुछ धन दान कर दूँ ॥ ९½ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा धर्मराजाय प्रेषयामास वै तदा ॥ १० ॥
स च तद्वचनात् सर्वं समानिन्ये महीपतिः ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्रने धर्मराज युधिष्ठिरके पास अपना विचार कहला भेजा । राजा युधिष्ठिरने देनेके लिये उनकी आज्ञाके अनुसार वह सब सामग्री जुटा दी (धृतराष्ट्रने उसका यथायोग्य वितरण कर दिया) ॥ १०½ ॥

ततः प्रतीतमनसो ब्राह्मणाः कुरुजाङ्गलाः ॥ ११ ॥
क्षत्रियाश्चैव वैश्याश्च शूद्राश्चैव समाययुः ।

उधर राजाका संदेश पाकर कुरुजाङ्गलदेशके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वहाँ आये । उन सबके हृदयमें बड़ी प्रसन्नता थी ॥ ११½ ॥

ततो निष्क्रम्य नृपतिस्तस्मादन्तःपुरात् तदा ॥ १२ ॥
ददृशे तं जनं सर्वं सर्वाश्च प्रकृतीस्तथा ।

तदनन्तर महाराज धृतराष्ट्र अन्तःपुरसे बाहर निकले और वहाँ नगर तथा जनपदकी समस्त प्रजाके उपस्थित होनेका समाचार सुना ॥ १२½ ॥

समवेतांश्च तान् सर्वान् पौरान् जानपदांस्तथा ॥ १३ ॥
तानागतानभिप्रेक्ष्य समस्तं च सुहृज्जनम् ।
ब्राह्मणांश्च महीपाल नानादेशसमागतान् ॥ १४ ॥
उवाच मतिमान् राजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।

भूपाल जनमेजय ! राजाने देखा कि समस्त पुरवासी और जनपदके लोग वहाँ आ गये हैं । सम्पूर्ण सुहृद्-वर्गके लोग भी उपस्थित हैं और नाना देशोंके ब्राह्मण भी पधारे हैं । तब बुद्धिमान् अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्रने उन सबको लक्ष्य करके कहा—॥ १३–१४½ ॥

भवन्तः कुरवश्चैव चिरकालं सहोषिताः ॥ १५ ॥
परस्परस्य सुहृदः परस्परहिते रताः ।

'सज्जनो ! आप और कौरव चिरकालसे एक साथ रहते आये हैं । आप दोनों एक-दूसरेके सुहृद् हैं और दोनों सदा एक-दूसरेके हितमें तत्पर रहते हैं ॥ १५½ ॥

यदिदानीमहं ब्रूयामस्मिन् काल उपस्थिते ॥ १६ ॥
तथा भवद्भिः कर्तव्यमविचार्य वचो मम ।

'इस समय मैं आपलोगोंसे वर्तमान अवसरपर जो कुछ कहूँ, मेरी उस बातको आपलोग बिना विचारे स्वीकार करें; यही मेरी प्रार्थना है ॥ १६½ ॥

अरण्यगमने बुद्धिर्गान्धारीसहितस्य मे ॥ १७ ॥
व्यासस्यानुमते राज्ञस्तथा कुन्तीसुतस्य मे ।

'मैंने गान्धारीके साथ वनमें जानेका निश्चय किया है; इसके लिये मुझे महर्षि व्यास तथा कुन्तीनन्दन राजा युधिष्ठिरकी भी अनुमति मिल गयी है ॥ १७½ ॥

भवन्तोऽप्यनुजानन्तु मा च वोऽभूद् विचारणा ॥ १८ ॥
अस्माकं भवतां चैव येयं प्रीतिर्हि शाश्वती ।
न च सान्येषु देशेषु राज्ञामिति मतिर्मम ॥ १९ ॥

'अब आपलोग भी मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दें । इस विषयमें आपके मनमें कोई अन्यथा विचार नहीं होना चाहिये । आपलोगोंका हमारे साथ जो यह प्रेम-सम्बन्ध सदासे चला आ रहा है, ऐसा सम्बन्ध दूसरे देशके राजाओंके साथ वहाँकी प्रजाका नहीं होगा, ऐसा मेरा विश्वास है ॥ १८-१९ ॥

शान्तोऽस्मि वयसानेन तथा पुत्रविनाकृतः ।
उपवासकृशश्चास्मि गान्धारीसहितोऽनघाः ॥ २० ॥

'निष्पाप प्रजाजन ! अब इस बुढ़ापेने गान्धारीसहित मुझको बहुत थका दिया है । पुत्रोंके मारे जानेका दुःख भी बना ही रहता है तथा उपवास करनेके कारण भी हम दोनों अधिक दुर्बल हो गये हैं ॥ २० ॥

युधिष्ठिरगते राज्ये प्राप्तश्चास्मि सुखं महत् ।
मन्ये दुर्योधनैश्वर्याद् विशिष्टमिति सत्तमाः ॥ २१ ॥

'सज्जनो ! युधिष्ठिरके राज्यमें मुझे बड़ा सुख मिला है। मैं समझता हूँ कि दुर्योधनके राज्यसे भी बढ़कर सुख मुझे प्राप्त हुआ है ॥ २१ ॥

मम चान्धस्य वृद्धस्य हतपुत्रस्य का गतिः ।
ऋते वनं महाभागास्तन्मानुज्ञातुमर्हथ ॥ २२ ॥

'एक तो मैं जन्मका अन्धा हूँ, दूसरे बूढ़ा हो गया हूँ, तीसरे मेरे सभी पुत्र मारे गये हैं। महाभाग प्रजाजन ! अब आप ही बतायें, वनमें जानेके सिवा मेरे लिये दूसरी कौन-सी गति है ? इसलिये अब आपलोग मुझे जानेकी आज्ञा दें' ॥ २२ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा सर्वे ते कुरुजाङ्गलाः ।
बाष्पसंदिग्धया वाचा रुरुदुर्भरतर्षभ ॥ २३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा धृतराष्ट्रकी ये बातें सुनकर वहाँ उपस्थित हुए कुरुजाङ्गलनिवासी सभी मनुष्योंके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली और वे फूट-फूटकर रोने लगे ॥ २३ ॥

तानविब्रुवतः किंचित् सर्वाञ्शोकपरायणान् ।
पुनरेव महातेजा धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ॥ २४ ॥

उन सबको शोकमग्न होकर कुछ भी उत्तर न देते देख महातेजस्वी धृतराष्ट्रने पुनः बोलना आरम्भ किया ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रकृतवनगमनप्रार्थनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रकी वनमें जानेके लिये प्रार्थनाविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

प्रजाजनोंसे धृतराष्ट्रकी क्षमा-प्रार्थना

धृतराष्ट्र उवाच

शान्तनुः पालयामास यथावद् वसुधामिमाम् ।
तथा विचित्रवीर्यश्च भीष्मेण परिपालितः ॥ १ ॥
पालयामास नस्तातो विदितार्थो न संशयः ।

धृतराष्ट्र बोले—सज्जनो ! महाराज शान्तनुने इस पृथ्वीका यथावत्‌रूपसे पालन किया था। उसके बाद भीष्म-द्वारा सुरक्षित हमारे तत्त्वज्ञ पिता विचित्रवीर्यने इस भूमण्डल-की रक्षा की; इसमें संशय नहीं है ॥ १½ ॥

यथा च पाण्डुर्भ्राता मे दयितो भवतामभूत् ॥ २ ॥
स चापि पालयामास यथावत् तच्च वेत्थ ह ।

उनके बाद मेरे भाई पाण्डुने इस राज्यका यथावत्‌रूपसे पालन किया। इसे आप सब लोग जानते हैं। अपने प्रजा-पालनरूपी गुणके कारण ही वे आपलोगोंके परम प्रिय हो गये थे ॥ २½ ॥

मया च भवतां सम्यक् शुश्रूषा या कृतानघाः ॥ ३ ॥
असम्यग् वा महाभागास्तत् क्षन्तव्यमतन्द्रितैः ।

निष्पाप महाभागगण ! पाण्डुके बाद मैंने भी आप-लोगोंकी भली या बुरी सेवा की है, उसमें जो भूल हुई हो, उसके लिये आप आलस्यरहित प्रजाजन मुझे क्षमा करें ॥ ३½ ॥

यदा दुर्योधनेनेदं भुक्तं राज्यमकण्टकम् ॥ ४ ॥
अपि तत्र न वो मन्दो दुर्बुद्धिरपराद्धवान् ।

दुर्योधनने जब अकण्टक राज्यका उपभोग किया था, उस समय उस खोटी बुद्धिवाले मूर्ख नरेशने भी आपलोगोंका कोई अपराध नहीं किया था (वह केवल पाण्डवोंके साथ अन्याय करता रहा) ॥ ४½ ॥

तस्यापराधाद् दुर्बुद्धेरभिमानान्महीक्षिताम् ॥ ५ ॥
विमर्दः सुमहानासीदनयात् स्वकृतादथ ।
(घातिताः कौरवेयाश्च पृथिवी च विनाशिता ।)

उस दुर्बुद्धिके अपने ही किये हुए अन्याय, अपराध और अभिमानसे यहाँ असंख्य राजाओंका महान् संहार हो गया। सारे कौरव मारे गये और पृथ्वीका विनाश हो गया ॥ ५½ ॥

तन्मया साधु वापीदं यदि वासाधु वै कृतम् ॥ ६ ॥
तद् वो हृदि न कर्तव्यं मया बद्धोऽयमञ्जलिः ।

उस अवसरपर मुझसे भला या बुरा जो कुछ भी कृत्य हो गया, उसे आपलोग अपने मनमें न लावें। इसके लिये मैं आपलोगोंसे हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करता हूँ ॥ ६½ ॥

वृद्धोऽयं हतपुत्रोऽयं दुःखितोऽयं नराधिपः ॥ ७ ॥
पूर्वराज्ञां च पुत्रोऽयमिति कृत्वानुजानथ ।

'यह राजा धृतराष्ट्र बूढ़ा है। इसके पुत्र मारे गये हैं; अतः यह दुःखमें डूबा हुआ है और यह अपने प्राचीन राजाओंका वंशज है'—ऐसा समझकर आपलोग मेरे अपराधों-को क्षमा करते हुए मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दें ॥ ७½ ॥

इयं च कृपणा वृद्धा हतपुत्रा तपस्विनी ॥ ८ ॥
गान्धारी पुत्रशोकार्ता युष्मान् याचति वै मया ।

यह बेचारी वृद्धा तपस्विनी गान्धारी, जिसके सभी पुत्र

मारे गये हैं तथा जो पुत्रशोकसे व्याकुल रहती है, मेरे साथ आपलोगोंसे क्षमा-याचना करती है ॥ ८½ ॥

हतपुत्राविमौ वृद्धौ विदित्वा दुःखितौ तथा ॥ ९ ॥
अनुजानीत भद्रं वो व्रजाव शरणं च वः ।

इन दोनों बूढ़ोंको पुत्रोंके मारे जानेसे दुखी जानकर आपलोग वनमें जानेकी आज्ञा दें। आपका कल्याण हो। हम दोनों आपकी शरणमें आये हैं ॥ ९½ ॥

अयं च कौरवो राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥
सर्वैर्भवद्भिर्द्रष्टव्यः समेषु विषमेषु च ।

ये कुरुकुलरत्न कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर आपलोगोंके पालक हैं। अच्छे और बुरे सभी समयोंमें आप सब लोग इनपर कृपादृष्टि रखें ॥ १०½ ॥

न जातु विषमं चैव गमिष्यति कदाचन ॥ ११ ॥
चत्वारः सचिवा यस्य भ्रातरो विपुलौजसः ।
लोकपालसमा ह्येते सर्वधर्मार्थदर्शिनः ॥ १२ ॥
ब्रह्मेव भगवानेष सर्वभूतजगत्पतिः ।
(एवमेव महाबाहुर्भीमार्जुनयमैर्वृतः ।)
युधिष्ठिरो महातेजा भवतः पालयिष्यति ॥ १३ ॥

ये कभी आपलोगोंके प्रति विषमभाव नहीं रक्खेंगे। लोकपालोंके समान महातेजस्वी तथा सम्पूर्ण धर्म और अर्थके मर्मज्ञ ये चार भाई जिनके सचिव हैं, वे भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे घिरे हुए महाबाहु महातेजस्वी युधिष्ठिर सम्पूर्ण जीव-जगत्‌के स्वामी भगवान् ब्रह्माकी भाँति आपलोगोंका इसी तरह पालन करेंगे, जैसे पहलेके लोग करते आये हैं ॥ ११-१३ ॥

अवश्यमेव वक्तव्यमिति कृत्वा ब्रवीमि वः ।
एष न्यासो मया दत्तः सर्वेषां वो युधिष्ठिरः ॥ १४ ॥
भवन्तोऽस्य च वीरस्य न्यासभूताः कृता मया ।

मुझे ये बातें अवश्य कहनी चाहिये, ऐसा सोचकर ही मैं आपलोगोंसे यह सब कहता हूँ। मैं इन राजा युधिष्ठिरको धरोहरके रूपमें आप सब लोगोंके हाथ सौंप रहा हूँ और आपलोगोंको भी इन वीर नरेशके हाथमें धरोहरकी ही भाँति दे रहा हूँ ॥ १४½ ॥

यदेव तैः कृतं किंचिद् व्यलीकं वः सुतैर्मम ॥ १५ ॥
यदन्येन मदीयेन तदनुज्ञातुमर्हथ ।

मेरे पुत्रोंने तथा मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले और किसीने आपलोगोंका जो कुछ भी अपराध किया हो, उसके लिये मुझे क्षमा करें और जानेकी आज्ञा दें ॥ १५½ ॥

भवद्भिर्न हि मे मन्युः कृतपूर्वः कथंचन ॥ १६ ॥
अत्यन्तगुरुभक्तानामेषोऽञ्जलिरिदं नमः ।

आपलोगोंने पहले मुझपर किसी तरह कोई रोष नहीं प्रकट किया है। आपलोग अत्यन्त गुरुभक्त हैं; अतः आपके सामने मेरे ये दोनों हाथ जुड़े हुए हैं और मैं आपको यह प्रणाम करता हूँ ॥ १६½ ॥

तेषामस्थिरबुद्धीनां लुब्धानां कामचारिणाम् ॥ १७ ॥
कृते याचेऽद्य वः सर्वान् गान्धारीसहितोऽनघाः ।

निष्पाप प्रजाजन ! मेरे पुत्रोंकी बुद्धि चञ्चल थी। वे लोभी और स्वेच्छाचारी थे। उनके अपराधोंके लिये आज गान्धारीसहित मैं आप सब लोगोंसे क्षमा-याचना करता हूँ ॥ १७½ ॥

इत्युक्तास्तेन ते सर्वे पौरजानपदा जनाः ।
नोचुर्बाष्पकलाः किंचिद् वीक्षांचक्रुः परस्परम् ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्रके इस प्रकार कहनेपर नगर और जनपदमें निवास करनेवाले सब लोग नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। किसीने कोई उत्तर नहीं दिया ॥१८॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रप्रार्थने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रकी प्रार्थनाविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल १९ श्लोक हैं)

दशमोऽध्यायः

प्रजाकी ओरसे साम्ब नामक ब्राह्मणका धृतराष्ट्रको सान्त्वनापूर्ण उत्तर देना

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तास्तु ते तेन पौरजानपदा जनाः ।
वृद्धेन राज्ञा कौरव्य नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! बूढ़े राजा धृतराष्ट्रके ऐसे करुणामय वचन कहनेपर नगर और जनपदके निवासी सभी लोग दुःखसे अचेत-से हो गये ॥ १ ॥

तूष्णीम्भूतांस्ततस्तांस्तु बाष्पकण्ठान् महीपतिः ।
धृतराष्ट्रो महीपालः पुनरेवाभ्यभाषत ॥ २ ॥

उन सबके कण्ठ आँसुओंसे अवरुद्ध हो गये थे; अतः वे कुछ बोल नहीं पाते थे। उन्हें मौन देख महाराज धृतराष्ट्रने फिर कहा— ॥ २ ॥

वृद्धं च हतपुत्रं च धर्मपत्न्या सहानया ।
विलपन्तं बहुविधं कृपणं चैव सत्तमाः ॥ ३ ॥
पित्रा स्वयमनुज्ञातं कृष्णद्वैपायनेन वै ।
वनवासाय धर्मज्ञा धर्मज्ञेन नृपेण ह ॥ ४ ॥
सोऽहं पुनः पुनश्चैव शिरसावनतोऽनघाः ।
गान्धार्या सहितं तन्मां समनुज्ञातुमर्हथ ॥ ५ ॥

'सज्जनो ! मैं बूढ़ा हूँ । मेरे सभी पुत्र मार डाले गये हैं । मैं अपनी इस धर्मपत्नीके साथ बारंबार दीनतापूर्वक विलाप कर रहा हूँ । मेरे पिता स्वयं महर्षि व्यासने मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दे दी है । धर्मज्ञ पुरुषो ! धर्मके ज्ञाता राजा युधिष्ठिरने भी वनवासके लिये अनुमति दे दी है । वही मैं अब पुनः बारंबार आपके सामने मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ । पुण्यात्मा प्रजाजन ! आपलोग गान्धारीसहित मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दे दें' ॥ ३—५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा कुरुराजस्य वाक्यानि करुणानि ते ।
रुरुदुः सर्वशो राजन् समेताः कुरुजाङ्गलाः ॥ ६ ॥
उत्तरीयैः करैश्चापि संच्छाद्य वदनानि ते ।
रुरुदुः शोकसंतप्ता मुहूर्तं पितृमातृवत् ॥ ७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कुरुराजकी ये करुणाभरी बातें सुनकर वहाँ एकत्र हुए कुरुजाङ्गलदेशके सब लोग दुपट्टों और हाथोंसे अपना-अपना मुँह ढँककर रोने लगे। अपनी संतानको विदा करते समय दुःखसे कातर हुए पिता-माताकी भाँति वे दो घड़ीतक शोकसे संतप्त होकर रोते रहे ॥ ६-७ ॥

हृदयैः शून्यभूतैस्ते धृतराष्ट्रप्रवासजम् ।
दुःखं संधारयन्तो हि नष्टसंज्ञा इवाभवन् ॥ ८ ॥

उनका हृदय शून्य-सा हो गया था। वे उस सूने हृदयमें धृतराष्ट्रके प्रवासजनित दुःखको धारण करके अचेत-से हो गये ॥ ८ ॥

ते विनीय तमायासं धृतराष्ट्रवियोगजम् ।
शनैः शनैस्तदान्योन्यमब्रुवन् सम्मतान्युत ॥ ९ ॥

फिर धीरे-धीरे उनके वियोगजनित दुःखको दूर करके उन सबने आपसमें वार्तालाप किया और अपनी सम्मति प्रकट की ॥ ९ ॥

ततः संधाय ते सर्वे वाक्यान्यथ समासतः ।
एकस्मिन् ब्राह्मणे राजन् निवेश्योचुर्नराधिपम् ॥ १० ॥

राजन् ! तदनन्तर एकमत होकर उन सब लोगोंने थोड़ेमें अपनी सारी बातें कहनेका भार एक ब्राह्मणपर रखा। उन ब्राह्मणके द्वारा ही उन्होंने राजासे अपनी बात कही ॥ १० ॥

ततः स्वाचरणो विप्रः सम्मतोऽर्थविशारदः ।
साम्बाख्यो बह्वृचो राजन् वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ११ ॥
अनुमान्य महाराजं तत् सदः सम्प्रसाद्य च ।
विप्रः प्रगल्भो मेधावी स राजानमुवाच ह ॥ १२ ॥

वे ब्राह्मण देवता सदाचारी, सबके माननीय और अर्थज्ञानमें निपुण थे, उनका नाम था साम्ब । वे वेदके विद्वान्, निर्भय होकर बोलनेवाले और बुद्धिमान् थे । वे महाराजको सम्मान देकर सारी सभाको प्रसन्न करके बोलनेको उद्यत हुए । उन्होंने राजासे इस प्रकार कहा—॥ ११-१२ ॥

राजन् वाक्यं जनस्यास्य मयि सर्वं समर्पितम् ।
वक्ष्यामि तदहं वीर तज्जुषस्व नराधिप ॥ १३ ॥

'राजन् ! वीर नरेश्वर ! यहाँ उपस्थित हुए समस्त जनसमुदायने अपना मन्तव्य प्रकट करनेका सारा भार मुझे सौंप दिया है; अतः मैं ही इनकी बातें आपकी सेवामें निवेदन करूँगा । आप सुननेकी कृपा करें ॥ १३ ॥

यथा वदसि राजेन्द्र सर्वमेतत् तथा विभो ।
नात्र मिथ्या वचः किंचित् सुहृत्त्वं नः परस्परम् ॥ १४ ॥

'राजेन्द्र ! प्रभो ! आप जो कुछ कहते हैं, वह सब ठीक है । उसमें असत्यका लेश भी नहीं है । वास्तवमें इस राजवंशमें और हमलोगोंमें परस्पर दृढ़ सौहार्द स्थापित हो चुका है ॥ १४ ॥

न जात्वस्य च वंशस्य राज्ञां कश्चित् कदाचन ।
राजाऽऽसीद् यः प्रजापालः प्रजानामप्रियोऽभवत् ॥ १५ ॥

'इस राजवंशमें कभी कोई भी ऐसा राजा नहीं हुआ, जो प्रजापालन करते समय समस्त प्रजाओंको प्रिय न रहा हो ॥

पितृवद् भ्रातृवच्चैव भवन्तः पालयन्ति नः ।
न च दुर्योधनः किंचिदयुक्तं कृतवान् नृपः ॥ १६ ॥

'आपलोग पिता और बड़े भाईके समान हमारा पालन करते आये हैं । राजा दुर्योधनने भी हमारे साथ कोई अनुचित बर्ताव नहीं किया है ॥ १६ ॥

यथा ब्रवीति धर्मात्मा मुनिः सत्यवतीसुतः ।
तथा कुरु महाराज स हि नः परमो गुरुः ॥ १७ ॥

'महाराज ! परम धर्मात्मा सत्यवतीनन्दन महर्षि व्यासजी आपको जैसी सलाह देते हैं, वैसा ही कीजिये; क्योंकि वे हम सब लोगोंके परम गुरु हैं ॥ १७ ॥

त्यक्ता वयं तु भवता दुःखशोकपरायणाः ।
भविष्यामश्चिरं राजन् भवद्गुणशतैर्युताः ॥ १८ ॥

'राजन् ! आप जब हमें त्याग देंगे, हमें छोड़कर चले जायँगे, तब हम बहुत दिनोंतक दुःख और शोकमें डूबे रहेंगे । आपके सैकड़ों गुणोंकी याद सदा हमें घेरे रहेगी ॥

यथा शान्तनुना गुप्ता राज्ञा चित्राङ्गदेन च ।
भीष्मवीर्योपगूढेन पित्रा तव च पार्थिव ॥ १९ ॥

भवदुद्वीक्षणाच्चैव पाण्डुना पृथिवीक्षिता ।
तथा दुर्योधनेनापि राज्ञा सुपरिपालिताः ॥ २० ॥

'पृथ्वीनाथ ! महाराज शान्तनु तथा राजा चित्राङ्गदने जिस प्रकार हमारी रक्षा की है, भीष्मके पराक्रमसे सुरक्षित आपके पिता विचित्रवीर्यने जिस तरह हमलोगोंका पालन किया है तथा आपकी देख-रेखमें रहकर पृथ्वीपति पाण्डुने जिस प्रकार प्रजाजनोंकी रक्षा की है, उसी प्रकार राजा दुर्योधनने भी हमलोगोंका यथावत् पालन किया है ॥१९-२०॥

न स्वल्पमपि पुत्रस्ते व्यलीकं कृतवान् नृप ।
पितरीव सुविश्वस्तास्तस्मिन्नपि नराधिपे ॥ २१ ॥
वयमास्म यथा सम्यग् भवतो विदितं तथा ।

'नरेश्वर ! आपके पुत्रने कभी थोड़ा-सा भी अन्याय हमलोगोंके साथ नहीं किया । हमलोग उन राजा दुर्योधनपर भी पिताके समान विश्वास करते थे और उनके राज्यमें बड़े सुखसे जीवन व्यतीत करते थे । यह बात आपको भी विदित ही है ॥ २१½ ॥

तथा वर्षसहस्राणि कुन्तीपुत्रेण धीमता ॥ २२ ॥
पाल्यमाना धृतिमता सुखं विन्दामहे नृप ।

'नरेश्वर ! भगवान् करें कि बुद्धिमान् कुन्तीकुमार राजा युधिष्ठिर धैर्यपूर्वक सहस्रों वर्षतक हमारा पालन करें और हम इनके राज्यमें सुखसे रहें ॥ २२½ ॥

राजर्षीणां पुराणानां भवतां पुण्यकर्मणाम् ॥ २३ ॥
कुरुसंवरणादीनां भरतस्य च धीमतः ।
वृत्तं समनुयात्येष धर्मात्मा भूरिदक्षिणः ॥ २४ ॥

'यज्ञोंमें बड़ी-बड़ी दक्षिणा प्रदान करनेवाले ये धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर प्राचीन कालके पुण्यात्मा राजर्षि कुरु और संवरण आदिके तथा बुद्धिमान् राजा भरतके बर्तावका अनुसरण करते हैं ॥ २३-२४ ॥

नात्र वाच्यं महाराज सुसूक्ष्ममपि विद्यते ।
उषिताः स्म सुखं नित्यं भवता परिपालिताः ॥ २५ ॥

'महाराज ! इनमें कोई छोटे-से-छोटा दोष भी नहीं है । इनके राज्यमें आपके द्वारा सुरक्षित होकर हमलोग सदा सुखसे रहते आये हैं ॥ २५ ॥

सुसूक्ष्मं च व्यलीकं ते सपुत्रस्य न विद्यते ।
यत् तु ज्ञातिविमर्देऽस्मिन्नात्थ दुर्योधनं प्रति ॥ २६ ॥
भवन्तमनुनेष्यामि तत्रापि कुरुनन्दन ।

'कुरुनन्दन ! पुत्रसहित आपका कोई सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अपराध भी हमारे देखनेमें नहीं आया है । महाभारत-युद्धमें जो जाति-भाइयोंका संहार हुआ है, उसके विषयमें आपने जो दुर्योधनके अपराधकी चर्चा की है, इसके सम्बन्धमें भी मैं आपसे कुछ निवेदन करूँगा ॥ २६½ ॥

न तद् दुर्योधनकृतं न च तद् भवता कृतम् ॥ २७ ॥
न कर्णसौबलाभ्यां च कुरवो यत् क्षयं गताः ।

'कौरवोंका जो संहार हुआ है, उसमें न दुर्योधनका हाथ है, न आपका । कर्ण और शकुनिने भी इसमें कुछ नहीं किया है ॥ २७½ ॥

दैवं तत् तु विजानीमो यन्न शक्यं प्रबाधितुम् ॥२८॥
दैवं पुरुषकारेण न शक्यमपि बाधितुम् ।

'हमारी समझमें तो यह दैवका विधान था । इसे कोई टाल नहीं सकता था । दैवको पुरुषार्थसे मिटा देना असम्भव है ॥ २८½ ॥

अक्षौहिण्यो महाराज दशाष्टौ च समागताः ॥ २९ ॥
अष्टादशाहेन हताः कुरुभिर्योधपुङ्गवैः ।
भीष्मद्रोणकृपाद्यैश्च कर्णेन च महात्मना ॥ ३० ॥
युयुधानेन वीरेण धृष्टद्युम्नेन चैव ह ।
चतुर्भिः पाण्डुपुत्रैश्च भीमार्जुनयमैस्तथा ॥ ३१ ॥

'महाराज ! उस युद्धमें अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई थीं; किंतु कौरवपक्षके प्रधान योद्धा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि तथा महामना कर्णने एवं पाण्डवदलके प्रमुख वीर सात्यकि, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव आदिने अठारह दिनोंमें ही सबका संहार कर डाला।

न च क्षयोऽयं नृपते ऋते दैवबलादभूत् ।
अवश्यमेव संग्रामे क्षत्रियेण विशेषतः ॥ ३२ ॥
कर्तव्यं निधनं काले मर्तव्यं क्षत्रबन्धुना ।

'नरेश्वर ! ऐसा विकट संहार दैवीशक्तिके बिना कदापि नहीं हो सकता था । अवश्य ही संग्राममें मनुष्यको विशेषतः क्षत्रियको समयानुसार शत्रुओंका संहार एवं प्राणोत्सर्ग करना चाहिये ॥ ३२½ ॥

तैरियं पुरुषव्याघ्रैर्विद्याबाहुबलान्वितैः ॥ ३३ ॥
पृथिवी निहता सर्वा सहया सरथद्विपा ।

'उन विद्या और बाहुबलसे सम्पन्न पुरुषसिंहोंने रथ, घोड़े और हाथियोंसहित इस सारी पृथ्वीका नाश कर डाला ॥ ३३½ ॥

न स राज्ञां वधे सूनुः कारणं ते महात्मनाम् ॥ ३४ ॥
न भवान् न च ते भृत्या न कर्णो न च सौबलः ।

'आपका पुत्र उन महात्मा नरेशोंके वधमें कारण नहीं हुआ है । इसी प्रकार न आप, न आपके सेवक, न कर्ण और न शकुनि ही इसमें कारण हैं ॥ ३४½ ॥

यद् विशस्ताः कुरुश्रेष्ठ राजानश्च सहस्रशः ॥ ३५ ॥
सर्वं दैवकृतं विद्धि कोऽत्र किं वक्तुमर्हति ।

'कुरुश्रेष्ठ ! उस युद्धमें जो सहस्रों राजा काट डाले गये हैं, वह सब दैवकी ही करतूत समझिये । इस विषयमें दूसरा कोई क्या कह सकता है ॥ ३५½ ॥

गुरुर्मतो भवानस्य कृत्स्नस्य जगतः प्रभुः ॥ ३६ ॥
धर्मात्मानमतस्तुभ्यमनुजानीमहे सुतम् ।

'आप इस सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं; इसलिये हम आपको अपना गुरु मानते हैं और आप धर्मात्मा नरेशको वनमें जानेकी अनुमति देते हैं तथा आपके पुत्र दुर्योधनके लिये हमारा यह कथन है--॥ ३६½ ॥

लभतां वीरलोकं स ससहायो नराधिपः ॥ ३७ ॥
द्विजाग्र्यैः समनुज्ञातस्त्रिदिवे मोदतां सुखम् ।

'अपने सहायकोंसहित राजा दुर्योधन इन श्रेष्ठ द्विजोंके आशीर्वादसे वीरलोक प्राप्त करे और स्वर्गमें सुख एवं आनन्द भोगे ॥ ३७½ ॥

प्राप्स्यते च भवान् पुण्यं धर्मे च परमां स्थितिम् ॥३८॥
वेद धर्मं च कृत्स्नेन सम्यक् त्वं भव सुव्रतः ।

'आप भी पुण्य एवं धर्ममें ऊँची स्थिति प्राप्त करें । आप सम्पूर्ण धर्मोंको ठीक-ठीक जानते हैं, इसलिये उत्तम व्रतोंके अनुष्ठानमें लग जाइये ॥ ३८½ ॥

दृष्टिप्रदानमपि ते पाण्डवान् प्रति नो वृथा ॥ ३९ ॥
समर्थास्त्रिदिवस्यापि पालने किं पुनः क्षितेः ।

'आप जो हमारी देख-रेख करनेके लिये हमें पाण्डवोंको सौंप रहे हैं, वह सब व्यर्थ है । ये पाण्डव तो स्वर्गका भी पालन करनेमें समर्थ हैं; फिर इस भूमण्डलकी तो बात ही क्या है ॥ ३९½ ॥

अनुवर्त्स्यन्ति वा धीमन् समेषु विषमेषु च ॥ ४० ॥
प्रजाः कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डवाञ्शीलभूषणान् ।

'बुद्धिमान् कुरुकुलश्रेष्ठ ! समस्त पाण्डव शीलरूपी भूषणसे विभूषित हैं; अतः भले-बुरे सभी समयोंमें सारी प्रजा निश्चय ही उनका अनुसरण करेगी ॥ ४०½ ॥

ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च पारिवर्हांश्च पार्थिवः ॥ ४१ ॥
पूर्वराजाभिपन्नांश्च पालयत्येव पाण्डवः ।

'ये पृथ्वीनाथ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर अपने दिये हुए तथा पहलेके राजाओंद्वारा अर्पित किये गये ब्राह्मणोंके लिये दातव्य अग्रहारों (दानमें दिये गये ग्रामों) तथा पारिवर्हों (पुरस्कार-में दिये गये ग्रामों) की भी रक्षा करते ही हैं ॥ ४१½ ॥

दीर्घदर्शी मृदुर्दान्तः सदा वैश्रवणो यथा ॥ ४२ ॥
अक्षुद्रसचिवश्चायं कुन्तीपुत्रो महामनाः ।

'ये कुन्तीकुमार सदा कुबेरके समान दीर्घदर्शी, कोमल स्वभाववाले और जितेन्द्रिय हैं । इनके मन्त्री भी उच्च विचारके हैं । इनका हृदय बड़ा ही विशाल है ॥ ४२½ ॥

अमित्रे दयावांश्च शुचिश्च भरतर्षभः ॥ ४३ ॥
ऋजु पश्यति मेधावी पुत्रवत् पाति नः सदा ।

'ये भरतकुलभूषण युधिष्ठिर शत्रुओंपर भी दया करनेवाले और परम पवित्र हैं । बुद्धिमान् होनेके साथ ही ये सबको सरलभावसे देखनेवाले हैं और हमलोगोंका सदा पुत्रवत् पालन करते हैं ॥ ४३½ ॥

विप्रियं च जनस्यास्य संसर्गाद् धर्मजस्य वै ॥ ४४ ॥
न करिष्यन्ति राजर्षे तथा भीमार्जुनादयः ।

'राजर्षे ! इन धर्मपुत्र युधिष्ठिरके संसर्गसे भीमसेन और अर्जुन आदि भी इस जनसमुदाय (प्रजावर्ग) का कभी अप्रिय नहीं करेंगे ॥ ४४½ ॥

मन्दा मृदुषु कौरव्य तीक्ष्णेष्वाशीविषोपमाः ॥ ४५ ॥
वीर्यवन्तो महात्मानः पौराणां च हिते रताः ।

'कुरुनन्दन ! ये पाँचों भाई पाण्डव बड़े पराक्रमी, महामनस्वी और पुरवासियोंके हितसाधनमें लगे रहनेवाले हैं । ये कोमल स्वभाववाले सत्पुरुषोंके प्रति मृदुतापूर्ण बर्ताव करते हैं, किंतु तीखे स्वभाववाले दुष्टोंके लिये ये विषधर सर्पोंके समान भयंकर बन जाते हैं ॥ ४५½ ॥

न कुन्ती न च पाञ्चाली न चोलूपी न सात्वती ॥ ४६ ॥
अस्मिन् जने करिष्यन्ति प्रतिकूलानि कर्हिचित् ।

'कुन्ती, द्रौपदी, उलूपी और सुभद्रा भी कभी प्रजाजनोंके प्रति प्रतिकूल बर्ताव नहीं करेंगी ॥ ४६½ ॥

भवत्कृतमिमं स्नेहं युधिष्ठिरविवर्धितम् ॥ ४७ ॥
न पृष्ठतः करिष्यन्ति पौरा जानपदा जनाः ।

'आपका प्रजाके साथ जो स्नेह था, उसे युधिष्ठिरने और भी बढ़ा दिया है । नगर और जनपदके लोग आपलोगोंके इस प्रजाप्रेमकी कभी अवहेलना नहीं करेंगे ॥ ४७½ ॥

अधर्मिष्ठानपि सतः कुन्तीपुत्रा महारथाः ॥ ४८ ॥
मानवान् पालयिष्यन्ति भूत्वा धर्मपरायणाः ।

'कुन्तीके महारथी पुत्र स्वयं धर्मपरायण रहकर अधर्मी मनुष्योंका भी पालन करेंगे ॥ ४८½ ॥

स राजन् मानसं दुःखमपनीय युधिष्ठिरात् ॥ ४९ ॥
कुरु कार्याणि धर्म्याणि नमस्ते पुरुषर्षभ ।

'अतः पुरुषप्रवर महाराज ! आप युधिष्ठिरकी ओरसे अपने मानसिक दुःखको हटाकर धार्मिक कार्योंके अनुष्ठानमें लग जाइये । आपको समस्त प्रजाका नमस्कार है' ॥ ४९½ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं धर्म्यमनुमान्य गुणोत्तरम् ॥ ५० ॥
साधु साध्विति सर्वः स जनः प्रतिगृहीतवान् ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! साम्बके धर्मानुकूल और उत्तम गुणयुक्त वचन सुनकर समस्त प्रजा

उन्हें सादर साधुवाद देने लगी तथा सबने उनकी बातका अनुमोदन किया ॥ ५०½ ॥

धृतराष्ट्रश्च तद्वाक्यमभिपूज्य पुनः पुनः ॥ ५१ ॥
विसर्जयामास तदा प्रकृतीस्तु शनैः शनैः ।
स तैः सम्पूजितो राजा शिवेनावेक्षितस्तथा ॥ ५२ ॥

धृतराष्ट्रने भी बारंबार साम्बके वचनोंकी सराहना की और सब लोगोंसे सम्मानित होकर धीरे-धीरे सबको विदा कर दिया। उस समय सबने उन्हें शुभ दृष्टिसे ही देखा॥ ५१-५२॥

प्राञ्जलिः पूजयामास तं जनं भरतर्षभ ।
ततो विवेश भवनं गान्धार्या सहितो निजम् ॥
व्युष्टायां चैव शर्वर्यां यच्चकार निबोध तत् ॥ ५३

भरतश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् धृतराष्ट्रने हाथ जोड़कर ब्राह्मण देवताका सत्कार किया और गान्धारीके साथ अपने महलमें चले गये। जब रात बीती और सबेरा हुआ तब उन्होंने जो कुछ किया, उसे बता रहा हूँ; सुनो॥ ५३

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि प्रकृतिसान्त्वने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रको प्रजाद्वारा दी गयी सान्त्वनाविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका विदुरके द्वारा युधिष्ठिरसे श्राद्धके लिये धन माँगना, अर्जुनकी सहमति और भीमसेनका विरोध

वैशम्पायन उवाच

ततो रजन्यां व्युष्टायां धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
विदुरं प्रेषयामास युधिष्ठिरनिवेशनम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! तदनन्तर जब रात बीती और सबेरा हुआ, तब अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्रने विदुरजीको युधिष्ठिरके महलमें भेजा ॥ १ ॥

स गत्वा राजवचनादुवाचाच्युतमीश्वरम् ।
युधिष्ठिरं महातेजाः सर्वबुद्धिमतां वरः ॥ २ ॥

राजाकी आज्ञासे अपने धर्मसे कभी विचलित न होनेवाले राजा युधिष्ठिरके पास जाकर समस्त बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी विदुरने इस प्रकार कहा—॥ २ ॥

धृतराष्ट्रो महाराजो वनवासाय दीक्षितः ।
गमिष्यति वनं राजन्नागतां कार्तिकीमिमाम् ॥ ३ ॥

'राजन् ! महाराज धृतराष्ट्र वनवासकी दीक्षा ले चुके हैं। इसी कार्तिकी पूर्णिमाको जो कि अब निकट आ पहुँची है, वे वनकी यात्रा करेंगे ॥ ३ ॥

स त्वां कुरुकुलश्रेष्ठ किंचिदर्थमभीप्सति ।
श्राद्धमिच्छति दातुं स गाङ्गेयस्य महात्मनः ॥ ४ ॥
द्रोणस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः ।
पुत्राणां चैव सर्वेषां ये चान्ये सुहृदो हताः ॥ ५ ॥

'कुरुकुलश्रेष्ठ ! इस समय वे तुमसे कुछ धन लेना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बुद्धिमान् बाह्लीक और युद्धमें मारे गये अपने समस्त पुत्रों तथा अन्य सुहृदोंका श्राद्ध करें ॥ ४-५ ॥

यदि चाप्यनुजानीषे सैन्धवापसदस्य च ।

'यदि तुम्हारी सम्मति हो तो वे उस नराधम सिन्धुराज जयद्रथका भी श्राद्ध करना चाहते हैं' ॥ ५½॥



एतच्छ्रुत्वा तु वचनं विदुरस्य युधिष्ठिरः ॥ ६
हृष्टः सम्पूजयामास गुडाकेशश्च पाण्डवः ।

विदुरकी यह बात सुनकर युधिष्ठिर तथा पाण्डुनन्दन अर्जुन बड़े प्रसन्न हुए और उनकी सराहना करने लगे ॥६

न च भीमो दृढक्रोधस्तद्वचो जगृहे तदा ॥ ७ ॥
विदुरस्य महातेजा दुर्योधनकृतं स्मरन् ।

परंतु महातेजस्वी भीमसेनके हृदयमें उनके प्रति अमिट क्रोध जमा हुआ था। उन्हें दुर्योधनके अत्याचारोंका स्मरण हो आया, अतः उन्होंने विदुरजीकी बात नहीं स्वीकार की ॥ ७½ ॥

अभिप्रायं विदित्वा तु भीमसेनस्य फाल्गुनः ॥ ८ ॥
किरीटी किंचिदानम्य तमुवाच नरर्षभम् ।

भीमसेनके उस अभिप्रायको जानकर किरीटधारी अर्जुन कुछ विनीत हो उन नरश्रेष्ठसे इस प्रकार बोले—॥ ८½ ॥

भीम राजा पिता वृद्धो वनवासाय दीक्षितः ॥ ९ ॥
दातुमिच्छति सर्वेषां सुहृदामौर्ध्वदेहिकम् ।

'भैया भीम! राजा धृतराष्ट्र हमारे ताऊ और वृद्ध पुरुष हैं। इस समय वे वनवासकी दीक्षा ले चुके हैं और जानेके पहले वे भीष्म आदि समस्त सुहृदोंका और्ध्वदेहिक श्राद्ध कर लेना चाहते हैं ॥ ९½ ॥

भवता निर्जितं वित्तं दातुमिच्छति कौरवः ॥ १० ॥
भीष्मादीनां महाबाहो तदनुज्ञातुमर्हसि ।

'महाबाहो! कुरुपति धृतराष्ट्र आपके द्वारा जीते गये धनको आपसे माँगकर उसे भीष्म आदिके लिये देना चाहते हैं; अतः आपको इसके लिये स्वीकृति दे देनी चाहिये ॥ १०½ ॥

दिष्ट्या त्वद्य महाबाहो धृतराष्ट्रः प्रयाचते ॥ ११ ॥
याचितो यः पुरास्माभिः पश्य कालस्य पर्ययम् ।

'महाबाहो! सौभाग्यकी बात है कि आज राजा धृतराष्ट्र हमलोगोंसे धनकी याचना करते हैं। समयका उलट-फेर तो देखिये। पहले हमलोग जिनसे याचना करते थे, आज वे ही हमसे याचना करते हैं ॥ ११½ ॥

योऽसौ पृथिव्याः कृत्स्नाया भर्ता भूत्वा नराधिपः ॥ १२ ॥
परैर्विनिहतामात्यो वनं गन्तुमभीप्सति ।

'एक दिन जो सम्पूर्ण भूमण्डलका भरण-पोषण करनेवाले नरेश थे, उनके सारे मन्त्री और सहायक शत्रुओंद्वारा मार डाले गये और आज वे वनमें जाना चाहते हैं ॥ १२½ ॥

मा तेऽन्यत् पुरुषव्याघ्र दानाद् भवतु दर्शनम् ॥ १३ ॥
अयशस्यमतोऽन्यत् स्यादधर्मश्च महाभुज ।

'पुरुषसिंह! अतः आप उन्हें धन देनेके सिवा दूसरा कोई दृष्टिकोण न अपनावें। महाबाहो! उनकी याचना ठुकरा देनेसे बढ़कर हमारे लिये और कोई कलङ्ककी बात न होगी। उन्हें धन न देनेसे हमें अधर्मका भी भागी होना पड़ेगा ॥ १३½ ॥

राजानमुपशिक्षस्व ज्येष्ठं भ्रातरमीश्वरम् ॥ १४ ॥
अर्हस्त्वमपि दातुं वै नादातुं भरतर्षभ ।

'आप अपने बड़े भाई ऐश्वर्यशाली महाराज युधिष्ठिरके बर्तावसे शिक्षा ग्रहण करें। भरतश्रेष्ठ! आप भी दूसरोंको देनेके ही योग्य हैं; दूसरोंसे लेनेके योग्य नहीं' ॥ १४½ ॥

एवं ब्रुवाणं बीभत्सुं धर्मराजोऽप्यपूजयत् ॥ १५ ॥
भीमसेनस्तु सक्रोधः प्रोवाचेदं वचस्तदा ।

ऐसी बात कहते हुए अर्जुनकी धर्मराज युधिष्ठिरने भूरि-भूरि प्रशंसा की। तब भीमसेनने कुपित होकर उनसे यह बात कही—॥ १५½ ॥

वयं भीष्मस्य दास्यामः प्रेतकार्यं तु फाल्गुन ॥ १६ ॥
सोमदत्तस्य नृपतेर्भूरिश्रवस एव च ।
बाह्लीकस्य च राजर्षेर्द्रोणस्य च महात्मनः ॥ १७ ॥
अन्येषां चैव सर्वेषां कुन्ती कर्णाय दास्यति ।

'अर्जुन! हमलोग स्वयं ही भीष्म, राजा सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजर्षि बाह्लीक, महात्मा द्रोणाचार्य तथा अन्य सब सम्बन्धियोंका श्राद्ध करेंगे। हमारी माता कुन्ती कर्णके लिये पिण्डदान करेगी ॥ १६-१७½ ॥

श्राद्धानि पुरुषव्याघ्र मा प्रादात् कौरवो नृपः ॥ १८ ॥
इति मे वर्तते बुद्धिर्मा नो निन्दन्तु शत्रवः ।

'पुरुषसिंह! मेरा यही विचार है कि कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र उक्त महानुभावोंका श्राद्ध न करें। इसके लिये हमारे शत्रु हमारी निन्दा न करें ॥ १८½ ॥

कष्टात् कष्टतरं यान्तु सर्वे दुर्योधनादयः ॥ १९ ॥
यैरियं पृथिवी कृत्स्ना घातिता कुलपांसनैः ।

'जिन कुलाङ्गारोंने इस सारी पृथ्वीका विनाश करा डाला, वे दुर्योधन आदि सब लोग भारी-से-भारी कष्टमें पड़ जायँ ॥ १९½ ॥

कुतस्त्वमसि विस्मृत्य वैरं द्वादशवार्षिकम् ॥ २० ॥
अज्ञातवासं गहनं द्रौपदीशोकवर्धनम् ।

'तुम वह पुराना वैर, वह बारह वर्षोंका वनवास और द्रौपदीके शोकको बढ़ानेवाला एक वर्षका गहन अज्ञातवास सहसा भूल कैसे गये? ॥ २०½ ॥

क्व तदा धृतराष्ट्रस्य स्नेहोऽस्मद्गोचरो गतः ॥ २१ ॥
कृष्णाजिनोपसंवीतो हृताभरणभूषणः ।
सार्धं पाञ्चालपुत्र्या त्वं राजानमुपजग्मिवान् ॥ २२ ॥
क्व तदा द्रोणभीष्मौ तौ सोमदत्तोऽपि वाभवत् ।

'उन दिनों धृतराष्ट्रका हमारे प्रति स्नेह कहाँ चला गया था? जब तुम्हारे आभरण एवं आभूषण उतार लिये गये और तुम काले मृगचर्मसे अपने शरीरको ढककर द्रौपदीके साथ राजाके समीप गये, उस समय द्रोणाचार्य और भीष्म कहाँ थे? सोमदत्तजी भी कहाँ चले गये थे ॥ २१-२२½ ॥

यत्र त्रयोदशसमा वने वन्येन जीवथ ॥ २३ ॥
न तदा त्वां पिता ज्येष्ठः पितृत्वेनाभिवीक्षते ।

'जब तुम सब लोग तेरह वर्षोंतक वनमें जंगली फल-मूल खाकर किसी तरह जी रहे थे, उन दिनों तुम्हारे ये ताऊजी पिताके भावसे तुम्हारी ओर नहीं देखते थे ॥ २३½ ॥

किं ते तद् विस्मृतं पार्थ यदेष कुलपांसनः ॥ २४ ॥
दुर्बुद्धिर्विदुरं प्राह द्यूते किं जितमित्युत ।

'पार्थ ! क्या तुम उस बातको भूल गये, जब कि यह कुलाङ्गार दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र जुआ आरम्भ कराकर विदुरजीसे बार-बार पूछता था कि 'इस दाँवमें हमलोगोंने क्या जीता है ?' ॥ २४½ ॥

तमेवंवादिनं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
उवाच वचनं धीमान् जोषमास्वेति भर्त्सयन् ॥ २५ ॥

भीमसेनको ऐसी बातें करते देख बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने उन्हें डाँटकर कहा —'चुप रहो' ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

अर्जुनका भीमको समझाना और युधिष्ठिरका धृतराष्ट्रको यथेष्ट धन देनेकी स्वीकृति प्रदान करना

अर्जुन उवाच

भीम ज्येष्ठो गुरुर्मे त्वं नातोऽन्यद् वक्तुमुत्सहे ।
धृतराष्ट्रस्तु राजर्षिः सर्वथा मानमर्हति ॥ १ ॥

अर्जुन बोले—भैया भीमसेन ! आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता और गुरुजन हैं; अतः आपके सामने मैं इसके सिवा और कुछ नहीं कह सकता कि राजर्षि धृतराष्ट्र सर्वथा समादरके योग्य हैं ॥ १ ॥

न स्मरन्त्यपराद्धानि स्मरन्ति सुकृतान्यपि ।
असम्भिन्नार्यमर्यादाः साधवः पुरुषोत्तमाः ॥ २ ॥

जिन्होंने आर्योंकी मर्यादा भङ्ग नहीं की है, वे साधुस्वभाववाले श्रेष्ठ पुरुष दूसरोंके अपराधोंको नहीं, उपकारोंको ही याद रखते हैं ॥ २ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा फाल्गुनस्य महात्मनः ।
विदुरं प्राह धर्मात्मा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

महात्मा अर्जुनकी यह बात सुनकर धर्मात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने विदुरजीसे कहा—॥ ३ ॥

इदं मद्वचनात् क्षत्तः कौरवं ब्रूहि पार्थिवम् ।
यावदिच्छति पुत्राणां श्राद्धं तावद् ददाम्यहम् ॥ ४ ॥

'चाचाजी ! आप मेरी ओरसे कौरवनरेश धृतराष्ट्रसे जाकर कह दीजिये कि वे अपने पुत्रोंका श्राद्ध करनेके लिये जितना धन चाहते हों, वह सब मैं दे दूँगा ॥ ४ ॥

भीष्मादीनां च सर्वेषां सुहृदामुपकारिणाम् ।
मम कोशादिति विभो मा भूद् भीमः सुदुर्मनाः ॥ ५ ॥

'प्रभो ! भीष्म आदि समस्त उपकारी सुहृदोंका श्राद्ध करनेके लिये केवल मेरे भण्डारसे धन मिल जायगा । इसके लिये भीमसेन अपने मनमें दुखी न हों' ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा धर्मराजस्तमर्जुनं प्रत्यपूजयत् ।
भीमसेनः कटाक्षेण वीक्षां चक्रे धनंजयम् ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! ऐसा कहकर धर्मराजने अर्जुनकी बड़ी प्रशंसा की । उस समय भीमसेनने अर्जुनकी ओर कटाक्षपूर्वक देखा ॥ ६ ॥

ततः स विदुरं धीमान् वाक्यमाह युधिष्ठिरः ।
भीमसेने न कोपं स नृपतिः कर्तुमर्हति ॥ ७ ॥

तब बुद्धिमान् युधिष्ठिरने विदुरसे कहा—'चाचाजी ! राजा धृतराष्ट्रको भीमसेनपर क्रोध नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥

परिक्लिष्टो हि भीमोऽपि हिमवृष्ट्यातपादिभिः ।
दुःखैर्बहुविधैर्धीमानरण्ये विदितं तव ॥ ८ ॥

'आपको तो मालूम ही है कि वनमें हिम, वर्षा और धूप आदि नाना प्रकारके दुःखोंसे बुद्धिमान् भीमसेनको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा है ॥ ८ ॥

किं तु मद्वचनाद् ब्रूहि राजानं भरतर्षभ ।
यद् यदिच्छसि यावच्च गृह्यतां मद्गृहादिति ॥ ९ ॥

'आप मेरी ओरसे राजा धृतराष्ट्रसे कहिये कि भरतश्रेष्ठ ! आप जो-जो वस्तु जितनी मात्रामें लेना चाहते हों, उसे मेरे घरसे ग्रहण कीजिये' ॥ ९ ॥

यन्मात्सर्यमयं भीमः करोति भृशदुःखितः ।
न तन्मनसि कर्तव्यमिति वाच्यः स पार्थिवः ॥ १० ॥

'भीमसेन अत्यन्त दुखी होनेके कारण जो कभी ईर्ष्या प्रकट करते हैं, उसे वे मनमें न लावें। यह बात आप महाराजसे अवश्य कह दीजियेगा' ॥ १० ॥

यन्ममास्ति धनं किंचिदर्जुनस्य च वेश्मनि।
तस्य स्वामी महाराज इति वाच्यः स पार्थिवः ॥ ११ ॥

'मेरे और अर्जुनके घरमें जो कुछ भी धन है, उस सबके स्वामी महाराज धृतराष्ट्र हैं; यह बात उन्हें बता दीजिये ॥ ११ ॥

ददातु राजा विप्रेभ्यो यथेष्टं क्रियतां व्ययः।
पुत्राणां सुहृदां चैव गच्छत्वानृण्यमद्य सः ॥ १२ ॥

'वे ब्राह्मणोंको यथेष्ट धन दें। जितना खर्च करना चाहें, करें। आज वे अपने पुत्रों और सुहृदोंके ऋणसे मुक्त हो जायँ ॥ १२ ॥

इदं चापि शरीरं मे तवायत्तं जनाधिप।
धनानि चेति विद्धि त्वं न मे तत्रास्ति संशयः ॥ १३ ॥

'उनसे कहिये, जनेश्वर! मेरा यह शरीर और सारा धन आपके ही अधीन है। इस बातको आप अच्छी तरह जान लें। इस विषयमें मेरे मनमें संशय नहीं है' ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरानुमोदने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिरका अनुमोदनविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

विदुरका धृतराष्ट्रको युधिष्ठिरका उदारतापूर्ण उत्तर सुनाना

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तु राज्ञा स विदुरो बुद्धिसत्तमः।
धृतराष्ट्रमुपेत्यैवं वाक्यमाह महार्थवत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार कहनेपर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरजी धृतराष्ट्रके पास जाकर यह महान् अर्थसे युक्त बात बोले— ॥ १ ॥

उक्तो युधिष्ठिरो राजा भवद्वचनमादितः।
स च संश्रुत्य वाक्यं ते प्रशशंस महाद्युतिः ॥ २ ॥

'महाराज! मैंने महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरके यहाँ जाकर आपका संदेश आरम्भसे ही कह सुनाया। उसे सुनकर उन्होंने आपकी बड़ी प्रशंसा की ॥ २ ॥

बीभत्सुश्च महातेजा निवेदयति ते गृहान्।
वसु तस्य गृहे यच्च प्राणानपि च केवलान् ॥ ३ ॥

'महातेजस्वी अर्जुन भी आपको अपना सारा घर सौंपते हैं। उनके घरमें जो कुछ धन है, उसे और अपने प्राणोंको भी वे आपकी सेवामें समर्पित करनेको तैयार हैं ॥ ३ ॥

धर्मराजश्च पुत्रस्ते राज्यं प्राणान् धनानि च।
अनुजानाति राजर्षे यच्चान्यदपि किंचन ॥ ४ ॥

'राजर्षे! आपके पुत्र धर्मराज युधिष्ठिर अपना राज्य, प्राण, धन तथा और जो कुछ उनके पास है, सब आपको दे रहे हैं ॥ ४ ॥

भीमश्च सर्वदुःखानि संस्मृत्य बहुलान्युत।
कृच्छ्रादिव महाबाहुरनुजज्ञे विनिःश्वसन् ॥ ५ ॥

'परंतु महाबाहु भीमसेनने पहलेके समस्त क्लेशोंका, जिनकी संख्या अधिक है, स्मरण करके लंबी साँस खींचते हुए बड़ी कठिनाईसे धन देनेकी अनुमति दी है ॥ ५ ॥

स राजन् धर्मशीलेन राज्ञा बीभत्सुना तथा।
अनुनीतो महाबाहुः सौहृदे स्थापितोऽपि च ॥ ६ ॥

'राजन्! धर्मशील राजा युधिष्ठिर तथा अर्जुनने भी महाबाहु भीमसेनको भलीभाँति समझाकर उनके हृदयमें भी आपके प्रति सौहार्द उत्पन्न कर दिया है ॥ ६ ॥

न च मन्युस्त्वया कार्य इति त्वां प्राह धर्मराट्।
संस्मृत्य भीमस्तद्वैरं यदन्यायवदाचरत् ॥ ७ ॥

'धर्मराजने आपसे कहलाया है कि भीमसेन पूर्व वैरका स्मरण करके जो कभी-कभी आपके साथ अन्याय-सा कर बैठते हैं, उसके लिये आप इनपर क्रोध न कीजियेगा ॥ ७ ॥

एवं प्रायो हि धर्मोऽयं क्षत्रियाणां नराधिप।
युद्धे क्षत्रियधर्मे च निरतोऽयं वृकोदरः ॥ ८ ॥

'नरेश्वर! क्षत्रियोंका यह धर्म प्रायः ऐसा ही है। भीमसेन युद्ध और क्षत्रिय-धर्ममें प्रायः निरत रहते हैं ॥ ८ ॥

वृकोदरकृते चाहमर्जुनश्च पुनः पुनः।
प्रसीद याचे नृपते भवान् प्रभुरिहास्ति यत् ॥ ९ ॥

'भीमसेनके कटु बर्तावके लिये मैं और अर्जुन दोनों आपसे बार-बार क्षमायाचना करते हैं। नरेश्वर! आप प्रसन्न हों। मेरे पास जो कुछ भी है, उसके स्वामी आप ही हैं ॥ ९ ॥

तद् ददातु भवान् वित्तं यावदिच्छसि पार्थिव।
त्वमीश्वरोऽस्य राज्यस्य प्राणानामपि भारत ॥ १० ॥

'पृथ्वीनाथ! भरतनन्दन! आप जितना धन दान करना चाहें, करें। आप मेरे राज्य और प्राणोंके भी ईश्वर हैं ॥ १० ॥

ब्रह्मदेयाग्रहारांश्च पुत्राणामौर्ध्वदेहिकम् ।
इतो रत्नानि गाश्चैव दासीदासमजाविकम् ॥ ११ ॥
आनयित्वा कुरुश्रेष्ठो ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छतु ।

'ब्राह्मणोंको माफी जमीन दीजिये और पुत्रोंका श्राद्ध कीजिये ।' युधिष्ठिरने यह भी कहा है कि 'महाराज धृतराष्ट्र मेरे यहाँसे नाना प्रकारके रत्न, गौएँ, दास, दासियाँ और भेंड़-बकरे मँगवाकर ब्राह्मणोंको दान करें ॥ ११½ ॥

दीनान्धकृपणेभ्यश्च तत्र तत्र नृपाज्ञया ॥ १२ ॥
बह्वन्नरसपानाढ्याः सभा विदुर कारय ।
गवां निपानान्यन्यच्च विविधं पुण्यकं कुरु ॥ १३ ॥

'विदुरजी ! आप राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे दीनों, अन्धों और कंगालोंके लिये भिन्न-भिन्न स्थानोंमें प्रचुर अन्न, रस और पीनेयोग्य पदार्थोंसे भरी हुई अनेक धर्मशालाएँ बनवाइये तथा गौओंके पानी पीनेके लिये बहुत-से पौसलोंका निर्मा[ण] कीजिये । साथ ही दूसरे भी विविध प्रकारके पु[ण्यकर्म] कीजिये ॥ १२-१३ ॥

इति मामब्रवीद् राजा पार्थश्चैव धनंजयः ।
यदत्रानन्तरं कार्यं तद् भवान् वक्तुमर्हति ॥ १४ ॥

'इस प्रकार राजा युधिष्ठिर और अर्जुनने मुझसे बार-बा[र] कहा है । अब इसके बाद जो कार्य करना हो, उसे आ[प] बताइये' ॥ १४ ॥

इत्युक्ते विदुरेणाथ धृतराष्ट्रोऽभिनन्द्य तान् ।
मनश्चक्रे महादाने कार्तिक्यां जनमेजय ॥ १५ ॥

जनमेजय ! विदुरके ऐसा कहनेपर धृतराष्ट्रने पाण्डवोंक[ी] बड़ी प्रशंसा की और कार्तिककी तिथियोंमें बहुत बड़ा दा[न] करनेका निश्चय किया ॥ १५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि विदुरवाक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें विदुरका वाक्यविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

राजा धृतराष्ट्रके द्वारा मृत व्यक्तियोंके लिये श्राद्ध एवं विशाल दान-यज्ञका अनुष्ठान

वैशम्पायन उवाच

विदुरेणैवमुक्तस्तु धृतराष्ट्रो जनाधिपः ।
प्रीतिमानभवद् राजन् राज्ञो जिष्णोश्च कर्मणि ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज जनमेजय ! विदुरके ऐसा कहनेपर राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिर और अर्जुनके कार्यसे बहुत प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

ततोऽभिरूपान् भीष्माय ब्राह्मणानृषिसत्तमान् ।
पुत्रार्थे सुहृदश्चैव स समीक्ष्य सहस्रशः ॥ २ ॥
कारयित्वान्नपानानि यानान्याच्छादनानि च ।
सुवर्णमणिरत्नानि दासीदासमजाविकम् ॥ ३ ॥
कम्बलानि च रत्नानि ग्रामान् क्षेत्रं तथा धनम् ।
सालङ्कारान् गजानश्वान् कन्याश्चैव वरस्त्रियः ॥ ४ ॥

तदनन्तर उन्होंने भीष्मजी तथा अपने पुत्रोंके श्राद्धके लिये सुयोग्य एवं श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों तथा सहस्रों सुहृदोंको निमन्त्रित किया । निमन्त्रित करके उनके लिये अन्न, पान, सवारी, ओढ़नेके वस्त्र, सुवर्ण, मणि, रत्न, दास-दासी, भेंड़-बकरे, कम्बल, उत्तम-उत्तम रत्न, ग्राम, खेत, धन, आभूषणोंसे विभूषित हाथी और घोड़े तथा सुन्दरी कन्याएँ एकत्र कीं ॥ २–४ ॥

उद्दिश्योद्दिश्य सर्वेभ्यो ददौ स नृपसत्तमः ।
द्रोणं संकीर्त्य भीष्मं च सोमदत्तं च बाह्लिकम् ॥ ५ ॥
दुर्योधनं च राजानं पुत्रांश्चैव पृथक् पृथक् ।
जयद्रथपुरोगांश्च सुहृदश्चापि सर्वशः ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् उन नृपश्रेष्ठने सम्पूर्ण मृत व्यक्तियोंक[े] उद्देश्यसे एक-एकका नाम लेकर उपर्युक्त वस्तुओंका दा[न] किया । द्रोण, भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, राजा दुर्योधन तथ[ा] अन्य पुत्रोंका और जयद्रथ आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंक[ा] नामोच्चारण करके उन सबके निमित्त पृथक्-पृथक् दा[न] किया ॥ ५-६ ॥

स श्राद्धयज्ञो ववृते बहुशो धनदक्षिणः ।
अनेकधनरत्नौघो युधिष्ठिरमते तदा ॥ ७ ॥

वह श्राद्धयज्ञ युधिष्ठिरकी सम्मतिके अनुसार बहुत-से धनकी दक्षिणासे सुशोभित हुआ । उसमें नाना प्रकारके धन और रत्नोंकी राशियाँ लुटायी गयीं ॥ ७ ॥

अनिशं यत्र पुरुषा गणका लेखकास्तदा ।
युधिष्ठिरस्य वचनादपृच्छन्त स्म तं नृपम् ॥ ८ ॥
आज्ञापय किमेतेभ्यः प्रदायं दीयतामिति ।
तदुपस्थितमेवात्र वचनान्ते ददुस्तदा ॥ ९ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे हिसाब लगाने और लिखनेवाले बहुतेरे कार्यकर्ता वहाँ निरन्तर उपस्थित रहकर धृतराष्ट्रसे पूछते रहते थे कि बताइये, इन याचकोंको क्या दिया जाय ? यहाँ सब सामग्री उपस्थित ही है । धृतराष्ट्र ज्यों

ही कहते त्यों ही उतना धन उन याचकोंको वे कर्मचारी दे देते थे ॥ ८-९ ॥

शतदेये दशशतं सहस्रे चायुतं तथा ।
दीयते वचनाद् राज्ञः कुन्तीपुत्रस्य धीमतः ॥ १० ॥

बुद्धिमान् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके आदेशसे जहाँ सौ देना था, वहाँ हजार दिया गया और हजारकी जगह दस हजार बाँटा गया है ॥ १० ॥

एवं स वसुधाराभिर्वर्षमाणो नृपाम्बुदः ।
तर्पयामास विप्रांस्तान् वर्षन् सस्यमिवाम्बुदः ॥ ११ ॥

जिस प्रकार मेघ पानीकी धारा बहाकर खेतीको हरी-भरी कर देता है, उसी प्रकार राजा धृतराष्ट्ररूपी मेघने धनरूपी वारिधाराकी वर्षा करके समस्त ब्राह्मणरूपी खेतीको तृप्त एवं हरी-भरी कर दिया ॥ ११ ॥

ततोऽनन्तरमेवात्र सर्ववर्णान् महामते ।
अन्नपानरसौघेण प्लावयामास पार्थिवः ॥ १२ ॥

महामते ! तदनन्तर सभी वर्णके लोगोंको भाँति-भाँतिके भोजन और पीनेयोग्य रस प्रदान करके राजाने उन सबको संतुष्ट कर दिया ॥ १२ ॥

स वस्त्रधनरत्नौघो मृदङ्गनिनदो महान् ।
गवाश्वमकरावर्तो नानारत्नमहाकरः ॥ १३ ॥
ग्रामाग्रहारद्वीपाढ्यो मणिहेमजलार्णवः ।
जगत् सम्प्लावयामास धृतराष्ट्रोडुपोद्धतः ॥ १४ ॥

वह दानयज्ञ एक उमड़ते हुए महासागरके समान जान पड़ता था । वस्त्र, धन और रत्न—ये ही उसके प्रवाह थे । मृदङ्गोंकी ध्वनि उस समुद्रकी गर्जना थी । उसका स्वरूप विशाल था । गाय, बैल और घोड़े उसमें घड़ियालों और भँवरोंके समान जान पड़ते थे । नाना प्रकारके रत्नोंका वह महान् आकर बना हुआ था । दानमें दिये जानेवाले गाँव और माफी भूमि—ये ही उस समुद्रके द्वीप थे । मणि और सुवर्णमय जलसे वह लबालब भरा था और धृतराष्ट्ररूपी पूर्ण चन्द्रमाको देखकर उसमें ज्वार-सा उठ गया था । इस प्रकार उस दान-सिन्धुने सम्पूर्ण जगत्‌को आप्लावित कर दिया था ॥ १३-१४ ॥

एवं स पुत्रपौत्राणां पितॄणामात्मनस्तथा ।
गान्धार्याश्च महाराज प्रददावौर्ध्वदेहिकम् ॥ १५ ॥

महाराज ! इस प्रकार उन्होंने पुत्रों, पौत्रों और पितरोंका तथा अपना एवं गान्धारीका भी श्राद्ध किया ॥ १५ ॥

परिश्रान्तो यदासीत् स ददद् दानान्यनेकशः ।
निवर्तयामास तदा दानयज्ञं नराधिपः ॥ १६ ॥

जब अनेक प्रकारके दान देते-देते राजा धृतराष्ट्र बहुत थक गये, तब उन्होंने उस दान-यज्ञको बंद किया ॥ १६ ॥

एवं स राजा कौरव्य चक्रे दानमहाक्रतुम् ।
नटनर्तकलास्याढ्यं बह्वन्नरसदक्षिणम् ॥ १७ ॥

कुरुनन्दन ! इस प्रकार राजा धृतराष्ट्रने दान नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान किया । उसमें प्रचुर अन्न, रस एवं असंख्य दक्षिणाका दान हुआ । उस उत्सवमें नटों और नर्तकोंके नाच-गानका भी आयोजन किया गया था ॥१७॥

दशाहमेवं दानानि दत्त्वा राजाम्बिकासुतः ।
बभूव पुत्रपौत्राणामनृणो भरतर्षभ ॥ १८ ॥

भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार लगातार दस दिनोंतक दान देकर अम्बिकानन्दन राजा धृतराष्ट्र पुत्रों और पौत्रोंके ऋण-से मुक्त हो गये ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि दानयज्ञे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें दानयज्ञ-विषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

गान्धारीसहित धृतराष्ट्रका वनको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रभाते राजा स धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
आहूय पाण्डवान् वीरान् वनवासे कृतक्षणः ॥ १ ॥
गान्धारीसहितो धीमानभ्यनन्दद् यथाविधि ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर ग्यारहवें दिन प्रातःकाल गान्धारीसहित बुद्धिमान् अम्बिका-नन्दन धृतराष्ट्रने वनवासकी तैयारी करके वीर पाण्डवोंको बुलाया और उनका यथावत् अभिनन्दन किया ॥ १½ ॥

कार्तिक्यां कारयित्वेष्टिं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २ ॥
अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य वल्कलाजिनसंवृतः ।
वधूजनवृतो राजा निर्ययौ भवनात् ततः ॥ ३ ॥

उस दिन कार्तिककी पूर्णिमा थी । उसमें उन्होंने वेदके

पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मणोंसे यात्राकालोचित इष्टि करवाकर वल्कल और मृगचर्म धारण किये और अग्निहोत्रको आगे करके पुत्र-वधुओंसे घिरे हुए राजा धृतराष्ट्र राजभवनसे बाहर निकले ॥ २-३ ॥

ततः स्त्रियः कौरवपाण्डवानां
याश्चापराः कौरवराजवंश्याः ।
तासां नादः प्रादुरासीत् तदानीं
वैचित्रवीर्ये नृपतौ प्रयाते ॥ ४ ॥

विचित्रवीर्यनन्दन राजा धृतराष्ट्रके इस प्रकार प्रस्थान करनेपर कौरवों और पाण्डवोंकी स्त्रियाँ तथा कौरवराजवंश-की अन्यान्य महिलाएँ सहसा रो पड़ीं। उनके रोनेका महान् शब्द उस समय सब ओर गूँज उठा था ॥ ४ ॥

ततो लाजैः सुमनोभिश्च राजा
विचित्राभिस्तद् गृहं पूजयित्वा ।
सम्पूज्यार्थैर्भृत्यवर्गं च सर्वं
ततः समुत्सृज्य ययौ नरेन्द्रः ॥ ५ ॥

घरसे निकलकर राजा धृतराष्ट्रने लावा और भाँति-भाँतिके फूलोंसे उस राजभवनकी पूजा की और समस्त सेवकवर्गका धनसे सत्कार करके उन सबको छोड़कर वे महाराज वहाँसे चल दिये ॥ ५ ॥

ततो राजा प्राञ्जलिर्वेपमानो
युधिष्ठिरः सस्वरं बाष्पकण्ठः ।
विमुच्योच्चैर्महानादं हि साधो
क यास्यसीत्यपतत् तात भूमौ ॥ ६ ॥

तात ! उस समय राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़े हुए काँपने लगे । आँसुओंसे उनका गला भर आया । वे जोर-जोरसे महान् आर्तनाद करते हुए फूट-फूटकर रोने लगे । और 'महात्मन् ! आप मुझे छोड़कर कहाँ चले जा रहे हैं ।' ऐसा कहते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ६ ॥

तथार्जुनस्तीव्रदुःखाभितप्तो
मुहुर्मुहुर्निःश्वसन् भारताग्र्यः ।
युधिष्ठिरं मैवमित्येवमुक्त्वा
निगृह्याथो दीनवत् सीदमानः ॥ ७ ॥

उस समय भरतवंशके अग्रगण्य वीर अर्जुन दुस्सह दुःखसे संतप्त हो बारंबार लंबी साँस खींचते हुए वहाँ युधिष्ठिरसे बोले—'भैया ! आप ऐसे अधीर न हो जाइये ।' यों कहकर वे उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर दीनकी भाँति शिथिल होकर बैठ गये ॥ ७ ॥

वृकोदरः फाल्गुनश्चैव वीरौ
माद्रीपुत्रौ विदुरः संजयश्च ।
वैश्यापुत्रः सहितो गौतमेन
धौम्यो विप्राश्चान्वयुर्बाष्पकण्ठाः ॥ ८ ॥
कुन्ती गान्धारीं बद्धनेत्रां व्रजन्तीं
स्कन्धासक्तं हस्तमथोद्वहन्ती ।
राजा गान्धार्याः स्कन्धदेशेऽवसज्य
पाणिं ययौ धृतराष्ट्रः प्रतीतः ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् युधिष्ठिरसहित भीमसेन, अर्जुन, वीर माद्री-कुमार, विदुर, संजय, वैश्यापुत्र युयुत्सु, कृपाचार्य, धौम्य तथा और भी बहुत-से ब्राह्मण आँसू बहाते हुए गद्गदकण्ठ होकर उनके पीछे-पीछे चले । आगे-आगे कुन्ती अपने कंधेपर रक्खे हुए गान्धारीके हाथको पकड़े चल रही थीं । उनके पीछे आँखोंपर पट्टी बाँधे गान्धारी थीं और राजा धृतराष्ट्र गान्धारीके कंधेपर हाथ रक्खे निश्चिन्ततापूर्वक चले जा रहे थे ॥ ८-९ ॥



तथा कृष्णा द्रौपदी सात्वती च
बालापत्या चोत्तरा कौरवी च ।
चित्राङ्गदा याश्च काश्चित्स्त्रियोऽन्याः
सार्धं राज्ञा प्रस्थितास्ता वधूभिः ॥ १० ॥

द्रुपदकुमारी कृष्णा, सुभद्रा, गोदमें नन्हा-सा बालक लिये उत्तरा, कौरव्यनागकी पुत्री उलूपी, बभ्रुवाहनकी माता चित्राङ्गदा तथा अन्य जो कोई भी अन्तःपुरकी स्त्रियाँ थीं; वे सब अपनी बहुओंसहित राजा धृतराष्ट्रके साथ चल पड़ीं ॥ १० ॥

तासां नादो रुदतीनां तदासीद्
राजन् दुःखात् कुररीणामिवोच्चैः ।

ततो निष्पेतुर्ब्राह्मणक्षत्रियाणां
विट्शूद्राणां चैव भार्याः समन्तात् ॥ ११॥

राजन्! उस समय वे सब स्त्रियाँ दुःखसे व्याकुल हो कुररियोंके समान उच्चस्वरसे विलाप कर रही थीं। उनके रोनेका कोलाहल सब ओर व्याप्त हो गया था। उसे सुनकर पुरवासी ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंकी स्त्रियाँ भी चारों ओरसे घर छोड़कर बाहर निकल आयीं ॥ ११ ॥

तन्निर्याणे दुःखितः पौरवर्गो
गजाह्वये चैव बभूव राजन्।
यथा पूर्वं गच्छतां पाण्डवानां
द्यूते राजन् कौरवाणां सभायाः ॥१२॥

राजन्! जैसे पूर्वकालमें द्यूतक्रीड़ाके समय कौरवसभासे निकलकर वनवासके लिये पाण्डवोंके प्रस्थान करनेपर हस्तिनापुरके नागरिकोंका समुदाय दुःखमें डूब गया था, उसी प्रकार धृतराष्ट्रके जाते समय भी समस्त पुरवासी शोकसे संतप्त हो उठे थे ॥ १२ ॥

या नापश्यंश्चन्द्रमसं न सूर्यं
रामाः कदाचिदपि तस्मिन् नरेन्द्रे।
महावनं गच्छति कौरवेन्द्रे
शोकेनार्ता राजमार्गं प्रपेदुः ॥ १३॥

रनिवासकी जिन रमणियोंने कभी बाहर आकर सूर्य और चन्द्रमाको भी नहीं देखा था, वे ही कौरवराज धृतराष्ट्रके महावनके लिये प्रस्थान करते समय शोकसे व्याकुल होकर खुली सड़कपर आ गयी थीं ॥ १३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्रनिर्याणे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रका नगरसे निकलनाविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका पुरवासियोंको लौटाना और पाण्डवोंके अनुरोध करनेपर भी कुन्तीका वनमें जानेसे न रुकना

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रासादहर्म्येषु वसुधायां च पार्थिव।
नारीणां च नराणां च निःस्वनः सुमहानभूत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—पृथ्वीनाथ! तदनन्तर महलों और अट्टालिकाओंमें तथा पृथ्वीपर भी रोते हुए नर-नारियोंका महान् कोलाहल छा गया ॥ १ ॥

स राजा राजमार्गेण नृनारीसंकुलेन च।
कथंचिन्निर्ययौ धीमान् वेपमानः कृताञ्जलिः ॥ २ ॥

सारी सड़क पुरुषों और स्त्रियोंकी भीड़से भरी हुई थी। उसपर चलते हुए बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र बड़ी कठिनाईसे आगे बढ़ पाते थे। उनके दोनों हाथ जुड़े हुए थे और शरीर काँप रहा था ॥ २ ॥

स वर्द्धमानद्वारेण निर्ययौ गजसाह्वयात्।
विसर्जयामास च तं जनौघं स मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥

राजा धृतराष्ट्र वर्धमान नामक द्वारसे होते हुए हस्तिनापुरसे बाहर निकले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बारंबार आग्रह करके अपने साथ आये हुए जनसमूहको विदा किया ॥ ३ ॥

वनं गन्तुं च विदुरो राज्ञा सह कृतक्षणः।
संजयश्च महामात्रः सूतो गावल्गणिस्तथा ॥ ४ ॥

विदुर और गवल्गणकुमार महामात्र सूत संजयने राजाके साथ ही वनमें जानेका निश्चय कर लिया था ॥ ४ ॥

कृपं निवर्तयामास युयुत्सुं च महारथम्।
धृतराष्ट्रो महीपालः परिदाप्य युधिष्ठिरे ॥ ५ ॥

महाराज धृतराष्ट्रने कृपाचार्य और महारथी युयुत्सुको युधिष्ठिरके हाथों सौंपकर लौटाया ॥ ५ ॥

निवृत्ते पौरवर्गे च राजा सान्तःपुरस्तदा।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातो निवर्तितुमियेष ह ॥ ६ ॥

पुरवासियोंके लौट जानेपर अन्तःपुरकी रानियोंसहित राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रकी आज्ञा लेकर लौट जानेका विचार किया ॥ ६ ॥

सोऽब्रवीन्मातरं कुन्तीं वनं तमनुजग्मुषीम्।
अहं राजानमन्विष्ये भवती विनिवर्तताम् ॥ ७ ॥
वधूपरिवृता राज्ञि नगरं गन्तुमर्हसि।
राजा यात्वेष धर्मात्मा तापस्ये कृतनिश्चयः ॥ ८ ॥

उस समय उन्होंने वनकी ओर जाती हुई अपनी माता

कुन्तीसे कहा—'रानी मा ! आप अपनी पुत्रवधुओंके साथ लौटिये, नगरको जाइये। मैं राजाके पीछे-पीछे जाऊँगा; क्योंकि ये धर्मात्मा नरेश तपस्याके लिये निश्चय करके वनमें जा रहे हैं, अतः इन्हें जाने दीजिये' ॥ ७-८ ॥

इत्युक्त्वा धर्मराजेन बाष्पव्याकुललोचना ।
जगामैव तदा कुन्ती गान्धारीं परिगृह्य ह ॥ ९ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर कुन्तीके नेत्रोंमें आँसू भर आया तो भी वे गान्धारीका हाथ पकड़े चलती ही गयीं ॥ ९ ॥

कुन्त्युवाच

सहदेवे महाराज माप्रसादं कृथाः क्वचित् ।
एष मामनुरक्तो हि राजंस्त्वां चैव सर्वदा ॥ १० ॥

जाते-जाते ही कुन्तीने कहा—महाराज ! तुम सहदेवपर कभी अप्रसन्न न होना। राजन् ! यह सदा मेरे और तुम्हारे प्रति भक्ति रखता आया है ॥ १० ॥

कर्णं स्मरेथाः सततं संग्रामेष्वपलायिनम् ।
अवकीर्णो हि समरे वीरो दुष्प्रज्ञया तदा ॥ ११ ॥

संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले अपने भाई कर्णको भी सदा याद रखना, क्योंकि मेरी ही दुर्बुद्धिके कारण वह वीर युद्धमें मारा गया ॥ ११ ॥

आयसं हृदयं नूनं मन्दाया मम पुत्रक ।
यत् सूर्यजमपश्यन्त्याः शतधा न विदीर्यते ॥ १२ ॥

बेटा ! मुझ अभागिनीका हृदय निश्चय ही लोहेका बना हुआ है; तभी तो आज सूर्यनन्दन कर्णको न देखकर भी इसके सैकड़ों टुकड़े नहीं हो जाते ॥ १२ ॥

एवं गते तु किं शक्यं मया कर्तुमरिंदम ।
मम दोषोऽयमत्यर्थं ख्यापितो यन्न सूर्यजः ॥ १३ ॥

शत्रुदमन ! ऐसी दशामें मैं क्या कर सकती हूँ। यह मेरा ही महान् दोष है कि मैंने सूर्यपुत्र कर्णका तुमलोगोंको परिचय नहीं दिया ॥ १३ ॥

तन्निमित्तं महाबाहो दानं दद्यास्त्वमुत्तमम् ।
सदैव भ्रातृभिः सार्धं सूर्यजस्यारिमर्दन ॥ १४ ॥

महाबाहो ! शत्रुमर्दन ! तुम अपने भाइयोंके साथ सदा ही सूर्यपुत्र कर्णके लिये भी उत्तम दान देते रहना ॥ १४ ॥

द्रौपद्याश्च प्रिये नित्यं स्थातव्यमरिकर्शन ।
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव नकुलश्च कुरूद्वह ॥ १५ ॥
समाधेयास्त्वया राजंस्त्वय्यद्य कुलधूर्गता ।

शत्रुसूदन ! मेरी बहू द्रौपदीका भी सदा प्रिय करते रहना। कुरुश्रेष्ठ ! तुम भीमसेन, अर्जुन और नकुलको भी सदा संतुष्ट रखना। आजसे कुरुकुलका भार तुम्हारे ही ऊपर है ॥ १५½ ॥

श्वश्रूश्वशुरयोः पादान् शुश्रूषन्ती वने त्वहम् ॥ १६ ॥
गान्धारीसहिता वत्स्ये तापसी मलपङ्किनी ।

अब मैं वनमें गान्धारीके साथ शरीरपर मैल एवं कीच धारण किये तपस्विनी बनकर रहूँगी और अपने इन सास ससुरके चरणोंकी सेवामें लगी रहूँगी ॥ १६½ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो वशी ।
विषादमगमद् धीमान् न च किंचिदुवाच ह ॥ १७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! माताके ऐसा कहनेपर अपने मनको वशमें रखनेवाले धर्मात्मा एवं बुद्धिमान् युधिष्ठिर भाइयोंसहित बहुत दुखी हुए। वे अपने मुँहसे कुछ न बोले ॥ १७ ॥

मुहूर्तमिव तु ध्यात्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
उवाच मातरं दीनश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ १८ ॥

दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर चिन्ता और शोकमें डूबे हुए धर्मराज युधिष्ठिरने मातासे दीन होकर कहा— ॥ १८ ॥

किमिदं ते व्यवसितं नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ।
न त्वामभ्यनुजानामि प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥

'माताजी ! आपने यह क्या निश्चय कर लिया ? आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मैं आपको वन जानेकी अनुमति नहीं दे सकता। आप मुझपर कृपा कीजिये ॥ १९ ॥

पुरोद्यतान् पुरा ह्यस्मानुत्साह्य प्रियदर्शने ।
विदुलाया वचोभिस्त्वं नास्मान् संत्यक्तुमर्हसि ॥ २० ॥

'प्रियदर्शने ! पहले जब हमलोग नगरसे बाहर जानेको उद्यत थे, आपने विदुलाके वचनोंद्वारा हमें क्षत्रियधर्मके पालनके लिये उत्साह दिलाया था। अतः आज हमें त्यागकर जाना आपके लिये उचित नहीं है ॥ २० ॥

निहत्य पृथिवीपालान् राज्यं प्राप्तमिदं मया ।
तव प्रज्ञामुपश्रुत्य वासुदेवान्नरर्षभात् ॥ २१ ॥

'पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे आपका विचार सुनकर ही मैंने बहुत-से राजाओंका संहार करके इस राज्यको प्राप्त किया है ॥ २१ ॥

क्व सा बुद्धिरियं चाद्य भवत्या यच्छ्रुतं मया ।
क्षत्रधर्मे स्थितिं चोक्त्वा तस्याश्च्यवितुमिच्छसि ॥ २२ ॥

'कहाँ आपकी वह बुद्धि और कहाँ आपका यह विचार ! मैंने आपका जो विचार सुना है, उसके अनुसार हमें क्षत्रिय

धर्ममें स्थित रहनेका उपदेश देकर आप स्वयं उससे गिरना चाहती हैं ॥ २२ ॥

अस्मानुत्सृज्य राज्यं च स्नुषा हीमा यशस्विनि ।
कथं वत्स्यसि दुर्गेषु वनेष्वद्य प्रसीद मे ॥ २३ ॥

'यशस्विनी मा ! भला आप हमको, अपनी इन बहुओंको और इस राज्यको छोड़कर अब उन दुर्गम वनोंमें कैसे रह सकेंगी; अतः हमलोगोंपर कृपा करके यहीं रहिये' ॥ २३ ॥

इति बाष्पकला वाचः कुन्ती पुत्रस्य शृण्वती ।
सा जगामाश्रुपूर्णाक्षी भीमस्तामिदमब्रवीत् ॥ २४ ॥

अपने पुत्रके ये अश्रुगद्गद वचन सुनकर कुन्तीके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये तो भी वे रुक न सकीं । आगे बढ़ती ही गयीं । तब भीमसेनने उनसे कहा—॥ २४ ॥

यदा राज्यमिदं कुन्ति भोक्तव्यं पुत्रनिर्जितम् ।
प्राप्तव्या राजधर्माश्च तदेयं ते कुतो मतिः ॥ २५ ॥

'माताजी ! जब पुत्रोंके जीते हुए इस राज्यके भोगनेका अवसर आया और राजधर्मके पालनकी सुविधा प्राप्त हुई, तब आपको ऐसी बुद्धि कैसे हो गयी ? ॥ २५ ॥

किं वयं कारिताः पूर्वं भवत्या पृथिवीक्षयम् ।
कस्य हेतोः परित्यज्य वनं गन्तुमभीप्ससि ॥ २६ ॥

'यदि ऐसा ही करना था तो आपने इस भूमण्डलका विनाश क्यों करवाया ? क्या कारण है कि आप हमें छोड़कर वनमें जाना चाहती हैं ? ॥ २६ ॥

वनाच्चापि किमानीता भवत्या बालका वयम् ।
दुःखशोकसमाविष्टौ माद्रीपुत्राविमौ तथा ॥ २७ ॥

'जब आपको वनमें ही जाना था, तब आप हमको और दुःख-शोकमें डूबे हुए उन माद्रीकुमारोंको बाल्यावस्थामें वनसे नगरमें क्यों ले आयीं ? ॥ २७ ॥

प्रसीद मातर्मा गास्त्वं वनमद्य यशस्विनि ।
श्रियं यौधिष्ठिरीं मातर्भुङ्क्ष्व तावद् बलार्जिताम् ॥ २८ ॥

'मेरी यशस्विनी मा ! आप प्रसन्न हों । आप हमें छोड़कर वनमें न जायँ । बलपूर्वक प्राप्त की हुई राजा युधिष्ठिरकी उस राजलक्ष्मीका उपभोग करें' ॥ २८ ॥

इति सा निश्चितैवाशु वनवासाय भाविनी ।
लालप्यतां बहुविधं पुत्राणां नाकरोद् वचः ॥ २९ ॥

शुद्ध हृदयवाली कुन्ती देवी वनमें रहनेका दृढ़ निश्चय कर चुकी थीं; अतः नाना प्रकारसे विलाप करते हुए अपने पुत्रोंका अनुरोध उन्होंने नहीं माना ॥ २९ ॥

द्रौपदी चान्वयाच्छ्वश्रूं विषण्णवदना तदा ।
वनवासाय गच्छन्तीं रुदती भद्रया सह ॥ ३० ॥

सासको इस प्रकार वनवासके लिये जाती देख द्रौपदीके मुखपर भी विषाद छा गया । वह सुभद्राके साथ रोती हुई स्वयं भी कुन्तीके पीछे-पीछे जाने लगी ॥ ३० ॥

सा पुत्रान् रुदतः सर्वान् मुहुर्मुहुरवेक्षती ।
जगामैव महाप्राज्ञा वनाय कृतनिश्चया ॥ ३१ ॥

कुन्तीकी बुद्धि विशाल थी । वे वनवासका पक्का निश्चय कर चुकी थीं; इसलिये अपने रोते हुए समस्त पुत्रोंकी ओर बार-बार देखती हुई वे आगे बढ़ती ही चली गयीं ॥ ३१ ॥

अन्वयुः पाण्डवास्तां तु सभृत्यान्तःपुरास्तथा ।
ततः प्रमृज्य साश्रूणि पुत्रान् वचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

पाण्डव भी अपने सेवकों और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ उनके पीछे-पीछे जाने लगे । तब उन्होंने आँसू पोंछकर अपने पुत्रोंसे इस प्रकार कहा ॥ ३२ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि कुन्तीवनप्रस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें कुन्तीका वनको प्रस्थानविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

कुन्तीका पाण्डवोंको उनके अनुरोधका उत्तर

कुन्त्युवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ।
कृतमुद्धर्षणं पूर्वं मया वः सीदतां नृपाः ॥ १ ॥

कुन्ती बोली—महाबाहु पाण्डुनन्दन ! तुम जैसा कहते हो, वही ठीक है । राजाओ ! पूर्वकालमें तुम नाना प्रकारके कष्ट उठाकर शिथिल हो गये थे, इसलिये मैंने तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित किया था ॥ १ ॥

द्यूतापहृतराज्यानां पतितानां सुखादपि ।
ज्ञातिभिः परिभूतानां कृतमुद्धर्षणं मया ॥ २ ॥

जूएमें तुम्हारा राज्य छीन लिया गया था । तुम सुखसे भ्रष्ट हो चुके थे और तुम्हारे ही बन्धु-बान्धव तुम्हारा तिरस्कार करते थे; इसलिये मैंने तुम्हें युद्धके लिये उत्साह प्रदान किया था ॥ २ ॥

कथं पाण्डोर्न नश्येत संततिः पुरुषर्षभाः।
यशश्च वो न नश्येत इति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ३ ॥

श्रेष्ठ पुरुषो ! मैं चाहती थी कि पाण्डुकी संतान किसी तरह नष्ट न हो और तुम्हारे यशका भी नाश न होने पाये। इसलिये मैंने तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित किया था॥ ३॥

यूयमिन्द्रसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः।
मा परेषां मुखप्रेक्षाः स्थेत्येवं तत् कृतं मया॥ ४ ॥

तुम सब लोग इन्द्रके समान शक्तिशाली और देवताओंके तुल्य पराक्रमी होकर जीविकाके लिये दूसरोंका मुँह न देखो, इसलिये मैंने वह सब किया था॥ ४॥

कथं धर्मभृतां श्रेष्ठो राजा त्वं वासवोपमः।
पुनर्वने न दुःखी स्या इति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ५ ॥

तुम धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ और इन्द्रके समान ऐश्वर्यशाली राजा होकर पुनः वनवासका कष्ट न भोगो, इसी उद्देश्यसे मैंने तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित किया था॥ ५॥

नागायुतसमप्राणः ख्यातविक्रमपौरुषः।
नायं भीमोऽत्ययं गच्छेदिति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ६ ॥

ये दस हजार हाथियोंके समान बलशाली और विख्यात बल-पराक्रमसे सम्पन्न भीमसेन पराजयको न प्राप्त हों; इसीलिये मैंने युद्धके हेतु उत्साह दिलाया था॥ ६॥

भीमसेनादवरजस्तथायं वासवोपमः।
विजयो नावसीदेत इति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ७ ॥

भीमसेनके छोटे भाई ये इन्द्रतुल्य पराक्रमी विजयशील अर्जुन शिथिल होकर न बैठ जायँ, इसीलिये मैंने उत्साह दिलाया था॥ ७॥

नकुलः सहदेवश्च तथेमौ गुरुवर्तिनौ।
क्षुधा कथं न सीदेतामिति चोद्धर्षणं कृतम्॥ ८ ॥

गुरुजनोंकी आज्ञाके पालनमें लगे रहनेवाले ये दोनों भाई नकुल और सहदेव भूखका कष्ट न उठावें, इसके लिये मैंने तुम्हें उत्साह दिलाया था॥ ८॥

इयं च बृहती श्यामा तथात्यायतलोचना।
वृथा सभातले क्लिष्टा मा भूदिति च तत् कृतम्॥ ९ ॥

यह ऊँचे कदवाली श्यामवर्णा विशाललोचना मेरी बहू भरी सभामें पुनः व्यर्थ अपमानित होनेका कष्ट न भोगे, इसी उद्देश्यसे मैंने वह सब किया था॥ ९॥

प्रेक्षतामेव वो भीम वेपन्तीं कदलीमिव।
स्त्रीधर्मिणीमरिष्टाङ्गीं तथा द्यूतपराजिताम्॥ १० ॥
दुःशासनो यदा मौर्ख्याद् दासीवत् पर्यकर्षत।
तदैव विदितं मह्यं पराभूतमिदं कुलम्॥ ११ ॥

भीमसेन ! तुम सब लोगोंके देखते-देखते केलेके पत्तेकी तरह काँपती हुई, जूएमें हारी गयी, रजस्वला और निर्दोष अङ्गवाली द्रौपदीको दुःशासनने मूर्खतावश जब दासीकी भाँति घसीटा था, तभी मुझे मालूम हो गया था कि अब इस कुलका पराभव होकर ही रहेगा॥ १०-११॥

निषण्णाः कुरवश्चैव तदा मे श्वशुरादयः।
सा दैवं नाथमिच्छन्ती व्यलपत् कुररी यथा॥ १२ ॥

मेरे श्वशुर आदि समस्त कौरव चुपचाप बैठे थे और द्रौपदी अपने लिये रक्षक चाहती हुई भगवान्‌को पुकार-पुकारकर कुररीकी भाँति विलाप कर रही थी॥ १२॥

केशपक्षे परामृष्टा पापेन हतबुद्धिना।
यदा दुःशासनेनैषा तदा मुह्याम्यहं नृपाः॥ १३ ॥
युष्मत्तेजोविवृद्ध्यर्थं मया ह्युद्धर्षणं कृतम्।
तदानीं विदुलावाक्यैरिति तद् वित्त पुत्रकाः॥ १४ ॥

राजाओ ! जिसकी बुद्धि मारी गयी थी, उस पापी दुःशासनने जब मेरी इस बहूका केश पकड़कर खींचा था, तभी मैं दुःखसे मोहित हो गयी थी। यही कारण था कि उस समय विदुलाके वचनोंद्वारा मैंने तुम्हारे तेजकी वृद्धिके लिये उत्साहवर्धन किया था। पुत्रो ! इस बातको अच्छी तरह समझ लो॥ १३-१४॥

कथं न राजवंशोऽयं नश्येत् प्राप्य सुतान् मम।
पाण्डोरिति मया पुत्रास्तस्मादुद्धर्षणं कृतम्॥ १५ ॥

मेरे और पाण्डुके पुत्रोंतक पहुँचकर यह राजवंश किसी तरह नष्ट न हो जाय; इसीलिये मैंने तुम्हारे उत्साहकी वृद्धि की थी॥ १५॥

न तस्य पुत्राः पौत्रा वा क्षतवंशस्य पार्थिव।
लभन्ते सुकृताँल्लोकान् यस्माद् वंशः प्रणश्यति॥ १६ ॥

राजन् ! जिसका वंश नष्ट हो जाता है, उस कुलके पुत्र या पौत्र कभी पुण्यलोक नहीं पाते; क्योंकि उस वंशका तो नाश ही हो जाता है॥ १६॥

भुक्तं राज्यफलं पुत्रा भर्तुर्मे विपुलं पुरा।
महादानानि दत्तानि पीतः सोमो यथाविधि॥ १७ ॥

पुत्रो ! मैंने पूर्वकालमें अपने स्वामी महाराज पाण्डुके विशाल राज्यका सुख भोग लिया है, बड़े-बड़े दान दिये हैं और यज्ञमें विधिपूर्वक सोमपान भी किया है॥ १७॥

नाहमात्मफलार्थं वै वासुदेवमचूचुदम्।
विदुलायाः प्रलापैस्तैः पालनार्थं च तत् कृतम्॥ १८ ॥

मैंने अपने लाभके लिये श्रीकृष्णको प्रेरित नहीं किया था। विदुलाके वचन सुनाकर जो उनके द्वारा तुम्हारे पास संदेश भेजा था, वह सब तुमलोगोंकी रक्षाके उद्देश्यसे ही किया था॥ १८॥

नाहं राज्यफलं पुत्राः कामये पुत्रनिर्जितम् ।
पतिलोकानहं पुण्यान् कामये तपसा विभो ॥ १९ ॥

पुत्रो ! मैं पुत्रके जीते हुए राज्यका फल भोगना नहीं चाहती । प्रभो ! मैं तपस्याद्वारा पुण्यमय पतिलोकमें जानेकी कामना रखती हूँ ॥ १९ ॥

श्वश्रूश्वशुरयोः कृत्वा शुश्रूषां वनवासिनोः ।
तपसा शोषयिष्यामि युधिष्ठिर कलेवरम् ॥ २० ॥

युधिष्ठिर ! अब मैं अपने इन वनवासी सास-ससुरकी सेवा करके तपके द्वारा इस शरीरको सुखा डालूँगी ॥ २० ॥

निवर्तस्व कुरुश्रेष्ठ भीमसेनादिभिः सह ।
धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्तु महदस्तु च ॥ २१ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! तुम भीमसेन आदिके साथ लौट जाओ । तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी रहे और तुम्हारा हृदय विशाल (अत्यन्त उदार) हो ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि कुन्तीवाक्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें कुन्तीका वाक्यविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

पाण्डवोंका स्त्रियोंसहित निराश लौटना, कुन्तीसहित गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिका मार्गमें गङ्गातटपर निवास करना

वैशम्पायन उवाच

कुन्त्यास्तु वचनं श्रुत्वा पाण्डवा राजसत्तम ।
व्रीडिताः संन्यवर्तन्त पाञ्चाल्या सहिताऽनघाः॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ ! कुन्तीकी बात सुनकर निष्पाप पाण्डव बहुत लज्जित हुए और द्रौपदीके साथ वहाँसे लौटने लगे ॥ १ ॥

ततः शब्दो महानेव सर्वेषामभवत् तदा ।
अन्तःपुराणां रुदतां दृष्ट्वा कुन्तीं तथागताम् ॥ २ ॥
प्रदक्षिणमथावृत्य राजानं पाण्डवास्तदा ।
अभिवाद्य न्यवर्तन्त पृथां तामनिवर्त्य वै ॥ ३ ॥

कुन्तीको इस प्रकार वनवासके लिये उद्यत देख रनिवासकी सारी स्त्रियाँ रोने लगीं । उन सबके रोनेका महान् शब्द सब ओर गूँज उठा । उस समय पाण्डव कुन्तीको लौटानेमें सफल न हो राजा धृतराष्ट्रकी परिक्रमा और अभिवादन करके लौटने लगे ॥ २-३ ॥

ततोऽब्रवीन्महातेजा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
गान्धारीं विदुरं चैव समाभाष्यावगृह्य च ॥ ४ ॥

तब महातेजस्वी अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रने गान्धारी और विदुरको सम्बोधित करके उनका हाथ पकड़कर कहा—॥४॥

युधिष्ठिरस्य जननी देवी साधु निवर्त्यताम् ।
यथा युधिष्ठिरः प्राह तत् सर्वं सत्यमेव हि ॥ ५ ॥

'गान्धारी और विदुर ! तुमलोग युधिष्ठिरकी माता कुन्तीदेवीको अच्छी तरह समझा-बुझाकर लौटा दो । युधिष्ठिर जैसा कह रहे हैं, वह सब ठीक ही है ॥ ५ ॥

पुत्रैश्वर्यं महदिदमपास्य च महाफलम् ।
का नु गच्छेद् वनं दुर्गं पुत्रानुत्सृज्य मूढवत् ॥ ६ ॥

'पुत्रोंका महान् फलदायक यह महान् ऐश्वर्य छोड़कर और पुत्रोंका त्याग करके कौन नारी मूढ़की भाँति दुर्गम वनमें जायगी ? ॥ ६ ॥

राज्यस्थया तपस्तप्तुं कर्तुं दानव्रतं महत् ।
अनया शक्यमेवाद्य श्रूयतां च वचो मम ॥ ७ ॥

'यह राज्यमें रहकर भी तपस्या कर सकती है और महान् दान-व्रतका अनुष्ठान करनेमें समर्थ हो सकती है; अतः यह आज मेरी बात ध्यान देकर सुने ॥ ७ ॥

गान्धारि परितुष्टोऽस्मि वध्वाः शुश्रूषणेन वै ।
तस्मात् त्वमेनां धर्मज्ञे समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥

'धर्मको जाननेवाली गान्धारी ! मैं बहू कुन्तीकी सेवा-शुश्रूषासे बहुत संतुष्ट हूँ; अतः आज तुम इसे घर लौटनेकी आज्ञा दे दो' ॥ ८ ॥

इत्युक्ता सौबलेयी तु राज्ञा कुन्तीमुवाच ह ।
तत् सर्वं राजवचनं स्वं च वाक्यं विशेषवत् ॥ ९ ॥

राजा धृतराष्ट्रके ऐसा कहनेपर सुबलकुमारी गान्धारीने कुन्तीसे राजाकी आज्ञा कह सुनायी और अपनी ओरसे भी उन्हें लौटनेके लिये विशेष जोर दिया ॥ ९ ॥

न च सा वनवासाय देवी कृतमतिं तदा ।
शक्नोत्युपावर्तयितुं कुन्तीं धर्मपरां सतीम् ॥ १० ॥

परंतु धर्मपरायणा सती-साध्वी कुन्तीदेवी वनमें रहनेका दृढ़ निश्चय कर चुकी थीं, अतः गान्धारी देवी उन्हें घरकी ओर लौटा न सकीं ॥ १० ॥

तस्यास्तां तु स्थितिं ज्ञात्वा व्यवसायं कुरुस्त्रियः ।
निवृत्तांश्च कुरुश्रेष्ठान् दृष्ट्वा प्ररुरुदुस्तदा ॥ ११ ॥

कुन्तीकी यह स्थिति और वनमें रहनेका दृढ़ निश्चय जान कुरुश्रेष्ठ पाण्डवोंको निराश लौटते देख कुरुकुलकी सारी स्त्रियाँ फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ११ ॥

उपावृत्तेषु पार्थेषु सर्वास्वेव वधूषु च ।
ययौ राजा महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो वनं तदा ॥ १२ ॥

कुन्तीके सभी पुत्र और सारी बहुएँ जब लौट गयीं, तब महाज्ञानी राजा धृतराष्ट्र वनकी ओर चले ॥ १२ ॥

पाण्डवाश्चातिदीनास्ते दुःखशोकपरायणाः ।
यानैः स्त्रीसहिताः सर्वे पुरं प्रविविशुस्तदा ॥ १३ ॥

उस समय पाण्डव अत्यन्त दीन और दुःख-शोकमें मग्न हो रहे थे। उन्होंने वाहनोंपर बैठकर स्त्रियोंसहित नगरमें प्रवेश किया ॥ १३ ॥

तदहृष्टमनानन्दं गतोत्सवमिवाभवत् ।
नगरं हास्तिनपुरं सस्त्रीवृद्धकुमारकम् ॥ १४ ॥

उस दिन बालक, वृद्ध और स्त्रियोंसहित सारा हस्तिनापुर नगर हर्ष और आनन्दसे रहित तथा उत्सवशून्य-सा हो रहा था ॥ १४ ॥

सर्वे चासन् निरुत्साहाः पाण्डवा जातमन्यवः ।
कुन्त्या हीनाः सुदुःखार्ता वत्सा इव विनाकृताः ॥ १५ ॥

समस्त पाण्डवोंका उत्साह नष्ट हो गया था। वे दीन एवं दुखी हो गये थे। कुन्तीसे बिछुड़कर अत्यन्त दुःखसे आतुर हो वे बिना गायके बछड़ोंके समान व्याकुल हो गये थे ॥

धृतराष्ट्रस्तु तेनाह्ना गत्वा सुमहदन्तरम् ।
ततो भागीरथीतीरे निवासमकरोत् प्रभुः ॥ १६ ॥

उधर राजा धृतराष्ट्रने उस दिन बहुत दूरतक यात्रा करके संध्याके समय गङ्गाके तटपर निवास किया ॥ १६ ॥

प्रादुष्कृता यथान्यायमग्नयो वेदपारगैः ।
व्यराजन्त द्विजश्रेष्ठैस्तत्र तत्र तपोवने ॥ १७ ॥

वहाँके तपोवनमें वेदोंके पारंगत श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने जहाँ-तहाँ विधिपूर्वक जो आग प्रकट करके प्रज्वलित की थी, वह बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १७ ॥

प्रादुष्कृताग्निरभवत् स च वृद्धो नराधिपः ।
स राजाग्नीन् पर्युपास्य हुत्वा च विधिवत् तदा ॥१८॥
संध्यागतं सहस्रांशुमुपातिष्ठत भारत ।

भारतनन्दन ! फिर बूढ़े राजा धृतराष्ट्रने भी अग्निको प्रकट एवं प्रज्वलित किया। त्रिविध अग्नियोंकी उपासना करके उनमें विधिपूर्वक आहुति दे राजाने संध्याकालिक सूर्यदेवका उपस्थान किया ॥ १८½ ॥

विदुरः संजयश्चैव राज्ञः शय्यां कुशैस्ततः ॥ १९ ॥
चक्रतुः कुरुवीरस्य गान्धार्याश्चाविदूरतः ।

तदनन्तर विदुर और संजयने कुरुप्रवीर राजा धृतराष्ट्रके लिये कुशोंकी शय्या बिछा दी। उनके पास ही गान्धारीके लिये एक पृथक् आसन लगा दिया ॥१९½॥

गान्धार्याः संनिकर्षे तु निषसाद कुशे सुखम् ॥ २० ॥
युधिष्ठिरस्य जननी कुन्ती साधुव्रते स्थिता ।

गान्धारीके निकट ही उत्तम व्रतमें स्थित हुई युधिष्ठिरकी माता कुन्ती भी कुशासनपर सोयीं और उसीमें उन्होंने सुख माना ॥ २०½ ॥

तेषां संश्रवणे चापि निषेदुर्विदुरादयः ॥ २१ ॥
याजकाश्च यथोद्देशं द्विजा ये चानुयायिनः ।

विदुर आदि भी राजासे उतनी ही दूरपर सोये, जहाँसे उनकी बोली सुनायी दे सके। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण तथा राजाके साथ आये हुए अन्य द्विज यथायोग्य स्थानपर सोये ॥

प्राधीतद्विजमुख्या सा सम्प्रज्वलितपावका ॥ २२ ॥
बभूव तेषां रजनी ब्राह्मीव प्रीतिवर्धिनी ।

उस रातमें मुख्य-मुख्य ब्राह्मण स्वाध्याय करते थे और जहाँ-तहाँ अग्निहोत्रकी आग प्रज्वलित हो रही थी। इससे वह रजनी उन लोगोंके लिये ब्राह्मी निशाके समान आनन्द बढ़ानेवाली हो रही थी ॥ २२½ ॥

ततो रात्र्यां व्यतीतायां कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ॥ २३ ॥
हुत्वाग्निं विधिवत् सर्वे प्रययुस्ते यथाक्रमम् ।
उदङ्मुखा निरीक्षन्त उपवासपरायणाः ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् रात बीतनेपर पूर्वाह्णकालकी क्रिया पूरी करके विधिपूर्वक अग्निमें आहुति देनेके पश्चात् वे सब लोग क्रमशः आगे बढ़ने लगे। उन सबने रात्रिमें उपवास किया था और सभी उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके उधर ही देखते हुए चले जा रहे थे ॥ २३-२४ ॥

स तेषामतिदुःखोऽभून्निवासः प्रथमेऽहनि ।
शोचतां शोच्यमानानां पौरजानपदैर्जनैः ॥ २५ ॥

नगर और जनपदके लोग जिनके लिये शोक कर रहे थे तथा जो स्वयं भी शोकमग्न थे, उन धृतराष्ट्र आदिके लिये यह पहले दिनका निवास बड़ा ही दुःखदायी प्रतीत हुआ ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्र आदिका गङ्गातटपर निवास करके वहाँसे कुरुक्षेत्रमें जाना और शतयूपके आश्रमपर निवास करना

वैशम्पायन उवाच

ततो भागीरथीतीरे मेध्ये पुण्यजनोचिते।
निवासमकरोद् राजा विदुरस्य मते स्थितः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर दूसरा दिन व्यतीत होनेपर राजा धृतराष्ट्रने विदुरजीकी बात मानकर पुण्यात्मा पुरुषोंके रहनेयोग्य भागीरथीके पावन-तटपर निवास किया॥ १॥

तत्रैनं पर्युपातिष्ठन् ब्राह्मणा वनवासिनः।
क्षत्रविट्शूद्रसंघाश्च बहवो भरतर्षभ॥ २॥

भरतश्रेष्ठ ! वहाँ वनवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बहुत बड़ी संख्यामें एकत्र होकर राजासे मिलनेको आये॥ २॥

स तैः परिवृतो राजा कथाभिः परिनन्द्य तान्।
अनुजज्ञे सशिष्यान् वै विधिवत् प्रतिपूज्य च॥ ३॥

उन सबसे घिरे हुए राजा धृतराष्ट्रने अनेक प्रकारकी बातें करके सबको प्रसन्न किया और शिष्योंसहित ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें जानेकी अनुमति दी॥ ३॥

सायाह्ने स महीपालस्ततो गङ्गामुपेत्य च।
चकार विधिवच्छौचं गान्धारी च यशस्विनी॥ ४॥

तत्पश्चात् सायंकालमें राजा तथा यशस्विनी गान्धारी-देवीने गङ्गाजीके जलमें प्रवेश करके विधिपूर्वक स्नान-कार्य सम्पन्न किया॥ ४॥

ते चैवान्ये पृथक् सर्वे तीर्थेष्वाप्लुत्य भारत।
चक्रुः सर्वाः क्रियास्तत्र पुरुषा विदुरादयः॥ ५॥

भरतनन्दन ! वे तथा विदुर आदि पुरुषवर्गके लोग सबने पृथक्-पृथक् घाटोंमें गोता लगाकर संध्योपासन आदि समस्त शुभ कार्य पूर्ण किये॥ ५॥

कृतशौचं ततो वृद्धं श्वशुरं कुन्तिभोजजा।
गान्धारीं च पृथा राजन् गङ्गातीरमुपानयत्॥ ६॥

राजन् ! स्नानादि कर लेनेके पश्चात् अपने बूढ़े श्वशुर धृतराष्ट्र और गान्धारीदेवीको कुन्तीदेवी गङ्गाके किनारे ले आयीं॥ ६॥

राज्ञस्तु याजकैस्तत्र कृतो वेदीपरिस्तरः।
जुहाव तत्र वह्निं स नृपतिः सत्यसङ्गरः॥ ७॥

वहाँ यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंने राजाके लिये एक वेदी तैयार की, जिसपर अग्नि-स्थापना करके उस सत्यप्रतिज्ञ नरेशने विधिवत् अग्निहोत्र किया॥ ७॥

ततो भागीरथीतीरात् कुरुक्षेत्रं जगाम सः।
सानुगो नृपतिर्वृद्धो नियतः संयतेन्द्रियः॥ ८॥

इस प्रकार नित्यकर्मसे निवृत्त हो बूढ़े राजा धृतराष्ट्र इन्द्रियसंयमपूर्वक नियमपरायण हो सेवकोंसहित गङ्गातटसे चलकर कुरुक्षेत्रमें जा पहुँचे॥ ८॥

तत्राश्रमपदं धीमानभिगम्य स पार्थिवः।
आससादाथ राजर्षिं शतयूपं मनीषिणम्॥ ९॥

वहाँ बुद्धिमान् भूपाल एक आश्रमपर जाकर वहाँके मनीषी राजर्षि शतयूपसे मिले॥ ९॥

स हि राजा महानासीत् केकयेषु परंतपः।
स्वपुत्रं मनुजैश्वर्ये निवेश्य वनमाविशत्॥ १०॥

वे परंतप राजा शतयूप कभी केकय देशके महाराज थे। अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठाकर वनमें चले आये थे॥ १०॥

तेनासौ सहितो राजा ययौ व्यासाश्रमं प्रति।
तत्रैनं विधिवद् राजा प्रत्यगृह्णात् कुरूद्वहः॥ ११॥

राजा धृतराष्ट्र उन्हें साथ लेकर व्यास-आश्रमपर गये। वहाँ कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने विधिपूर्वक व्यासजीकी पूजा की॥ ११॥

स दीक्षां तत्र सम्प्राप्य राजा कौरवनन्दनः।
शतयूपाश्रमे तस्मिन् निवासमकरोत् तदा॥ १२॥

तत्पश्चात् उन्हींसे वनवासकी दीक्षा लेकर कौरवनन्दन राजा धृतराष्ट्र पूर्वोक्त शतयूपके आश्रममें लौट आये और वहीं निवास करने लगे॥ १२॥

तस्मै सर्वं विधिं राज्ञे राजाऽऽचख्यौ महामतिः।
आरण्यकं महाराज व्यासस्यानुमते तदा॥ १३॥

महाराज ! वहाँ परम बुद्धिमान् राजा शतयूपने व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्रको वनमें रहनेकी सम्पूर्ण विधि बतला दी॥ १३॥

एवं स तपसा राजन् धृतराष्ट्रो महामनाः।
योजयामास चात्मानं तांश्चाप्यनुचरांस्तदा॥ १४॥

राजन् ! इस प्रकार महामनस्वी राजा धृतराष्ट्रने अपने आपको तथा साथ आये हुए लोगोंको भी तपस्यामें लगा दिया॥ १४॥

तथैव देवी गान्धारी वल्कलाजिनधारिणी।
कुन्त्या सह महाराज समानव्रतचारिणी॥ १५॥

महाराज ! इसी प्रकार वल्कल और मृगचर्म धारण करनेवाली गान्धारीदेवी भी कुन्तीके साथ रहकर धृतराष्ट्रके समान ही व्रतका पालन करने लगीं ॥ १५ ॥

कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा चैव ते नृप।
संनियम्येन्द्रियग्राममास्थिते परमं तपः ॥ १६ ॥

नरेश्वर ! वे दोनों नारियाँ इन्द्रियोंको अपने अधीन करके मन, वाणी, कर्म तथा नेत्रोंके द्वारा भी उत्तम तपस्यामें संलग्न हो गयीं ॥ १६ ॥

त्वगस्थिभूतः परिशुष्कमांसो
जटाजिनी वल्कलसंवृताङ्गः।
स पार्थिवस्तत्र तपश्चचार
महर्षिवत्तीव्रमपेतमोहः ॥ १७ ॥

राजा धृतराष्ट्रके शरीरका मांस सूख गया। अस्थिचर्मावशिष्ट होकर मस्तकपर जटा और शरीरपर मृगछाला एवं वल्कल धारण किये महर्षियोंकी भाँति तीव्र तपस्या प्रवृत्त हो गये। उनके चित्तका सम्पूर्ण मोह दूर हो गया ॥ १७ ॥

क्षत्ता च धर्मार्थविदग्र्यबुद्धिः
ससंजयस्तं नृपतिं सदारम्।
उपाचरद् घोरतपो जितात्मा
तदा कृशो वल्कलचीरवासाः ॥ १८ ॥

धर्म और अर्थके ज्ञाता तथा उत्तम बुद्धिवाले विदुर भी संजयसहित वल्कल और चीरवस्त्र धारण किये गान्धारी और धृतराष्ट्रकी सेवा करने लगे। वे मनको वशमें करके अपने दुर्बल शरीरसे घोर तपस्यामें संलग्न रहते थे ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि शतयूपाश्रमनिवासे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें धृतराष्ट्रका शतयूपके आश्रमपर निवासविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

नारदजीका प्राचीन राजर्षियोंकी तपःसिद्धिका दृष्टान्त देकर धृतराष्ट्रकी तपस्याविषयक श्रद्धाको बढ़ाना तथा शतयूपके पूछनेपर धृतराष्ट्रको मिलनेवाली गतिका भी वर्णन करना

वैशम्पायन उवाच

ततस्तत्र मुनिश्रेष्ठा राजानं द्रष्टुमभ्ययुः।
नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः ॥ १ ॥
द्वैपायनः सशिष्यश्च सिद्धाश्चान्ये मनीषिणः।
शतयूपश्च राजर्षिर्वृद्धः परमधार्मिकः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर वहाँ राजा धृतराष्ट्रसे मिलनेके लिये नारद, पर्वत, महातपस्वी देवल, शिष्योंसहित महर्षि व्यास तथा अन्यान्य सिद्ध, मनीषी, श्रेष्ठ मुनिगण आये। उनके साथ परम धर्मात्मा वृद्ध राजर्षि शतयूप भी पधारे थे ॥ १-२ ॥

तेषां कुन्ती महाराज पूजां चक्रे यथाविधि।
ते चापि तुतुषुस्तस्यास्तापसाः परिचर्यया ॥ ३ ॥

महाराज ! कुन्तीदेवीने उन सबकी यथायोग्य पूजा की। वे तपस्वी ऋषि भी कुन्तीकी सेवासे बहुत संतुष्ट हुए ॥ ३ ॥

तत्र धर्म्याः कथास्तात चक्रुस्ते परमर्षयः।
रमयन्तो महात्मानं धृतराष्ट्रं जनाधिपम् ॥ ४ ॥

तात ! वहाँ उन महर्षियोंने महात्मा राजा धृतराष्ट्रका मन लगानेके लिये अनेक प्रकारकी धार्मिक कथाएँ कहीं ॥ ४ ॥

कथान्तरे तु कस्मिंश्चिद् देवर्षिर्नारदस्ततः।
कथामिमामकथयत् सर्वप्रत्यक्षदर्शिवान् ॥ ५ ॥

सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले देवर्षि नारदने किसी कथा-प्रसंगमें यह कथा कहनी आरम्भ की ॥ ५ ॥

नारद उवाच

केकयाधिपतिः श्रीमान् राजाऽऽसीदकुतोभयः।
सहस्रचित्य इत्युक्तः शतयूपपितामहः ॥ ६ ॥

नारदजी बोले—राजन् ! पूर्वकालमें सहस्रचित्य नामसे प्रसिद्ध एक तेजस्वी राजा थे, जो केकयदेशकी प्रजाका पालन करते थे। उन्हें कभी किसीसे भय नहीं होता था। यहाँ जो ये राजर्षि शतयूप विराज रहे हैं, इनके वे पितामह थे ॥ ६ ॥

स पुत्रे राज्यमासज्य ज्येष्ठे परमधार्मिके।
सहस्रचित्यो धर्मात्मा प्रविवेश वनं नृपः ॥ ७ ॥

धर्मात्मा राजा सहस्रचित्य अपने परम धर्मात्मा ज्येष्ठ पुत्रको राज्यका भार सौंपकर तपस्याके लिये इसी वनमें प्रविष्ट हुए ॥ ७ ॥

स गत्वा तपसः पारं दीप्तस्य वसुधाधिपः।
पुरंदरस्य संस्थानं प्रतिपेदे महाद्युतिः ॥ ८ ॥

वे महातेजस्वी भूपाल अपनी उद्दीप्त तपस्या पूरी करके इन्द्रलोकको प्राप्त हुए ॥ ८ ॥

दृष्टपूर्वः स बहुशो राजन् सम्पतता मया।
महेन्द्रसदने राजा तपसा दग्धकिल्बिषः ॥ ९ ॥

तपस्यासे उनके सारे पाप भस्म हो गये थे। राजन्! इन्द्रलोकमें आते-जाते समय मैंने उन राजर्षिको अनेक बार देखा है ॥ ९ ॥

तथा शैलालयो राजा भगदत्तपितामहः।
तपोबलेनैव नृपो महेन्द्रसदनं गतः ॥ १० ॥

इसी प्रकार भगदत्तके पितामह राजा शैलालय भी तपस्याके बलसे ही इन्द्रलोकको गये हैं ॥ १० ॥

तथा पृषध्रो राजाऽऽसीद् राजन् वज्रधरोपमः।
स चापि तपसा लेभे नाकपृष्ठमितो गतः ॥ ११ ॥

महाराज! राजा पृषध्र वज्रधारी इन्द्रके समान पराक्रमी थे। उन्होंने भी तपस्याके बलसे इस लोकसे जानेपर स्वर्गलोक प्राप्त किया था ॥ ११ ॥

अस्मिन्नरण्ये नृपते मान्धातुरपि चात्मजः।
पुरुकुत्सो नृपः सिद्धिं महतीं समवाप्तवान् ॥ १२ ॥
भार्या समभवद् यस्य नर्मदा सरितां वरा।
सोऽस्मिन्नरण्ये नृपतिस्तपस्तप्त्वा दिवं गतः ॥ १३ ॥

नरेश्वर! मान्धाताके पुत्र पुरुकुत्सने भी, सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा जिनकी पत्नी हुई थी, इसी वनमें तपस्या करके बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की थी। वहीं तपस्या करके वे नरेश स्वर्गलोकमें गये थे ॥ १२-१३ ॥

शशलोमा च राजाऽऽसीद् राजन् परमधार्मिकः।
सम्यगस्मिन् वने तप्त्वा ततो दिवमवाप्तवान् ॥ १४ ॥

राजन्! परम धर्मात्मा राजा शशलोमाने भी इसी वनमें उत्तम तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया था ॥ १४ ॥

द्वैपायनप्रसादाच्च त्वमपीदं तपोवनम्।
राजन्नवाप्य दुष्प्रापां गतिमग्र्यां गमिष्यसि ॥ १५ ॥

नरेश्वर! व्यासजीकी कृपासे तुम भी इसी तपोवनमें आ पहुँचे हो। अब यहाँ तपस्या करके दुर्लभ सिद्धिका आश्रय ले श्रेष्ठ गति प्राप्त कर लोगे ॥ १५ ॥

त्वं चापि राजशार्दूल तपसोऽन्ते श्रिया वृतः।
गान्धारीसहितो गन्ता गतिं तेषां महात्मनाम् ॥ १६ ॥

नृपश्रेष्ठ! तुम भी तपस्याके अन्तमें तेजसे सम्पन्न हो गान्धारीके साथ उन्हीं महात्माओंकी गति प्राप्त करोगे ॥ १६ ॥

पाण्डुः स्मरति ते नित्यं बलहन्तुः समीपगः।
त्वां सदैव महाराज श्रेयसा स च योक्ष्यति ॥ १७ ॥

महाराज! तुम्हारे छोटे भाई पाण्डु इन्द्रके पास ही रहते हैं। वे सदा तुम्हें याद करते रहते हैं। निश्चय ही वे तुम्हें कल्याणके भागी बनायेंगे ॥ १७ ॥

तव शुश्रूषया चैव गान्धार्याश्च यशस्विनी।
भर्तुः सलोकतामेषा गमिष्यति वधूस्तव ॥ १८ ॥
युधिष्ठिरस्य जननी स हि धर्मः सनातनः।

तुम्हारी और गान्धारीदेवीकी सेवा करनेसे यह तुम्हारी यशस्विनी बहू युधिष्ठिरजननी कुन्ती अपने पतिके लोकमें पहुँच जायगी। युधिष्ठिर साक्षात् सनातन धर्मस्वरूप हैं (अतः उनकी माता कुन्तीकी सद्गतिमें कोई संदेह ही नहीं है) ॥ १८½ ॥

वयमेतत् प्रपश्यामो नृपते दिव्यचक्षुषा ॥ १९ ॥
प्रवेक्ष्यति महात्मानं विदुरश्च युधिष्ठिरम्।
संजयस्तदनुध्यानादितः स्वर्गमवाप्स्यति ॥ २० ॥

नरेश्वर! यह सब हम अपनी दिव्य दृष्टिसे देख रहे हैं। विदुर महात्मा युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश करेंगे और संजय उन्हींका चिन्तन करनेके कारण यहाँसे सीधे स्वर्गको जायँगे ॥ १९-२० ॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा कौरवेन्द्रो महात्मा
सार्धं पत्न्या प्रीतिमान् सम्बभूव।
विद्वान् वाक्यं नारदस्य प्रशस्य
चक्रे पूजां चातुलां नारदाय ॥ २१ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यह सुनकर महात्मा कौरवराज धृतराष्ट्र अपनी पत्नीके साथ बहुत प्रसन्न हुए। उन विद्वान् नरेशने नारदजीके वचनोंकी प्रशंसा करके उनकी अनुपम पूजा की ॥ २१ ॥

ततः सर्वे नारदं विप्रसंघाः
सम्पूजयामासुरतीव राजन्।
राज्ञः प्रीत्या धृतराष्ट्रस्य ते वै
पुनः पुनः सम्प्रहृष्टास्तदानीम् ॥ २२ ॥

राजन्! तदनन्तर समस्त ब्राह्मण-समुदायने नारदजीका विशेष पूजन किया। राजा धृतराष्ट्रकी प्रसन्नतासे उस समय उन सब लोगोंको बारंबार हर्ष हो रहा था ॥ २२ ॥

नारदस्य तु तद् वाक्यं शशंसुर्द्विजसत्तमाः।
शतयूपस्तु राजर्षिर्नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥

उन सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने नारदजीके पूर्वोक्त वचनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तत्पश्चात् राजर्षि शतयूपने नारदजीसे इस प्रकार कहा—॥ २३ ॥

अहो भगवता श्रद्धा कुरुराजस्य वर्धिता।
सर्वस्य च जनस्यास्य मम चैव महाद्युते ॥ २४ ॥

'महातेजस्वी देवर्षे! बड़े हर्षकी बात है कि आपने कुरुराज धृतराष्ट्रकी, यहाँ आये हुए सब लोगोंकी और

मेरी भी तपस्याविषयक श्रद्धाको अधिक बढ़ा दिया है ॥ २४ ॥

अस्ति काचिद् विवक्षा तु तां मे निगदतः शृणु ।
धृतराष्ट्रं प्रति नृपं देवर्षे लोकपूजित ॥ २५ ॥

'लोकपूजित देवर्षे ! राजा धृतराष्ट्रके विषयमें मुझे कुछ कहने या पूछनेकी इच्छा हो रही है। अपनी उस इच्छाको मैं बता रहा हूँ, सुनिये ॥ २५ ॥

सर्ववृत्तान्ततत्त्वज्ञो भवान् दिव्येन चक्षुषा ।
युक्तः पश्यसि विप्रर्षे गतिर्या विविधा नृणाम् ॥ २६ ॥

'ब्रह्मर्षे ! आप सम्पूर्ण वृत्तान्तोंके तत्त्वज्ञ हैं। आप योगयुक्त होकर अपनी दिव्य दृष्टिसे मनुष्योंको जो नाना प्रकारकी गति प्राप्त होती है, उसे प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ २६ ॥

उक्तवान् नृपतीनां त्वं महेन्द्रस्य सलोकताम् ।
न त्वस्य नृपतेर्लोकाः कथितास्ते महामुने ॥ २७ ॥

'महामुने ! आपने अनेक राजाओंकी इन्द्रलोकप्राप्तिका वर्णन किया; किंतु यह नहीं बताया कि ये राजा धृतराष्ट्र किस लोकको जायँगे ॥ २७ ॥

स्थानमप्यस्य नृपतेः श्रोतुमिच्छाम्यहं विभो ।
त्वत्तः कीदृक् कदा चेति तन्ममाख्याहि तत्त्वतः ॥ २८ ॥

'प्रभो ! इन नरेशको जो स्थान प्राप्त होनेवाला है, उसे भी मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ। वह स्थान कैसा होगा और कब प्राप्त होगा—यह मुझे ठीक-ठीक बताइये' ॥ २८ ॥

इत्युक्तो नारदस्तेन वाक्यं सर्वमनोऽनुगम् ।
व्याजहार सभामध्ये दिव्यदर्शी महातपाः ॥ २९ ॥

शतयूपके इस प्रकार प्रश्न करनेपर दिव्यदर्शी महातपस्वी देवर्षि नारदने उस सभामें सबके मनको प्रिय लगनेवाली यह बात कही ॥ २९ ॥

नारद उवाच

यदृच्छया शक्रसदो गत्वा शक्रं शचीपतिम् ।
दृष्टवानस्मि राजर्षे तत्र पाण्डुं नराधिपम् ॥ ३० ॥

नारदजी बोले—राजर्षे ! एक दिन मैं दैवेच्छासे घूमता-फिरता इन्द्रलोकमें चला गया और वहाँ जाकर शचीपति इन्द्रसे मिला। वहीं मैंने राजा पाण्डुको भी देखा था ॥ ३० ॥

तत्रेयं धृतराष्ट्रस्य कथा समभवन्नृप ।
तपसो दुष्करस्यास्य यदयं तपते नृपः ॥ ३१ ॥

नरेश्वर ! वहाँ राजा धृतराष्ट्रकी ही बातचीत चल रही थी। ये जो तपस्या करते हैं, इनके इस दुष्कर तपकी ही चर्चा हो रही थी ॥ ३१ ॥

तत्राहमिदमश्रौषं शक्रस्य वदतः स्वयम् ।
वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः ॥ ३२ ॥

उस सभामें साक्षात् इन्द्रके मुखसे मैंने सुना था कि इन राजा धृतराष्ट्रकी आयुकी जो अन्तिम सीमा है, उसके पूर्ण होनेमें अब केवल तीन वर्ष ही शेष रह गये हैं ॥ ३२ ॥

ततः कुबेरभवनं गान्धारीसहितो नृपः ।
प्रयाता धृतराष्ट्रोऽयं राजराजाभिसत्कृतः ॥ ३३ ॥
कामगेन विमानेन दिव्याभरणभूषितः ।
ऋषिपुत्रो महाभागस्तपसा दग्धकिल्बिषः ॥ ३४ ॥
संचरिष्यति लोकांश्च देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
स्वच्छन्देनेति धर्मात्मा यन्मां त्वमनुपृच्छसि ॥ ३५ ॥

उसके समाप्त होनेपर ये राजा धृतराष्ट्र गान्धारीके साथ कुबेरके लोकमें जायँगे और वहाँ राजाधिराज कुबेरसे सम्मानित हो इच्छानुसार चलनेवाले विमानपर बैठकर दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो देव, गन्धर्व तथा राक्षसोंके लोकोंमें स्वेच्छानुसार विचरते रहेंगे। ऋषिपुत्र महाभाग धर्मात्मा धृतराष्ट्रके सारे पाप इनकी तपस्याके प्रभावसे भस्म हो जायँगे। राजन् ! तुम मुझसे जो बात पूछ रहे थे, उसका उत्तर यही है ॥ ३३–३५ ॥

देवगुह्यमिदं प्रीत्या मया वः कथितं महत् ।
भवन्तो हि श्रुतधनास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ ३६ ॥

यह देवताओंका अत्यन्त गुप्त विचार है। परंतु आप लोगोंपर प्रेम होनेके कारण मैंने इसे आपके सामने प्रकट कर दिया है। आपलोग वेदके धनी हैं और तपस्यासे निष्पाप हो चुके हैं (अतः आपके सामने इस रहस्यको प्रकट करनेमें कोई हर्ज नहीं है) ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति ते तस्य तच्छ्रुत्वा देवर्षेर्मधुरं वचः ।
सर्वे सुमनसः प्रीता बभूवुः स च पार्थिवः ॥ ३७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! देवर्षिके ये मधुर वचन सुनकर वे सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और राजा धृतराष्ट्रको भी इससे बड़ा हर्ष हुआ ॥ ३७ ॥

एवं कथाभिरन्वास्य धृतराष्ट्रं मनीषिणः ।
विप्रजग्मुर्यथाकामं ते सिद्धगतिमास्थिताः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वे मनीषी महर्षिगण अपनी कथाओंसे धृतराष्ट्रको संतुष्ट करके सिद्ध गतिका आश्रय ले इच्छानुसार विभिन्न स्थानोंको चले गये ॥ ३८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि नारदवाक्ये विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें नारदजीका वाक्यविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २० ॥



विदुरका सूक्ष्मशरीरसे युधिष्ठिरमें प्रवेश

एकविंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्र आदिके लिये पाण्डवों तथा पुरवासियोंकी चिन्ता

वैशम्पायन उवाच

वनं गते कौरवेन्द्रे दुःखशोकसमन्विताः ।
बभूवुः पाण्डवा राजन् मातृशोकेन चान्विताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कौरवराज धृतराष्ट्रके वनमें चले जानेपर पाण्डव दुःख और शोकसे संतप्त रहने लगे । माताके विछोहका शोक उनके हृदयको दग्ध किये देता था ॥ १ ॥

तथा पौरजनः सर्वः शोचन्नास्ते जनाधिपम् ।
कुर्वाणाश्च कथास्तत्र ब्राह्मणा नृपतिं प्रति ॥ २ ॥

इसी प्रकार समस्त पुरवासी मनुष्य भी राजा धृतराष्ट्रके लिये निरन्तर शोकमग्न रहते थे तथा ब्राह्मणलोग सदा उन वृद्ध नरेशके विषयमें वहाँ इस प्रकार चर्चा किया करते थे ॥ २ ॥

कथं नु राजा वृद्धः स वने वसति निर्जने ।
गान्धारी च महाभागा सा च कुन्ती पृथा कथम् ॥ ३ ॥

'हाय ! हमारे बूढ़े महाराज उस निर्जन वनमें कैसे रहते होंगे ? महाभागा गान्धारी तथा कुन्तिभोजकुमारी पृथा देवी भी किस तरह वहाँ दिन बिताती होंगी ? ॥ ३ ॥

सुखार्हः स हि राजर्षिरसुखी तद् वनं महत् ।
किमवस्थः समासाद्य प्रज्ञाचक्षुर्हतात्मजः ॥ ४ ॥

'जिनके सारे पुत्र मारे गये, वे प्रज्ञाचक्षु राजर्षि धृतराष्ट्र सुख भोगनेके योग्य होकर भी उस विशाल वनमें जाकर किस अवस्थामें दुःखके दिन बिताते होंगे ? ॥ ४ ॥

सुदुष्करं कृतवती कुन्ती पुत्रानपश्यती ।
राज्यश्रियं परित्यज्य वनं सा समरोचयत् ॥ ५ ॥

'कुन्तीदेवीने तो बड़ा ही दुष्कर कर्म किया । अपने पुत्रोंके दर्शनसे वञ्चित हो राज्यलक्ष्मीको ठुकराकर उन्होंने वनमें रहना पसंद किया है ॥ ५ ॥

विदुरः किमवस्थश्च भ्रातुः शुश्रूषुरात्मवान् ।
स च गावल्गणिर्धीमान् भर्तृपिण्डानुपालकः ॥ ६ ॥

'अपने भाईकी सेवामें लगे रहनेवाले मनस्वी विदुरजी किस अवस्थामें होंगे ? अपने स्वामीके शरीरकी रक्षा करनेवाले बुद्धिमान् संजय भी कैसे होंगे ?' ॥ ६ ॥

आकुमारं च पौरास्ते चिन्ताशोकसमाहताः ।
तत्र तत्र कथाश्चक्रुः समासाद्य परस्परम् ॥ ७ ॥

बच्चेसे लेकर बूढ़ेतक समस्त पुरवासी चिन्ता और शोकसे पीड़ित हो जहाँ-तहाँ एक दूसरेसे मिलकर उपर्युक्त बातें ही किया करते थे ॥ ७ ॥

पाण्डवाश्चैव ते सर्वे भृशं शोकपरायणाः ।
शोचन्तो मातरं वृद्धामूषुर्नातिचिरं पुरे ॥ ८ ॥

समस्त पाण्डव तो निरन्तर अत्यन्त शोकमें ही डूबे रहते थे । वे अपनी बूढ़ी माताके लिये इतने चिन्तित हो गये कि अधिक कालतक नगरमें नहीं रह सके ॥ ८ ॥

तथैव वृद्धं पितरं हतपुत्रं जनेश्वरम् ।
गान्धारीं च महाभागां विदुरं च महामतिम् ॥ ९ ॥
नैषां बभूव सम्प्रीतिस्तान् विचिन्तयतां तदा ।
न राज्ये न च नारीषु न वेदाध्ययनेषु च ॥ १० ॥

जिनके पुत्र मारे गये थे, उन बूढ़े ताऊ महाराज धृतराष्ट्रकी, महाभागा गान्धारीकी और परम बुद्धिमान् विदुरकी अधिक चिन्ता करनेके कारण उन्हें कभी चैन नहीं पड़ती थी । न तो राजकाजमें उनका मन लगता था न स्त्रियोंमें । वेदाध्ययनमें भी उनकी रुचि नहीं होती थी ॥ ९-१० ॥

परं निर्वेदमगमंश्चिन्तयन्तो नराधिपम् ।
तं च ज्ञातिवधं घोरं संस्मरन्तः पुनः पुनः ॥ ११ ॥

राजा धृतराष्ट्रको याद करके वे अत्यन्त खिन्न एवं विरक्त हो उठते थे । भाई-बन्धुओंके उस भयंकर वधका उन्हें बारंबार स्मरण हो आता था ॥ ११ ॥

अभिमन्योश्च बालस्य विनाशं रणमूर्धनि ।
कर्णस्य च महाबाहो संग्रामेष्वपलायिनः ॥ १२ ॥

महाबाहु जनमेजय ! युद्धके मुहानेपर जो बालक अभिमन्युका अन्यायपूर्वक विनाश किया गया, संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले कर्णका (परिचय न होनेसे)जो वध किया गया—इन घटनाओंको याद करके वे बेचैन हो जाते थे ॥ १२ ॥

तथैव द्रौपदेयानामन्येषां सुहृदामपि ।
वधं संस्मृत्य ते वीरा नातिप्रमनसोऽभवन् ॥ १३ ॥

इसी प्रकार द्रौपदीके पुत्रों तथा अन्यान्य सुहृदोंके वधकी बात याद करके उनके मनकी सारी प्रसन्नता भाग जाती थी ॥ १३ ॥

हतप्रवीरां पृथिवीं हतरत्नां च भारत ।
सदैव चिन्तयन्तस्ते न शर्म चोपलेभिरे ॥ १४ ॥

भरतनन्दन ! जिसके प्रमुख वीर मारे गये तथा रत्नोंका अपहरण हो गया, उस पृथ्वीकी दुर्दशाका सदैव चिन्तन करते हुए पाण्डव कभी थोड़ी देरके लिये भी शान्ति नहीं पाते थे ॥ १४ ॥

द्रौपदी हतपुत्रा च सुभद्रा चैव भाविनी।
नातिप्रीतियुते देव्यौ तदाऽऽस्तामप्रहृष्टवत्॥ १५॥

जिनके बेटे मारे गये थे, वे द्रुपदकुमारी कृष्णा और भाविनी सुभद्रा दोनों देवियाँ निरन्तर अप्रसन्न और हर्ष-शून्य-सी होकर चुपचाप बैठी रहती थीं॥ १५॥

वैराट्यास्तनयं दृष्ट्वा पितरं ते परिक्षितम्।
धारयन्ति स्म ते प्राणांस्तव पूर्वपितामहाः॥ १६॥

जनमेजय! उन दिनों तुम्हारे पूर्व पितामह पाण्डव उत्तराके पुत्र और तुम्हारे पिता परीक्षित्को देखकर ही अपने प्राणोंको धारण करते थे॥ १६॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि एकविंशतितमोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

माताके लिये पाण्डवोंकी चिन्ता, युधिष्ठिरकी वनमें जानेकी इच्छा, सहदेव और द्रौपदीका साथ जानेका उत्साह तथा रनिवास और सेनासहित युधिष्ठिरका वनको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा मातृनन्दनाः।
स्मरन्तो मातरं वीरा बभूवुर्भृशदुःखिताः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! अपनी माताको आनन्द प्रदान करनेवाले वे पुरुषसिंह वीर पाण्डव इस प्रकार माताकी याद करते हुए अत्यन्त दुखी हो गये थे॥ १॥

ये राजकार्येषु पुरा व्यासक्ता नित्यशोऽभवन्।
ते राजकार्याणि तदा नाकार्षुः सर्वतः पुरे॥ २॥
प्रविष्टा इव शोकेन नाभ्यनन्दन्त किंचन।
सम्भाष्यमाणा अपि ते न किंचित् प्रत्यपूजयन्॥ ३॥

जो पहले प्रतिदिन राजकीय कार्योंमें निरन्तर आसक्त रहते थे, वे ही उन दिनों नगरमें कहीं कोई राजकाज नहीं करते थे। मानो उनके हृदयमें शोकने घर बना लिया था। वे किसी भी वस्तुको पाकर प्रसन्न नहीं होते थे। किसीके बातचीत करनेपर भी वे उस बातकी ओर न तो ध्यान देते और न उसकी सराहना करते थे॥ २-३॥

ते स्म वीरा दुराधर्षा गाम्भीर्ये सागरोपमाः।
शोकोपहतविज्ञाना नष्टसंज्ञा इवाभवन्॥ ४॥

समुद्रके समान गाम्भीर्यशाली दुर्धर्ष वीर पाण्डव उन दिनों शोकसे सुध-बुध खो जानेके कारण अचेत-से हो गये थे॥ ४॥

अचिन्तयंश्च जननीं ततस्ते पाण्डुनन्दनाः।
कथं नु वृद्धमिथुनं वहत्यतिकृशा पृथा॥ ५॥

तदनन्तर एक दिन पाण्डव अपनी माताके लिये इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'हाय! मेरी माता कुन्ती अत्यन्त दुबली हो गयी होंगी। वे उन बूढ़े पति-पत्नी गान्धारी और धृतराष्ट्रकी सेवा कैसे निभाती होंगी?॥ ५॥

कथं च स महीपालो हतपुत्रो निराश्रयः।
पत्न्या सह वसत्येको वने श्वापदसेविते॥ ६॥

'शिकारी जन्तुओंसे भरे हुए उस जंगलमें आश्रयहीन एवं पुत्ररहित राजा धृतराष्ट्र अपनी पत्नीके साथ अकेले कैसे रहते होंगे?॥ ६॥

सा च देवी महाभागा गान्धारी हतबान्धवा।
पतिमन्धं कथं वृद्धमन्वेति विजने वने॥ ७॥

'जिनके बन्धु-बान्धव मारे गये हैं, वे महाभागा गान्धारी देवी, उस निर्जन वनमें अपने अन्धे और बूढ़े पतिका अनुसरण कैसे करती होंगी?॥ ७॥

एवं तेषां कथयतामौत्सुक्यमभवत् तदा।
गमने चाभवद् बुद्धिर्धृतराष्ट्रदिदृक्षया॥ ८॥

इस प्रकार बात करते-करते उनके मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो गयी और उन्होंने धृतराष्ट्रके दर्शनकी इच्छासे वनमें जानेका विचार कर लिया॥ ८॥

सहदेवस्तु राजानं प्रणिपत्येदमब्रवीत्।
अहो मे भवतो दृष्टं हृदयं गमनं प्रति॥ ९॥

उस समय सहदेवने राजा युधिष्ठिरको प्रणाम करके कहा—'भैया, मुझे ऐसा दिखायी देता है कि आपका हृदय तपोवनमें जानेके लिये उत्सुक है—यह बड़े हर्षकी बात है॥ ९॥

न हि त्वां गौरवेणाहमशकं वक्तुमञ्जसा।
गमनं प्रति राजेन्द्र तदिदं समुपस्थितम्॥ १०॥

'राजेन्द्र! मैं आपके गौरवका ख्याल करके संकोचवश वहाँ जानेकी बात स्पष्टरूपसे कह नहीं पाता था। आज सौभाग्यवश वह अवसर अपने आप उपस्थित हो गया॥ १०॥

दिष्ट्या द्रक्ष्यामि तां कुन्तीं
वर्तयन्तीं तपस्विनीम्।

जटिलां तापसीं वृद्धां
कुशकाशपरिक्षताम् ॥ ११ ॥

'मेरा अहोभाग्य कि मैं तपस्यामें लगी हुई माता कुन्तीका दर्शन करूँगा। उनके सिरके बाल जटारूपमें परिणत हो गये होंगे! वे तपस्विनी बूढ़ी माता कुश और काशके आसनोंपर शयन करनेके कारण क्षतविक्षत हो रही होंगी ॥ ११ ॥

प्रासादहर्म्यसंवृद्धामत्यन्तसुखभागिनीम् ।
कदा तु जननीं श्रान्तां द्रक्ष्यामि भृशदुःखिताम् ॥ १२ ॥

'जो महलों और अट्टालिकाओंमें पलकर बड़ी हुई हैं, अत्यन्त सुखकी भागिनी रही हैं, वे ही माता कुन्ती अब थककर अत्यन्त दुःख उठाती होंगी ! मुझे कब उनके दर्शन होंगे ? ॥ १२ ॥

अनित्याः खलु मर्त्यानां गतयो भरतर्षभ ।
कुन्ती राजसुता यत्र वसत्यसुखिता वने ॥ १३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! मनुष्योंकी गतियाँ निश्चय ही अनित्य होती हैं, जिनमें पड़कर राजकुमारी कुन्ती सुखोंसे वञ्चित हो वनमें निवास करती हैं' ॥ १३ ॥

सहदेववचः श्रुत्वा द्रौपदी योषितां वरा ।
उवाच देवी राजानमभिपूज्याभिनन्द्य च ॥ १४ ॥

सहदेवकी बात सुनकर नारियोंमें श्रेष्ठ महारानी द्रौपदी राजाका सत्कार करके उन्हें प्रसन्न करती हुई बोली—॥१४॥

कदा द्रक्ष्यामि तां देवीं यदि जीवति सा पृथा ।
जीवन्त्या ह्यद्य मे प्रीतिर्भविष्यति जनाधिप ॥ १५ ॥

'नरेश्वर ! मैं अपनी सास कुन्तीदेवीका दर्शन कब करूँगी ? क्या वे अबतक जीवित होंगी ? यदि वे जीवित हों तो आज उनका दर्शन पाकर मुझे असीम प्रसन्नता होगी॥१५॥

एषा तेऽस्तु मतिर्नित्यं धर्मे ते रमतां मनः ।
योऽद्य त्वमस्मान् राजेन्द्र श्रेयसा योजयिष्यसि ॥१६॥

'राजेन्द्र ! आपकी बुद्धि सदा ऐसी ही बनी रहे। आपका मन धर्ममें ही रमता रहे; क्योंकि आज आप हमलोगोंको माता कुन्तीका दर्शन कराकर परम कल्याणकी भागिनी बनायेंगे ॥ १६ ॥

अग्रपादस्थितं चेमं विद्धि राजन् वधूजनम् ।
काङ्क्षन्तं दर्शनं कुन्त्या गान्धार्याः श्वशुरस्य च ॥ १७ ॥

'राजन् ! आपको विदित हो कि अन्तःपुरकी सभी बहुएँ वनमें जानेके लिये पैर आगे बढ़ाये खड़ी हैं। वे सब-की-सब कुन्ती, गान्धारी तथा ससुरजीके दर्शन करना चाहती हैं' ॥ १७ ॥

इत्युक्तः स नृपो देव्या द्रौपद्या भरतर्षभ ।
सेनाध्यक्षान् समानाय्य सर्वानिदमुवाच ह ॥ १८ ॥

'भरतभूषण ! द्रौपदीदेवीके ऐसा कहनेपर राजा युधिष्ठिरने समस्त सेनापतियोंको बुलाकर कहा—॥ १८ ॥

निर्यातयत मे सेनां प्रभूतरथकुञ्जराम् ।
द्रक्ष्यामि वनसंस्थं च धृतराष्ट्रं महीपतिम् ॥ १९ ॥

'तुमलोग बहुत-से रथ और हाथी-घोड़ोंसे सुसज्जित सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दो। मैं वनवासी महाराज धृतराष्ट्रके दर्शन करनेके लिये चलूँगा' ॥ १९ ॥

स्त्र्यध्यक्षांश्चाब्रवीद् राजा यानानि विविधानि मे ।
सज्जीक्रियन्तां सर्वाणि शिबिकाश्च सहस्रशः ॥ २० ॥

इसके बाद राजाने रनिवासके अध्यक्षोंको आज्ञा दी—'तुम सब लोग हमारे लिये भाँति-भाँतिके वाहन और पालकियोंको हजारोंकी संख्यामें तैयार करो ॥ २० ॥

शकटापणवेशाश्च कोशः शिल्पिन एव च ।
निर्यान्तु कोषपालाश्च कुरुक्षेत्राश्रमं प्रति ॥ २१ ॥

'आवश्यक सामानोंसे लदे हुए छकड़े, बाजार, दुकानें, खजाना, कारीगर और कोषाध्यक्ष—ये सब कुरुक्षेत्रके आश्रमकी ओर रवाना हो जायँ ॥ २१ ॥

यश्च पौरजनः कश्चिद् द्रष्टुमिच्छति पार्थिवम् ।
अनावृतः सुविहितः स च यातु सुरक्षितः ॥ २२ ॥

'नगरवासियोंमेंसे जो कोई भी महाराजका दर्शन करना चाहता हो, उसे बेरोक-टोक सुविधापूर्वक सुरक्षितरूपसे चलने दिया जाय ॥ २२ ॥

सूदाः पौरोगवाश्चैव सर्वं चैव महानसम् ।
विविधं भक्ष्यभोज्यं च शकटैरुह्यतां मम ॥ २३ ॥

'पाकशालाके अध्यक्ष और रसोइये भोजन बनानेके सब सामानों तथा भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंको मेरे छकड़ोंपर लादकर ले चलें ॥ २३ ॥

प्रयाणं घुष्यतां चैव श्वोभूत इति मा चिरम् ।
क्रियतां पथि चाप्यद्य वेश्मानि विविधानि च ॥ २४ ॥

'नगरमें यह घोषणा करा दी जाय कि 'कल सबेरे यात्रा की जायगी;इसलिये चलनेवालोंको विलम्ब नहीं करना चाहिये।' मार्गमें हमलोगोंके ठहरनेके लिये आज ही कई तरहके डेरे तैयार कर दिये जायँ ॥ २४ ॥

एवमाज्ञाप्य राजा स भ्रातृभिः सहपाण्डवः ।
श्वोभूते निर्ययौ राजन् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥ २५ ॥

राजन् ! इस प्रकार आज्ञा देकर सबेरा होते ही अपने भाई पाण्डवोंसहित राजा युधिष्ठिरने स्त्री और बूढ़ोंको आगे करके नगरसे प्रस्थान किया ॥ २५ ॥

स बहिर्दिवसानेव जनौघं परिपालयन् ।

न्यवसन्नृपतिः पञ्च ततोऽगच्छद् वनं प्रति ॥ २६ ॥

बाहर जाकर पुरवासी मनुष्योंकी प्रतीक्षा करते हुए वे पाँच दिनोंतक एक ही स्थानपर टिके रहे। फिर सबको साथ लेकर वनमें गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरयात्रायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिरकी वनको यात्राविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सेनासहित पाण्डवोंकी यात्रा और उनका कुरुक्षेत्रमें पहुँचना

वैशम्पायन उवाच

आज्ञापयामास ततः सेनां भरतसत्तमः।
अर्जुनप्रमुखैर्गुप्तां लोकपालोपमैर्नरैः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर भरतकुलभूषण राजा युधिष्ठिरने लोकपालोंके समान पराक्रमी अर्जुन आदि वीरोंद्वारा सुरक्षित अपनी सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दी ॥ १ ॥

योगो योग इति प्रीत्या ततः शब्दो महानभूत्।
क्रोशतां सादिनां तत्र युज्यतां युज्यतामिति ॥ २ ॥

'चलनेको तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ' इस प्रकार उनका प्रेमपूर्ण आदेश प्राप्त होते ही घुड़सवार सब ओर पुकार-पुकारकर कहने लगे, 'सवारियोंको जोतो, जोतो!' इस तरहकी घोषणा करनेसे वहाँ महान् कोलाहल मच गया ॥ २ ॥

केचिद् यानैर्नरा जग्मुः केचिदश्वैर्महाजवैः।
काञ्चनैश्च रथैः केचिज्ज्वलितज्वलनोपमैः ॥ ३ ॥

कुछ लोग पालकियोंपर सवार होकर चले और कुछ लोग महान् वेगशाली घोड़ोंद्वारा यात्रा करने लगे। कितने ही मनुष्य प्रज्वलित अग्निके समान चमकीले सुवर्णमय रथोंपर आरूढ़ होकर वहाँसे प्रस्थित हुए ॥ ३ ॥

गजेन्द्रैश्च तथैवान्ये केचिदुष्ट्रैर्नराधिप।
पदातिनस्तथैवान्ये नखरप्रासयोधिनः ॥ ४ ॥

नरेश्वर ! कुछ लोग गजराजोंपर सवार थे और कुछ ऊँटोंपर। कितने ही बघनखों और भालोंसे युद्ध करनेवाले वीर पैदल ही चल रहे थे ॥ ४ ॥

पौरजानपदाश्चैव यानैर्बहुविधैस्तथा।
अन्वयुः कुरुराजानं धृतराष्ट्रं दिदृक्षवः ॥ ५ ॥

नगर और जनपदके लोग भी राजा धृतराष्ट्रको देखनेकी इच्छासे नाना प्रकारके वाहनोंद्वारा कुरुराज युधिष्ठिरका अनुसरण करते थे ॥ ५ ॥

स चापि राजवचनादाचार्यो गौतमः कृपः।
सेनामादाय सेनानीः प्रययावाश्रमं प्रति ॥ ६ ॥

राजा युधिष्ठिरके आदेशसे सेनापति कृपाचार्य भी सेनाको साथ लेकर आश्रमकी ओर चल दिये ॥ ६ ॥

ततो द्विजैः परिवृतः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
संस्तूयमानो बहुभिः सूतमागधबन्दिभिः ॥ ७ ॥
पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि।
रथानीकेन महता निर्जगाम कुरूद्वहः ॥ ८ ॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंसे घिरे हुए कुरुराज युधिष्ठिर बहुसंख्यक सूत, मागध और बन्दीजनोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए मस्तकपर श्वेत छत्र धारण किये विशाल रथ-सेनाके साथ वहाँसे चले ॥ ७-८ ॥

गजैश्चाचलसंकाशैर्भीमकर्मा वृकोदरः।
सज्जयन्त्रायुधोपेतैः प्रययौ पवनात्मजः ॥ ९ ॥

भयंकर पराक्रम करनेवाले पवनपुत्र भीमसेन पर्वताकार गजराजोंकी सेनाके साथ जा रहे थे। उन गजराजोंकी पीठपर अनेकानेक यन्त्र और आयुध सुसज्जित किये गये थे ॥ ९ ॥

माद्रीपुत्रावपि तथा हयारोहौ सुसंवृतौ।
जग्मतुः शीघ्रगमनौ संनद्धकवचध्वजौ ॥ १० ॥

माद्रीकुमार नकुल और सहदेव भी घोड़ोंपर सवार थे और घुड़सवारोंसे ही घिरे हुए शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे। उन्होंने अपने शरीरमें कवच और घोड़ोंकी पीठपर ध्वज बाँध रक्खे थे ॥ १० ॥

अर्जुनश्च महातेजा रथेनादित्यवर्चसा।
वशी श्वेतैर्हयैर्युक्तैर्दिव्येनान्वगमन्नृपम् ॥ ११ ॥

महातेजस्वी जितेन्द्रिय अर्जुन श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए सूर्यके समान तेजस्वी दिव्य रथपर आरूढ़ हो राजा युधिष्ठिरका अनुसरण करते थे ॥ ११ ॥

द्रौपदीप्रमुखाश्चापि स्त्रीसंघाः शिबिकायुताः।
स्त्र्यध्यक्षगुप्ताः प्रययुर्विसृजन्तोऽमितं वसु ॥ १२ ॥

द्रौपदी आदि स्त्रियाँ भी शिबिकाओंमें बैठकर दीन-दुखियोंको असंख्य धन बाँटती हुई जा रही थीं। रनिवासके अध्यक्ष सब ओरसे उनकी रक्षा कर रहे थे ॥ १२ ॥

समृद्धरथहस्त्यश्वं वेणुवीणानुनादितम्।
शुशुभे पाण्डवं सैन्यं तत् तदा भरतर्षभ ॥ १३ ॥

पाण्डवोंकी सेनामें रथ, हाथी और घोड़ोंकी अधिकता

थी। उसमें कहीं वंशी बजती थी और कहीं वीणा। भरतश्रेष्ठ! इन वाद्योंकी ध्वनिसे निनादित होनेके कारण वह पाण्डव-सेना उस समय बड़ी शोभा पा रही थी ॥१३॥

नदीतीरेषु रम्येषु सरःसु च विशाम्पते।
वासान् कृत्वा क्रमेणाथ जग्मुस्ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १४ ॥

प्रजानाथ! वे कुरुश्रेष्ठ वीर नदियोंके रमणीय तटों तथा अनेक सरोवरोंपर पड़ाव डालते हुए क्रमशः आगे बढ़ते गये ॥ १४ ॥

युयुत्सुश्च महातेजा धौम्यश्चैव पुरोहितः।
युधिष्ठिरस्य वचनात् पुरगुप्तिं प्रचक्रतुः ॥ १५ ॥

महातेजस्वी युयुत्सु और पुरोहित धौम्य मुनि युधिष्ठिरके आदेशसे हस्तिनापुरमें ही रहकर राजधानीकी रक्षा करते थे ॥ १५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा कुरुक्षेत्रमवातरत्।
क्रमेणोत्तीर्य यमुनां नदीं परमपावनीम् ॥ १६ ॥

उधर राजा युधिष्ठिर क्रमशः आगे बढ़ते हुए परम पावन यमुना नदीको पार करके कुरुक्षेत्रमें जा पहुँचे ॥१६॥

स ददर्शाश्रमं दूराद् राजर्षेस्तस्य धीमतः।
शतयूपस्य कौरव्य धृतराष्ट्रस्य चैव ह ॥ १७ ॥

कुरुनन्दन! वहाँ पहुँचकर उन्होंने दूरसे ही बुद्धिमान् राजर्षि शतयूप तथा धृतराष्ट्रके आश्रमको देखा ॥ १७ ॥

ततः प्रमुदितः सर्वो जनस्तद् वनमञ्जसा।
विवेश सुमहानादैरापूर्य भरतर्षभ ॥ १८ ॥

भरतभूषण! इससे उन सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उस वनमें महान् कोलाहल फैलाते हुए अनायास ही प्रवेश किया ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि धृतराष्ट्राश्रमगमने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिर आदिका धृतराष्ट्रके आश्रमपर गमनविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

पाण्डवों तथा पुरवासियोंका कुन्ती, गान्धारी और धृतराष्ट्रके दर्शन करना

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पाण्डवा दूरादवतीर्य पदातयः।
अभिजग्मुर्नरपतेराश्रमं विनयानताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर वे समस्त पाण्डव दूरसे ही अपनी सवारियोंसे उतर पड़े और पैदल चलकर बड़ी विनयके साथ राजाके आश्रमपर आये ॥ १ ॥

स च योधजनः सर्वो ये च राष्ट्रनिवासिनः।
स्त्रियश्च कुरुमुख्यानां पद्भिरेवान्वयुस्तदा ॥ २ ॥

साथ आये हुए समस्त सैनिक, राज्यके निवासी मनुष्य तथा कुरुवंशके प्रधान पुरुषोंकी स्त्रियाँ भी पैदल ही आश्रमतक गयीं ॥ २ ॥

आश्रमं ते ततो जग्मुर्धृतराष्ट्रस्य पाण्डवाः।
शून्यं मृगगणाकीर्णं कदलीवनशोभितम् ॥ ३ ॥
ततस्तत्र समाजग्मुस्तापसा नियतव्रताः।
पाण्डवानागतान् द्रष्टुं कौतूहलसमन्विताः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्रका वह पवित्र आश्रम मनुष्योंसे सूना था। उसमें सब ओर मृगोंके झुंड विचर रहे थे और केलेका सुन्दर उद्यान उस आश्रमकी शोभा बढ़ाता था। पाण्डव लोग ज्यों ही उस आश्रममें पहुँचे त्यों ही वहाँ नियमपूर्वक व्रतोंका पालन करनेवाले बहुत-से तपस्वी कौतूहलवश वहाँ पधारे हुए पाण्डवोंको देखनेके लिये आ गये ॥ ३-४ ॥

तानपृच्छत् ततो राजा क्वासौ कौरववंशभृत्।
पिता ज्येष्ठो गतोऽस्माकमिति बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥

उस समय राजा युधिष्ठिरने उन सबको प्रणाम करके नेत्रोंमें आँसू भरकर उन सबसे पूछा—'मुनिवरो! कौरववंशका पालन करनेवाले हमारे ज्येष्ठ पिता इस समय कहाँ गये हैं?' ॥

ते तमूचुस्ततो वाक्यं यमुनामवगाहितुम्।
पुष्पाणामुदकुम्भस्य चार्थे गत इति प्रभो ॥ ६ ॥

उन्होंने उत्तर दिया—'प्रभो! वे यमुनामें स्नान करने, फूल लाने और पानीका घड़ा भरनेके लिये गये हुए हैं' ॥ ६ ॥

तैराख्यातेन मार्गेण ततस्ते जग्मुरञ्जसा।
ददृशुश्चाविदूरे तान् सर्वानथ पदातयः ॥ ७ ॥

यह सुनकर उन्हींके बताये हुए मार्गसे वे सब-के-सब पैदल ही यमुनातटकी ओर चल दिये। कुछ ही दूर जानेपर उन्होंने उन सब लोगोंको वहाँसे आते देखा ॥ ७ ॥

ततस्ते सत्वरा जग्मुः पितुर्दर्शनकाङ्क्षिणः।
सहदेवस्तु वेगेन प्राधावद् यत्र सा पृथा ॥ ८ ॥
सुस्वरं रुरुदे धीमान् मातुः पादावुपस्पृशन्।

फिर तो समस्त पाण्डव अपने ताऊके दर्शनकी इच्छासे

बड़ी उतावलीके साथ आगे बढ़े। बुद्धिमान् सहदेव तो बड़े वेगसे दौड़े और जहाँ कुन्ती थी, वहाँ पहुँचकर माताके दोनों चरण पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ८½ ॥

सा च बाष्पाकुलमुखी ददर्श दयितं सुतम् ॥ ९ ॥
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य समुन्नाम्य च पुत्रकम्।
गान्धार्याः कथयामास सहदेवमुपस्थितम् ॥ १० ॥
अनन्तरं च राजानं भीमसेनमथार्जुनम्।
नकुलं च पृथा दृष्ट्वा त्वरमाणोपचक्रमे ॥ ११ ॥

कुन्तीने भी जब अपने प्यारे पुत्र सहदेवको देखा तो उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। उन्होंने दोनों हाथोंसे पुत्रको उठाकर छातीसे लगा लिया और गान्धारीसे कहा—'दीदी! सहदेव आपकी सेवामें उपस्थित है'। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुलको देखकर कुन्तीदेवी बड़ी उतावलीके साथ उनकी ओर चलीं ॥ ९—११ ॥

सा ह्यग्रे गच्छति तयोर्दम्पत्योर्हतपुत्रयोः।
कर्षन्ती तौ ततस्ते तां दृष्ट्वा संन्यपतन् भुवि ॥ १२ ॥

वे आगे-आगे चलती थीं और उन पुत्रहीन दम्पतिको अपने साथ खींचे लाती थीं। उन्हें देखते ही पाण्डव उनके चरणोंमें पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥

राजा तान् स्वरयोगेन स्पर्शेन च महामनाः।
प्रत्यभिज्ञाय मेधावी समाश्वासयत प्रभुः ॥ १३ ॥

महामना बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रने बोलनेके स्वरसे और स्पर्शसे पाण्डवोंको पहचानकर उन सबको आश्वासन दिया ॥ १३ ॥

ततस्ते बाष्पमुत्सृज्य गान्धारीसहितं नृपम्।
उपतस्थुर्महात्मानो मातरं च यथाविधि ॥ १४ ॥

तत्पश्चात् अपने नेत्रोंके आँसू पोंछकर महात्मा पाण्डवोंने गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र तथा माता कुन्तीको विधिपूर्वक प्रणाम किया ॥ १४ ॥

सर्वेषां तोयकलशाञ्जगृहुस्ते स्वयं तदा।
पाण्डवा लब्धसंज्ञास्ते मात्रा चाश्वासिताः पुनः ॥ १५ ॥

इसके बाद मातासे बार-बार सान्त्वना पाकर जब पाण्डव कुछ स्वस्थ एवं सचेत हुए तब उन्होंने उन सबके हाथसे जलके भरे हुए कलश स्वयं ले लिये ॥ १५ ॥

तथा नार्यो नृसिंहानां सोऽवरोधजनस्तदा।
पौरजानपदाश्चैव ददृशुस्तं जनाधिपम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर उन पुरुषसिंहोंकी स्त्रियों तथा अन्तःपुरकी दूसरी स्त्रियोंने और नगर एवं जनपदके लोगोंने भी क्रमशः राजा धृतराष्ट्रका दर्शन किया ॥ १६ ॥

निवेदयामास तदा जनं तन्नामगोत्रतः।
युधिष्ठिरो नरपतिः स चैनं प्रत्यपूजयत् ॥ १७ ॥

उस समय स्वयं राजा युधिष्ठिरने एक-एक व्यक्तिका नाम और गोत्र बताकर परिचय दिया और परिचय पाकर धृतराष्ट्रने उन सबका वाणीद्वारा सत्कार किया ॥ १७ ॥

स तैः परिवृतो मेने हर्षबाष्पाविलेक्षणः।
राजाऽऽत्मानं गृहगतं पुरेव गजसाह्वये ॥ १८ ॥

उन सबसे घिरे हुए राजा धृतराष्ट्र अपने नेत्रोंसे हर्षके आँसू बहाने लगे। उस समय उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो मैं पहलेकी ही भाँति हस्तिनापुरके राजमहलमें बैठा हूँ ॥ १८ ॥

अभिवादितो वधूभिश्च कृष्णाद्याभिः स पार्थिवः।
गान्धार्या सहितो धीमान् कुन्त्या च प्रत्यनन्दत ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् द्रौपदी आदि बहुओंने गान्धारी और कुन्तीसहित बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और उन्होंने भी उन सबको आशीर्वाद देकर प्रसन्न किया ॥ १९ ॥

ततश्चाश्रममागच्छत् सिद्धचारणसेवितम्।
दिदृक्षुभिः समाकीर्णं नभस्तारागणैरिव ॥ २० ॥

इसके बाद वे सबके साथ सिद्ध और चारणोंसे सेवित अपने आश्रमपर आये। उस समय उनका आश्रम तारोंसे व्याप्त हुए आकाशकी भाँति दर्शकोंसे भरा था ॥ २० ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि युधिष्ठिरादिधृतराष्ट्रसमागमे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें युधिष्ठिर आदिका धृतराष्ट्रसे मिलनविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

संजयका ऋषियोंसे पाण्डवों, उनकी पत्नियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

स तैः सह नरव्याघ्रैर्भ्रातृभिर्भरतर्षभ।
राजा रुचिरपद्माक्षैरासांचक्रे तदाश्रमे ॥ १ ॥
तापसैश्च महाभागैर्नानादेशसमागतैः।
द्रष्टुं कुरुपतेः पुत्रान् पाण्डवान् पृथुवक्षसः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब राजा

धृतराष्ट्र सुन्दर कमलके-से नेत्रोंवाले पुरुषसिंह युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंके साथ आश्रममें विराजमान हुए, उस समय वहाँ अनेक देशोंसे आये हुए महाभाग तपस्वीगण कुरुराज पाण्डुके पुत्र—विशाल वक्षःस्थलवाले पाण्डवोंको देखनेके लिये पहलेसे उपस्थित थे ॥ १-२ ॥

तेऽब्रुवञ्ज्ञातुमिच्छामः कतमोऽत्र युधिष्ठिरः ।
भीमार्जुनौ यमौ चैव द्रौपदी च यशस्विनी ॥ ३ ॥

उन्होंने पूछा—'हमलोग यह जानना चाहते हैं कि यहाँ आये हुए लोगोंमें महाराज युधिष्ठिर कौन हैं ? भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदीदेवी कौन हैं ?' ॥ ३ ॥

तानाचख्यौ तदा सूतः सर्वांस्तानभिनामतः ।
संजयो द्रौपदीं चैव सर्वाश्चान्याः कुरुस्त्रियः ॥ ४ ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर सूत संजयने उन सबके नाम बताकर पाण्डवों, द्रौपदी तथा कुरुकुलकी अन्य स्त्रियोंका इस प्रकार परिचय दिया ॥ ४ ॥

संजय उवाच

य एष जाम्बूनदशुद्धगौर-
स्तनुर्महासिंह इव प्रवृद्धः ।
प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्र-
स्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः ॥ ५ ॥

संजय बोले—ये जो विशुद्ध सुवर्णके समान गोरे और सबसे बड़े हैं, देखनेमें महान् सिंहके समान जान पड़ते हैं, जिनकी नासिका नुकीली तथा नेत्र बड़े-बड़े और कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए हैं, ये कुरुराज युधिष्ठिर हैं ॥ ५ ॥

अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी
प्रतप्तचामीकरशुद्धगौरः ।
पृथ्वायतांसः पृथुदीर्घबाहु-
र्वृकोदरः पश्यत पश्यतेमम् ॥ ६ ॥

जो मतवाले गजराजके समान चलनेवाले, तपाये हुए सुवर्णके समान विशुद्ध गौरवर्ण तथा मोटे और चौड़े कन्धे-वाले हैं, जिनकी भुजाएँ मोटी और बड़ी-बड़ी हैं, ये ही भीमसेन हैं। आप लोग इन्हें अच्छी तरह देख लें, देख लें ॥

यस्त्वेष पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान्
श्यामो युवा वारणयूथपाभः ।
सिंहोन्नतांसो गजखेलगामी
पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः ॥ ७ ॥

इनके बगलमें जो ये महाधनुर्धर और श्याम रंगके नव-युवक दिखायी देते हैं, जिनके कंधे सिंहके समान ऊँचे हैं, जो हाथियोंके यूथपति गजराजके समान प्रतीत होते हैं और हाथीके ही समान मस्तानी चालसे चलते हैं, ये कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले वीरवर अर्जुन हैं ॥ ७ ॥

कुन्तीसमीपे पुरुषोत्तमौ तु
यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ ।
मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति
ययोर्न रूपे न बले न शीले ॥ ८ ॥

कुन्तीके पास जो ये दो श्रेष्ठ पुरुष बैठे दिखायी देते हैं, ये एक ही साथ उत्पन्न हुए नकुल और सहदेव हैं। ये दोनों भाई भगवान् विष्णु और इन्द्रके समान शोभा पाते हैं। रूप, बल और शीलमें इन दोनोंकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ ८ ॥

इयं पुनः पद्मदलायताक्षी
मध्यं वयः किंचिदिव स्पृशन्ती ।
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव
कृष्णा स्थिता मूर्तिमतीव लक्ष्मीः ॥ ९ ॥

ये जो किंचित् मध्यम वयका स्पर्श करती हुई, नील कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाली एवं नील उत्पलकी-सी श्यामकान्तिसे सुशोभित होनेवाली सुन्दरी मूर्तिमती लक्ष्मी तथा देवताओंकी देवी-सी जान पड़ती हैं, ये ही महारानी द्रुपद-कुमारी कृष्णा हैं ॥ ९ ॥

अस्यास्तु पार्श्वे कनकोत्तमाभा
यैषा प्रभा मूर्तिमतीव सौमी ।
मध्ये स्थिता सा भगिनी द्विजाग्र्या-
श्चक्रायुधस्याप्रतिमस्य तस्य ॥ १० ॥

विप्रवरो ! इनके बगलमें जो ये सुवर्णसे भी उत्तम कान्तिवाली देवी चन्द्रमाकी मूर्तिमती प्रभा-सी विराजमान हो रही हैं और सब स्त्रियोंके बीचमें बैठी हैं, ये अनुपम प्रभाव-शाली चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा हैं ॥ १० ॥

इयं च जाम्बूनदशुद्धगौरी
पार्थस्य भार्या भुजगेन्द्रकन्या ।
चित्राङ्गदा चैव नरेन्द्रकन्या
यैषा सवर्णार्द्रमधूकपुष्पैः ॥ ११ ॥

ये जो विशुद्ध जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान गौर वर्ण-वाली सुन्दरी देवी बैठी हैं, ये नागराजकन्या उलूपी हैं तथा जिनकी अङ्गकान्ति नूतन मधूक-पुष्पोंके समान प्रतीत होती है, ये राजकुमारी चित्राङ्गदा हैं। ये दोनों भी अर्जुनकी ही पत्नियाँ हैं ॥ ११ ॥

इयं स्वसा राजचमूपतेश्च
प्रवृद्धनीलोत्पलदामवर्णा ।
पस्पर्ध कृष्णेन सदा नृपो यो
वृकोदरस्यैष परिग्रहोऽग्र्यः ॥ १२ ॥

ये जो इन्दीवरके समान श्यामवर्णवाली राजमहिला विराजमान हैं, भीमसेनकी श्रेष्ठ पत्नी हैं। ये उस राजसेनापति

एवं नरेशकी बहन हैं, जो सदा भगवान् श्रीकृष्णसे टक्कर लेनेका हौसला रखता था ॥ १२ ॥

इयं च राज्ञो मगधाधिपस्य
सुता जरासन्ध इति श्रुतस्य ।
यवीयसो माद्रवतीसुतस्य
भार्या मता चम्पकदामगौरी ॥ १३ ॥

साथ ही यह जो चम्पाकी मालाके समान गौरवर्णवाली सुन्दरी बैठी हुई है, यह सुविख्यात मगधनरेश जरासंधकी पुत्री एवं माद्रीके छोटे पुत्र सहदेवकी भार्या है ॥ १३ ॥

इन्दीवरश्यामतनुः स्थिता तु
यैषा परासन्नमहीतले च ।
भार्या मता माद्रवतीसुतस्य
ज्येष्ठस्य सेयं कमलायताक्षी ॥ १४ ॥

इसके पास जो नीलकमलके समान श्याम रंगवाली महिला है, वह कमलनयनी सुन्दरी माद्रीके ज्येष्ठ पुत्र नकुलकी पत्नी है ॥ १४ ॥

इयं तु निष्टप्तसुवर्णगौरी
राज्ञो विराटस्य सुता सपुत्रा ।
भार्याभिमन्योर्निहतो रणे यो
द्रोणादिभिस्तैर्विरथो रथस्थैः ॥ १५ ॥

यह जो तपाये हुए कुन्दनके समान कान्तिवाली तरुणी गोदमें बालक लिये बैठी है, यह राजा विराटकी पुत्री उत्तरा है। यह उस वीर अभिमन्युकी धर्मपत्नी है, जो महाभारत-युद्धमें रथपर बैठे हुए द्रोणाचार्य आदि अनेक महारथियोंद्वारा रथहीन कर दिया जानेपर मारा गया था ॥ १५ ॥

एतास्तु सीमन्तशिरोरुहा याः
शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्यः ।
राज्ञोऽस्य वृद्धस्य परं शताख्याः
स्नुषा नृवीराहतपुत्रनाथाः ॥ १६ ॥

इन सबके सिवा ये जितनी स्त्रियाँ सफेद चादर ओढ़े बैठी हुई हैं, जिनकी माँगोंमें सिन्दूर नहीं है, ये सब दुर्योधन आदि सौ भाइयोंकी पत्नियाँ और इन बूढ़े महाराजकी सौ पुत्रवधुएँ हैं। इनके पति और पुत्र रणमें नरवीरोंद्वारा मारे गये हैं ॥ १६ ॥

एता यथामुख्यमुदाहृता वो
ब्राह्मण्यभावादृजुबुद्धिसत्त्वाः ।
सर्वा भवद्भिः परिपृच्छ्यमाना
नरेन्द्रपत्न्यः सुविशुद्धसत्त्वाः ॥ १७ ॥

ब्राह्मणत्वके प्रभावसे सरल बुद्धि और विशुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियो ! आपने सबका परिचय पूछा था; इसलिये मैंने इनमेंसे मुख्य-मुख्य व्यक्तियोंका परिचय दे दिया है। ये सभी राजपत्नियाँ विशुद्ध हृदयवाली हैं ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स राजा कुरुवृद्धवर्यः
समागतस्तैर्नरदेवपुत्रैः ।
पप्रच्छ सर्वं कुशलं तदानीं
गतेषु सर्वेष्वथ तापसेषु ॥ १८ ॥

इस प्रकार संजयके मुखसे सबका परिचय पाकर जब सभी तपस्वी अपनी-अपनी कुटियामें चले गये, तब कुरुकुलके वृद्ध एवं श्रेष्ठ पुरुष राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार उन नरदेव-कुमारोंसे मिलकर उस समय सबका कुशल-मङ्गल पूछने लगे ॥

योधेषु चाप्याश्रममण्डलं तं
मुक्त्वा निविष्टेषु विमुच्य पत्रम् ।
स्त्रीवृद्धबाले च सुसंनिविष्टे
यथार्हतस्तान् कुशलान्यपृच्छत् ॥ १९ ॥

पाण्डवोंके सैनिकोंने आश्रममण्डलकी सीमाको छोड़कर कुछ दूरपर समस्त वाहनोंको खोल दिया और वहीं पड़ाव डाल दिया तथा स्त्री, वृद्ध और बालकोंका समुदाय छावनीमें सुखपूर्वक विश्राम लेने लगा । उस समय राजा धृतराष्ट्र पाण्डवोंसे मिलकर उनका कुशल-समाचार पूछने लगे ॥ १९ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि ऋषीन् प्रति युधिष्ठिरादिकथने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें ऋषियोंके प्रति युधिष्ठिर आदिका परिचयविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा विदुरजीका युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश

धृतराष्ट्र उवाच

युधिष्ठिर महाबाहो कच्चित् त्वं कुशली ह्यसि ।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पौरजानपदैस्तथा ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रने पूछा—महाबाहो युधिष्ठिर ! तुम नगर तथा जनपदकी समस्त प्रजाओं और भाइयोंसहित कुशलसे तो हो न ? ॥ १ ॥

ये च त्वामनुजीवन्ति कच्चित् तेऽपि निरामयाः ।
सचिवा भृत्यवर्गाश्च गुरवश्चैव ते नृप ॥ २ ॥

नरेश्वर ! जो तुम्हारे आश्रित रहकर जीवन-निर्वाह करते हैं, वे मन्त्री, भृत्यवर्ग और गुरुजन भी सुखी और स्वस्थ तो हैं न ? ॥ २ ॥

कच्चित् तेऽपि निरातङ्का वसन्ति विषये तव ।
कच्चिद् वर्तसि पौराणीं वृत्तिं राजर्षिसेविताम् ॥ ३ ॥

क्या वे भी तुम्हारे राज्यमें निर्भय होकर रहते हैं ? क्या तुम प्राचीन राजर्षियोंसे सेवित पुरानी रीति-नीतिका पालन करते हो ? ॥ ३ ॥

कच्चिन्न्यायाननुच्छिद्य कोशस्तेऽभिप्रपूर्यते ।
अरिमध्यस्थमित्रेषु वर्तसे चानुरूपतः ॥ ४ ॥

क्या तुम्हारा खजाना न्यायमार्गका उल्लङ्घन किये बिना ही भरा जाता है । क्या तुम शत्रु, मित्र और उदासीन पुरुषोंके प्रति यथायोग्य बर्ताव करते हो ? ॥ ४ ॥

ब्राह्मणानग्रहारैर्वा यथावदनुपश्यसि ।
कच्चित् ते परितुष्यन्ति शीलेन भरतर्षभ ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! क्या तुम ब्राह्मणोंको माफी जमीन देकर उनपर यथोचित दृष्टि रखते हो ? क्या तुम्हारे शील-स्वभावसे वे संतुष्ट रहते हैं ? ॥ ५ ॥

शत्रवोऽपि कुतः पौरा भृत्या वा स्वजनोऽपि वा ।
कच्चिद् यजसि राजेन्द्र श्रद्धावान् पितृदेवताः ॥ ६ ॥

राजेन्द्र ! पुरवासी स्वजनों और सेवकोंकी तो बात ही क्या है, क्या शत्रु भी तुम्हारे बर्तावसे संतुष्ट रहते हैं ? क्या तुम श्रद्धापूर्वक देवताओं और पितरोंका यजन करते हो ? ॥

अतिथीनन्नपानेन कच्चिदर्चसि भारत ।
कच्चिन्नयपथे विप्राः स्वकर्मनिरतास्तव ॥ ७ ॥
क्षत्रिया वैश्यवर्गो वा शूद्रा वापि कुटुम्बिनः ।

भारत ! क्या तुम अन्न और जलके द्वारा अतिथियोंका सत्कार करते हो ? क्या तुम्हारे राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा कुटुम्बीजन न्यायमार्गका अवलम्बन करते हुए अपने कर्तव्यके पालनमें तत्पर रहते हैं ? ॥ ७½ ॥

कच्चित् स्त्रीबालवृद्धं ते न शोचति न याचते ॥ ८ ॥
जामयः पूजिताः कच्चित् तव गेहे नरर्षभ ।

नरश्रेष्ठ ! तुम्हारे राज्यमें स्त्रियों, बालकों और वृद्धोंको दुःख तो नहीं भोगना पड़ता ? वे जीविकाके लिये भीख तो नहीं माँगते हैं ? तुम्हारे घरमें सौभाग्यवती बहू-बेटियोंका आदर-सत्कार तो होता है न ? ॥ ८½ ॥

कच्चिद् राजर्षिवंशोऽयं त्वामासाद्य महीपतिम् ॥ ९ ॥
यथोचितं महाराज यशसा नावसीदति ।

महाराज ! राजर्षियोंका यह वंश तुम-जैसे राजाको पाकर यथोचित प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है न ? इसे यशसे वञ्चित होकर अपयशका भागी तो नहीं होना पड़ता है ? ॥ ९½ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवंवादिनं तं स न्यायवित् प्रत्यभाषत ॥ १० ॥
कुशलप्रश्नसंयुक्तं कुशलो वाक्यकर्मणि ।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! धृतराष्ट्रके इस प्रकार कुशल-समाचार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल न्याय-वेत्ता राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार कहा ॥ १०½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कच्चित् ते वर्धते राजंस्तपो दमशमौ च ते ॥ ११ ॥
अपि मे जननी चेयं शुश्रूषुर्विगतक्लमा ।
अथास्याः सफलो राजन् वनवासो भविष्यति ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले—राजन् ! (मेरे यहाँ सब कुशल है) आपके तप, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह आदि सद्गुणोंकी वृद्धि तो हो रही है न ? ये मेरी माता कुन्ती आपकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें क्लेशका अनुभव तो नहीं करतीं ? क्या इनका वनवास सफल होगा ? ॥ ११-१२ ॥

इयं च माता ज्येष्ठा मे शीतवाताध्वकर्शिता ।
घोरेण तपसा युक्ता देवी कच्चिन्न शोचति ॥ १३ ॥
हतान् पुत्रान् महावीर्यान् क्षत्रधर्मपरायणान् ।
नापध्यायति वा कच्चिदस्मान् पापकृतः सदा ॥ १४ ॥

ये मेरी बड़ी माता गान्धारीदेवी सर्दी, हवा और रास्ता चलनेके परिश्रमसे कष्ट पाकर अत्यन्त दुबली हो गयी हैं और घोर तपस्यामें लगी हुई हैं । ये देवी युद्धमें मारे गये अपने क्षत्रिय-धर्मपरायण महापराक्रमी पुत्रोंके लिये कभी शोक तो नहीं करतीं ? और हम अपराधियोंका कभी कोई अनिष्ट तो नहीं सोचती हैं ? ॥ १३-१४ ॥

क चासौ विदुरो राजन् नेमं पश्यामहे वयम् ।
सञ्जयः कुशली चायं कच्चिन्नु तपसि स्थिरः ॥ १५ ॥

राजन् ! ये संजय तो कुशलपूर्वक स्थिरभावसे तपस्यामें लगे हुए हैं न ? इस समय विदुरजी कहाँ हैं ? इन्हें हमलोग नहीं देख पा रहे हैं ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं धृतराष्ट्रो जनाधिपम् ।
कुशली विदुरः पुत्र तपो घोरं समाश्रितः ॥ १६ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर धृतराष्ट्रने उनसे कहा—'बेटा ! विदुरजी कुशलपूर्वक हैं । वे बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हैं ॥ १६ ॥

वायुभक्षो निराहारः कृशो धमनिसन्ततः ।
कदाचिद् दृश्यते विप्रैः शून्येऽस्मिन् कानने क्वचित् ॥

'वे निरन्तर उपवास करते और वायु पीकर रहते हैं, इसलिये अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं । उनके सारे शरीरमें व्याप्त हुई नस-नाड़ियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं । इस सूने वनमें ब्राह्मणोंको कभी-कभी कहीं उनके दर्शन हो जाया करते हैं' ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य जटी वीटामुखः कृशः ।

दिग्वासा मलदिग्धाङ्गो वनरेणुसमुक्षितः ॥ १८ ॥
दूरादालक्षितः क्षत्ता तत्राख्यातो महीपतेः ।
निवर्तमानः सहसा राजन् दृष्ट्वाऽऽश्रमं प्रति ॥ १९ ॥

राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार कह ही रहे थे कि मुखमें पत्थरका टुकड़ा लिये जटाधारी कृशकाय विदुरजी दूरसे आते दिखायी दिये। वे दिगम्बर (वस्त्रहीन) थे। उनके सारे शरीरमें मैल जमी हुई थी। वे वनमें उड़ती हुई धूलोंसे नहा गये थे। राजा युधिष्ठिरको उनके आनेकी सूचना दी गयी। राजन्! विदुरजी उस आश्रमकी ओर देखकर सहसा पीछेकी ओर लौट पड़े ॥ १८-१९ ॥

तमन्वधावन्नृपतिरेक एव युधिष्ठिरः ।
प्रविशन्तं वनं घोरं लक्ष्यालक्ष्यं क्वचित् क्वचित् ॥२०॥
भो भो विदुर राजाहं दयितस्ते युधिष्ठिरः ।
इति ब्रुवन्नरपतिस्तं यत्नादभ्यधावत ॥ २१ ॥

यह देख राजा युधिष्ठिर अकेले ही उनके पीछे-पीछे दौड़े। विदुरजी कभी दिखायी देते और कभी अदृश्य हो जाते थे। जब वे एक घोर वनमें प्रवेश करने लगे, तब राजा युधिष्ठिर यत्नपूर्वक उनकी ओर दौड़े और इस प्रकार कहने लगे— 'ओ विदुरजी! मैं आपका परमप्रिय राजा युधिष्ठिर आपके दर्शनके लिये आया हूँ' ॥ २०-२१ ॥

ततो विविक्त एकान्ते तस्थौ बुद्धिमतां वरः ।
विदुरो वृक्षमाश्रित्य कंचित्तत्र वनान्तरे ॥ २२ ॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विदुरजी वनके भीतर एक परम पवित्र एकान्त प्रदेशमें किसी वृक्षका सहारा लेकर खड़े हो गये ॥ २२ ॥



तं राजा क्षीणभूयिष्ठमाकृतीमात्रसूचितम् ।
अभिजज्ञे महाबुद्धिं महाबुद्धिर्युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥

वे बहुत ही दुर्बल हो गये थे। उनके शरीरका ढाँचामात्र रह गया था, इतनेहीसे उनके जीवित होनेकी सूचना मिलती थी। परम बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिरने उन महाबुद्धिमान् विदुरको पहचान लिया ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरोऽहमस्मीति वाक्यमुक्त्वाग्रतः स्थितः ।
विदुरस्य श्रवे राजा तं च प्रत्यभ्यपूजयत् ॥ २४ ॥

'मैं युधिष्ठिर हूँ' ऐसा कहकर वे उनके आगे खड़े हो गये। यह बात उन्होंने उतनी ही दूरसे कही थी, जहाँसे विदुरजी सुन सकें; फिर पास जाकर राजाने उनका बड़ा सत्कार किया ॥ २४ ॥

ततः सोऽनिमिषो भूत्वा राजानं तमुदैक्षत ।
संयोज्य विदुरस्तस्मिन् दृष्टिं दृष्ट्या समाहितः ॥ २५ ॥

तदनन्तर महात्मा विदुरजी राजा युधिष्ठिरकी ओर एकटक देखने लगे। वे अपनी दृष्टिको उनकी दृष्टिसे जोड़कर एकाग्र हो गये ॥ २५ ॥

विवेश विदुरो धीमान् गात्रैर्गात्राणि चैव ह ।
प्राणान् प्राणेषु च दधदिन्द्रियाणीन्द्रियेषु च ॥ २६ ॥

बुद्धिमान् विदुर अपने शरीरको युधिष्ठिरके शरीरमें, प्राणोंको प्राणोंमें और इन्द्रियोंको उनकी इन्द्रियोंमें स्थापित करके उनके भीतर समा गये ॥ २६ ॥

स योगबलमास्थाय विवेश नृपतेस्तनुम् ।
विदुरो धर्मराजस्य तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ २७ ॥

उस समय विदुरजी तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्होंने योगबलका आश्रय लेकर धर्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रवेश किया ॥ २७ ॥

विदुरस्य शरीरं तु तथैव स्तब्धलोचनम् ।
वृक्षाश्रितं तदा राजा ददर्श गतचेतनम् ॥ २८ ॥

राजाने देखा, विदुरजीका शरीर पूर्ववत् वृक्षके सहारे खड़ा है। उनकी आँखें अब भी उसी तरह निर्निमेष हैं, किंतु अब उनके शरीरमें चेतना नहीं रह गयी है ॥ २८ ॥

बलवन्तं तथाऽऽत्मानं मेने बहुगुणं तदा ।
धर्मराजो महातेजास्तच्च सस्मार पाण्डवः ॥ २९ ॥
पौराणमात्मनः सर्वं विद्यावान् स विशाम्पते ।
योगधर्मं महातेजा व्यासेन कथितं यथा ॥ ३० ॥

इसके विपरीत उन्होंने अपनेमें विशेष बल और अधिक गुणोंका अनुमान किया। प्रजानाथ! इसके बाद महातेजस्वी पाण्डुपुत्र विद्यावान् धर्मराज युधिष्ठिरने अपने समस्त पुरातन स्वरूपका स्मरण किया। (मैं और विदुरजी एक ही धर्मके अंशसे प्रकट हुए थे, इस बातका अनुभव किया)। इतना

ही नहीं, उन महातेजस्वी नरेशने व्यासजीके बताये हुए योगधर्मका भी स्मरण कर लिया ॥ २९-३० ॥

धर्मराजश्च तत्रैव संचस्कारयिषुस्तदा ।
दग्धुकामोऽभवद् विद्वानथ वागभ्यभाषत ॥ ३१ ॥
भो भो राजन्न दग्धव्यमेतद् विदुरसंज्ञकम् ।
कलेवरमिहैवं ते धर्म एष सनातनः ॥ ३२ ॥
लोकाः सान्तानिका नाम भविष्यन्त्यस्य भारत ।
यतिधर्ममवाप्तोऽसौ नैष शोच्यः परंतप ॥ ३३ ॥

अब विद्वान् धर्मराजने वहीं विदुरके शरीरका दाह-संस्कार करनेका विचार किया। इतनेहीमें आकाशवाणी हुई—'राजन्! शत्रुसंतापी भरतनन्दन! इस विदुर नामक शरीरका यहाँ दाह-संस्कार करना उचित नहीं है; क्योंकि वे संन्यास-धर्मका पालन करते थे। यहाँ उनका दाह न करना ही तुम्हारे लिये सनातन धर्म है। विदुरजीको सान्तानिक नामक लोकोंकी प्राप्ति होगी; अतः उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये' ॥ ३१-३३ ॥

इत्युक्तो धर्मराजः स विनिवृत्य ततः पुनः ।
राज्ञो वैचित्रवीर्यस्य तत् सर्वं प्रत्यवेदयत् ॥ ३४ ॥

आकाशवाणीद्वारा ऐसी बात कही जानेपर धर्मराज युधिष्ठिर फिर वहाँसे लौट गये और राजा धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्होंने वे सारी बातें उनसे बतायीं ॥ ३४ ॥

ततः स राजा द्युतिमान् स च सर्वो जनस्तदा ।
भीमसेनादयश्चैव परं विस्मयमागताः ॥ ३५ ॥
तच्छ्रुत्वा प्रीतिमान् राजा भूत्वा धर्मजमब्रवीत् ।
आपो मूलं फलं चैव ममेदं प्रतिगृह्यताम् ॥ ३६ ॥

विदुरजीके देहत्यागका यह अद्भुत समाचार सुनकर तेजस्वी राजा धृतराष्ट्र तथा भीमसेन आदि सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। इसके बाद राजाने प्रसन्न होकर धर्मराज युधिष्ठिरसे कहा—'बेटा! अब तुम मेरे दिये हुए इस फल-मूल और जलको ग्रहण करो ॥ ३५-३६ ॥

यदन्नो हि नरो राजंस्तदन्नोऽस्यातिथिः स्मृतः ।
इत्युक्तः स तथेत्येवं प्राह धर्मात्मजो नृपम् ॥ ३७ ॥
फलं मूलं च बुभुजे राज्ञा दत्तं सहानुजः ।
ततस्ते वृक्षमूलेषु कृतवासपरिग्रहाः ।
तां रात्रिमवसन् सर्वे फलमूलजलाशनाः ॥ ३८ ॥

'राजन्! मनुष्य जिन वस्तुओंका स्वयं उपयोग करता है, उन्हीं वस्तुओंसे वह अतिथिका भी सत्कार करे—ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है।' उनके ऐसा कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और उनके दिये हुए फल-मूलका भाइयोंसहित भोजन किया। तदनन्तर उन सब लोगोंने फल-मूल और जलका ही आहार करके वृक्षोंके नीचे ही रहनेका निश्चय कर वहीं वह रात्रि व्यतीत की ॥ ३७-३८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि विदुरनिर्याणे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें विदुरका देहत्यागविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

युधिष्ठिर आदिका ऋषियोंके आश्रम देखना, कलश आदि बाँटना और धृतराष्ट्रके पास आकर बैठना, उन सबके पास अन्यान्य ऋषियोंसहित महर्षि व्यासका आगमन

वैशम्पायन उवाच

ततस्तु राजन्नेतेषामाश्रमे पुण्यकर्मणाम् ।
शिवा नक्षत्रसम्पन्ना सा व्यतीयाय शर्वरी ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर उस आश्रमपर निवास करनेवाले इन समस्त पुण्यकर्मा मनुष्योंकी नक्षत्र-मालाओंसे सुशोभित वह मङ्गलमयी रात्रि सकुशल व्यतीत हुई ॥ १ ॥

ततस्तत्र कथाश्चासंस्तेषां धर्मार्थलक्षणाः ।
विचित्रपदसंचारा नानाश्रुतिभिरन्विताः ॥ २ ॥

उस समय उन लोगोंमें विचित्र पदों और नाना श्रुतियोंसे युक्त धर्म और अर्थसम्बन्धी चर्चाएँ होती रहीं ॥ २ ॥

पाण्डवास्त्वभितो मातुर्धरण्यां सुषुपुस्तदा ।
उत्सृज्य तु महार्हाणि शयनानि नराधिप ॥ ३ ॥

नरेश्वर! पाण्डवलोग बहुमूल्य शय्याओंको छोड़कर अपनी माताके चारों ओर धरतीपर ही सोये थे ॥ ३ ॥

यदाहारोऽभवद् राजा धृतराष्ट्रो महामनाः ।
तदाहारा नृवीरास्ते न्यवसंस्तां निशां तदा ॥ ४ ॥

महामनस्वी राजा धृतराष्ट्रने जिस वस्तुका आहार किया था, उसी वस्तुका आहार उस रातमें उन नरवीर पाण्डवोंने भी किया था ॥ ४ ॥

व्यतीतायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियः ।
भ्रातृभिः सहितो राजा ददर्शाश्रममण्डलम् ॥ ५ ॥
सान्तःपुरपरीवारः सभृत्यः सपुरोहितः ।
यथासुखं यथोद्देशं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ६ ॥

रात बीत जानेपर पूर्वाह्णकालिक नैत्यिक नियम पूरे करके राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले भाइयों, अन्तःपुरकी स्त्रियों, सेवकों और पुरोहितोंके साथ सुखपूर्वक भिन्न-भिन्न स्थानोंमें घूम-फिरकर मुनियोंके आश्रम देखे ॥ ५-६ ॥

ददर्श तत्र वेदीश्च संप्रज्वलितपावकाः ।
कृताभिषेकैर्मुनिभिर्हुताग्निभिरुपस्थिताः ॥ ७ ॥
वानेयपुष्पनिकरैराज्यधूमोद्गमैरपि ।
ब्राह्मेण वपुषा युक्ता युक्ता मुनिगणस्य ताः ॥ ८ ॥

उन्होंने देखा, वहाँ आश्रमोंमें यज्ञकी वेदियाँ बनी हैं, जिनपर अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे हैं। मुनिलोग स्नान करके उन वेदियोंके पास बैठे हैं और अग्निमें आहुति दे रहे हैं। वनके फूलों और घृतकी आहुतिसे उठे हुए धूमोंसे भी उन वेदियोंकी शोभा हो रही है। वहाँ निरन्तर वेदध्वनि होनेके कारण मानो वे वेदियाँ वेदमय शरीरसे संयुक्त जान पड़ती थीं। मुनियोंके समुदाय सदा उनसे सम्पर्क बनाये रखते थे ॥ ७-८ ॥

मृगयूथैरनुद्विग्नैस्तत्र तत्र समाश्रितैः ।
अशङ्कितैः पक्षिगणैः प्रगीतैरिव च प्रभो ॥ ९ ॥

प्रभो! उन आश्रमोंमें जहाँ-तहाँ मृगोंके झुंड निर्भय एवं शान्तचित्त होकर आरामसे बैठे थे। पक्षियोंके समुदाय निःशङ्क होकर उच्च स्वरसे कलरव करते थे ॥ ९ ॥

केकाभिर्नीलकण्ठानां दात्यूहानां च कूजितैः ।
कोकिलानां कुहुरवैः सुखैः श्रुतिमनोहरैः ॥ १० ॥
प्राधीतद्विजघोषैश्च क्वचित् क्वचिदलंकृतम् ।
फलमूलसमाहारैर्महद्भिश्चोपशोभितम् ॥ ११ ॥

मोरोंके मधुर केकारव, दात्यूह नामक पक्षियोंके कल-कूजन और कोयलोंकी कुहू-कुहू ध्वनि हो रही थी। उनके शब्द बड़े ही सुखद तथा कानों और मनको हर लेनेवाले थे। कहीं-कहीं स्वाध्यायशील ब्राह्मणोंके वेद-मन्त्रोंका गम्भीर घोष गूँज रहा था और इन सबके कारण उन आश्रमोंकी शोभा बहुत बढ़ गयी थी एवं वह आश्रम फल-मूलका आहार करनेवाले महापुरुषोंसे सुशोभित हो रहा था ॥ १०-११ ॥

ततः स राजा प्रददौ तापसार्थमुपाहृतान् ।
कलशान् काञ्चनान् राजंस्तथैवौदुम्बरानपि ॥ १२ ॥
अजिनानि प्रवेणीश्च स्रुक् स्रुवं च महीपतिः ।
कमण्डलूंश्च स्थालीश्च पिठराणि च भारत ॥ १३ ॥
भाजनानि च लौहानि पात्रीश्च विविधा नृप ।
यद् यदिच्छति यावच्च यच्चान्यदपि भाजनम् ॥ १४ ॥

राजन्! उस समय राजा युधिष्ठिरने तपस्वियोंके लिये लाये हुए सोने और ताँबेके कलश, मृगचर्म, कम्बल, स्रुक्, स्रुवा, कमण्डलु, बटलोई, कड़ाही, अन्यान्य लोहेके बने हुए पात्र तथा और भी भाँति-भाँतिके बर्तन बाँटे। जो जितना और जो-जो बर्तन चाहता था, उसको उतना ही और वही बर्तन दिया जाता था। दूसरा भी आवश्यक पात्र दे दिया जाता था ॥ १२-१४ ॥

एवं स राजा धर्मात्मा परीत्याश्रममण्डलम् ।
वसु विश्राण्य तत् सर्वं पुनरायान्महीपतिः ॥ १५ ॥

इस प्रकार धर्मात्मा राजा पृथ्वीपति युधिष्ठिर आश्रमोंमें घूम-घूमकर वह सारा धन बाँटनेके पश्चात् धृतराष्ट्रके आश्रम-पर लौट आये ॥ १५ ॥

कृताह्निकं च राजानं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
ददर्शासीनमव्यग्रं गान्धारीसहितं तदा ॥ १६ ॥
मातरं चाविदूरस्थां शिष्यवत् प्रणतां स्थिताम् ।
कुन्तीं ददर्श धर्मात्मा शिष्टाचारसमन्विताम् ॥ १७ ॥

वहाँ आकर उन्होंने देखा कि राजा धृतराष्ट्र नित्य कर्म करके गान्धारीके साथ शान्त भावसे बैठे हुए हैं और उनसे थोड़ी ही दूरपर शिष्टाचारका पालन करनेवाली माता कुन्ती शिष्याकी भाँति विनीत भावसे खड़ी है ॥ १६-१७ ॥

स तमभ्यर्च्य राजानं नाम संश्राव्य चात्मनः ।
निषीदेत्यभ्यनुज्ञातो बृस्यामुपविवेश ह ॥ १८ ॥

युधिष्ठिरने अपना नाम सुनाकर राजा धृतराष्ट्रका प्रणाम-पूर्वक पूजन किया और 'बैठो' यह आज्ञा मिलनेपर वे कुशके आसनपर बैठ गये ॥ १८ ॥

भीमसेनादयश्चैव पाण्डवा भरतर्षभ ।
अभिवाद्योपसंगृह्य निषेदुः पार्थिवाज्ञया ॥ १९ ॥

भरतश्रेष्ठ! भीमसेन आदि पाण्डव भी राजाके चरण छूकर प्रणाम करनेके पश्चात् उनकी आज्ञासे बैठ गये ॥ १९ ॥

स तैः परिवृतो राजा शुशुभेऽतीव कौरवः ।
बिभ्रद् ब्राह्मीं श्रियं दीप्तां देवैरिव बृहस्पतिः ॥ २० ॥

उनसे घिरे हुए कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र वैसी ही शोभा पा रहे थे, जैसे उज्ज्वल ब्रह्मतेज धारण करनेवाले बृहस्पति देवताओंसे घिरे हुए सुशोभित होते हैं ॥ २० ॥

तथा तेषूपविष्टेषु समाजग्मुर्महर्षयः ।
शतयूपप्रभृतयः कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥ २१ ॥

वे सब लोग इस प्रकार बैठे ही थे कि कुरुक्षेत्रनिवासी शतयूप आदि महर्षि वहाँ आ पहुँचे ॥ २१ ॥

व्यासश्च भगवान् विप्रो देवर्षिगणसेवितः ।
वृतः शिष्यैर्महातेजा दर्शयामास पार्थिवम् ॥ २२ ॥

देवर्षियोंसे सेवित महातेजस्वी विप्रवर भगवान् व्यासने भी शिष्योंसहित आकर राजाको दर्शन दिया ॥ २२ ॥

ततः स राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रश्च वीर्यवान् ।
भीमसेनादयश्चैव प्रत्युत्थायाभ्यवादयन् ॥ २३ ॥

उस समय कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र, पराक्रमी कुन्तीकुमार ुधिष्ठिर तथा भीमसेन आदिने उठकर समागत महर्षियोंको णाम किया ॥ २३ ॥

मागतस्ततो व्यासः शतयूपादिभिर्वृतः ।
ृतराष्ट्रं महीपालमास्यतामित्यभाषत ॥ २४ ॥

तदनन्तर शतयूप आदिसे घिरे हुए नवागत महर्षि व्यास ाजा धृतराष्ट्रसे बोले—'बैठ जाओ' ॥ २४ ॥

रं तु विष्टरं कौश्यं कृष्णाजिनकुशोत्तरम् ।
प्रतिपेदे तदा व्यासस्तदर्थमुपकल्पितम् ॥ २५ ॥

इसके बाद व्यासजी स्वयं एक सुन्दर कुशासनपर, जो काले मृगचर्मसे आच्छादित तथा उन्हींके लिये बिछाया गया था, विराजमान हुए ॥ २५ ॥

ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठा विष्टरेषु समन्ततः ।
द्वैपायनाभ्यनुज्ञाता निषेदुर्विपुलौजसः ॥ २६ ॥

फिर व्यासजीकी आज्ञासे अन्य सब महातेजस्वी श्रेष्ठ द्विजगण चारों ओर बिछे हुए कुशासनोंपर बैठ गये ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासागमने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें व्यासका आगमनविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

महर्षि व्यासका धृतराष्ट्रसे कुशल पूछते हुए विदुर और युधिष्ठिरकी धर्मरूपताका प्रतिपादन करना और उनसे अभीष्ट वस्तु माँगनेके लिये कहना

वैशम्पायन उवाच

तः समुपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर हात्मा पाण्डवोंके बैठ जानेपर सत्यवतीनन्दन व्यासने इस कार पूछा ॥ १ ॥

ृतराष्ट्र महाबाहो कच्चित् ते वर्धते तपः ।
च्चिन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे नराधिप ॥ २ ॥

'महाबाहु धृतराष्ट्र ! तुम्हारी तपस्या बढ़ी रही है न ? रेश्वर ! वनवासमें तुम्हारा मन तो लगता है न ? ॥ २ ॥

च्चिद्धृदि न ते शोको राजन् पुत्रविनाशजः ।
च्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि सुप्रसन्नानि तेऽनघ ॥ ३ ॥

'राजन् ! अब कभी तुम्हारे मनमें अपने पुत्रोंके ारे जानेका शोक तो नहीं होता ? निष्पाप नरेश ! तुम्हारी मस्त ज्ञानेन्द्रियाँ निर्मल तो हो गयी हैं न ? ॥ ३ ॥

च्चिद् बुद्धिं दृढां कृत्वा चरस्यारण्यकं विधिम् ।
च्चिद् वधूश्च गान्धारी न शोकेनाभिभूयते ॥ ४ ॥

'क्या तुम अपनी बुद्धिको दृढ़ करके वनवासके कठोर ियमोंका पालन करते हो ? बहू गान्धारी कभी शोकके वशीूत तो नहीं होती ? ॥ ४ ॥

हाप्रज्ञा बुद्धिमती देवी धर्मार्थदर्शिनी ।
ागमापायतत्त्वज्ञा कच्चिदेषा न शोचति ॥ ५ ॥

'गान्धारी बड़ी बुद्धिमती और महाविदुषी है । यह देवी र्म और अर्थको समझनेवाली तथा जन्म-मरणके तत्त्वको जाननेवाली है । इसे तो कभी शोक नहीं होता है ॥ ५ ॥

कच्चित् कुन्ती च राजंस्त्वां शुश्रूषत्यनहंकृता ।
या परित्यज्य स्वं पुत्रं गुरुशुश्रूषणे रता ॥ ६ ॥

'राजन् ! जो अपने पुत्रोंको त्यागकर गुरुजनोंकी सेवामें लगी हुई है, वह कुन्ती क्या अहंकारशून्य होकर तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा करती है ? ॥ ६ ॥

कच्चिद् धर्मसुतो राजा त्वया प्रत्यभिनन्दितः ।
भीमार्जुनयमाश्चैव कच्चिदेतेऽपि सान्त्विताः ॥ ७ ॥

'क्या तुमने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरका अभिनन्दन किया है ? भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवको भी धीरज बँधाया है ? ॥ ७ ॥

कच्चिन्नन्दसि दृष्ट्वैतान् कच्चित् ते निर्मलं मनः ।
कच्चिच्च शुद्धभावोऽसि जातज्ञानो नराधिप ॥ ८ ॥

'नरेश्वर ! क्या इन्हें देखकर तुम प्रसन्न होते हो ? क्या इनकी ओरसे तुम्हारे मनकी मैल दूर हो गयी है ? क्या ज्ञान-सम्पन्न होनेके कारण तुम्हारे हृदयका भाव शुद्ध हो गया है ? ॥८॥

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत ।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च ॥ ९ ॥

'महाराज ! भरतनन्दन ! किसीसे वैर न रखना, सत्य बोलना और क्रोधको सर्वथा त्याग देना—ये तीन गुण सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ ९ ॥

कच्चित् ते न च मोहोऽस्ति वनवासेन भारत ।
स्ववशे वन्यमन्नं वा उपवासोऽपि वा भवेत् ॥ १० ॥

'भारत ! वनमें उत्पन्न हुआ अन्न तुम्हारे वशमें रहे

अथवा तुम्हें उपवास करना पड़े, सभी दशाओंमें वनवाससे तुम्हें मोह तो नहीं होता है ? ॥ १० ॥

विदितं चापि राजेन्द्र विदुरस्य महात्मनः ।
गमनं विधिनानेन धर्मस्य सुमहात्मनः ॥ ११ ॥

'राजेन्द्र ! महात्मा विदुरके, जो साक्षात् महामना धर्मके स्वरूप थे, इस विधिसे परलोकगमनका समाचार तो तुम्हें ज्ञात हुआ ही होगा ॥ ११ ॥

माण्डव्यशापाद्धि स वै धर्मो विदुरतां गतः ।
महाबुद्धिर्महायोगी महात्मा सुमहामनाः ॥ १२ ॥

'माण्डव्यमुनिके शापसे धर्म ही विदुररूपमें अवतीर्ण हुए थे । वे परम बुद्धिमान्, महान् योगी, महात्मा और महामनस्वी थे ॥ १२ ॥

बृहस्पतिर्वा देवेषु शुक्रो वाप्यसुरेषु च ।
न तथा बुद्धिसम्पन्नो यथा स पुरुषर्षभः ॥ १३ ॥

'देवताओंमें बृहस्पति और असुरोंमें शुक्राचार्य भी वैसे बुद्धिमान् नहीं हैं, जैसे पुरुषप्रवर विदुर थे ॥ १३ ॥

तपोबलव्ययं कृत्वा सुचिरात् सम्भृतं तदा ।
माण्डव्येनर्षिणा धर्मो ह्यभिभूतः सनातनः ॥ १४ ॥

'माण्डव्य ऋषिने चिरकालसे संचित किये हुए तपोबलका क्षय करके सनातन धर्मदेवको (शाप देकर) पराभूत किया था ॥ १४ ॥

नियोगाद् ब्रह्मणः पूर्वं मया स्वेन बलेन च ।
वैचित्रवीर्यके क्षेत्रे जातः स सुमहामतिः ॥ १५ ॥

'मैंने पूर्वकालमें ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार अपने तपोबलसे विचित्रवीर्यके क्षेत्र (भार्या) में उस परम बुद्धिमान् विदुरको उत्पन्न किया था ॥ १५ ॥

भ्राता तव महाराज देवदेवः सनातनः ।
धारणान्मनसा ध्यानाद् यं धर्मं कवयो विदुः ॥ १६ ॥

'महाराज ! तुम्हारे भाई विदुर देवताओंके भी देवता सनातन धर्म थे । मनके द्वारा धर्मका धारण और ध्यान किया जाता है, इसलिये विद्वान् पुरुष उन्हें धर्मके नामसे जानते हैं ॥ १६ ॥

सत्येन संवर्धयति यो दमेन शमेन च ।
अहिंसया च दानेन तप्यमानः सनातनः ॥ १७ ॥

'जो सत्य, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, अहिंसा और दानके रूपमें सेवित होनेपर जगत्के अभ्युदयका साधक होता है, वह सनातनधर्म विदुरसे भिन्न नहीं है ॥ १७ ॥

येन योगबलाज्जातः कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
धर्म इत्येष नृपते प्राज्ञेनामितबुद्धिना ॥ १८ ॥

'जिस अमित बुद्धिमान् और प्राज्ञ देवताने योगबलसे कुरुराज युधिष्ठिरको जन्म दिया था, वह धर्म विदुरका ही स्वरूप है ॥ १८ ॥

यथा वह्निर्यथा वायुर्यथाऽऽपः पृथिवी यथा ।
यथाऽऽकाशं तथा धर्म इह चामुत्र च स्थितः ॥ १९ ॥

'जैसे अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाशकी सत्ता इहलोक और परलोकमें भी है, उसी प्रकार धर्म भी उभय लोकमें व्याप्त है ॥ १९ ॥

सर्वगश्चैव राजेन्द्र सर्वं व्याप्य चराचरम् ।
दृश्यते देवदेवैः स सिद्धैर्निर्मुक्तकल्मषैः ॥ २० ॥

'राजेन्द्र ! धर्मकी सर्वत्र गति है तथा वह सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त करके स्थित है । जिनके समस्त पाप धुल गये हैं, वे सिद्ध पुरुष तथा देवताओंके देवता ही धर्मका साक्षात्कार करते हैं ॥ २० ॥

यो हि धर्मः स विदुरो विदुरो यः स पाण्डवः ।
स एष राजन् दृश्यस्ते पाण्डवः प्रेष्यवत् स्थितः ॥ २१ ॥

'जिन्हें धर्म कहते हैं वे ही विदुर थे और जो विदुर थे वे ही ये पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर हैं, जो इस समय तुम्हा[रे] सामने दासकी भाँति खड़े हैं ॥ २१ ॥

प्रविष्टः स महात्मानं भ्राता ते बुद्धिसत्तमः ।
दृष्ट्वा महात्मा कौन्तेयं महायोगबलान्वितः ॥ २२ ॥

'महान् योगबलसे सम्पन्न और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तुम्हा[रे] भाई महात्मा विदुर कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरको सामने देखक[र] इन्हींके शरीरमें प्रविष्ट हो गये हैं ॥ २२ ॥

त्वां चापि श्रेयसा योक्ष्ये न चिराद् भरतर्षभ ।
संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तं मां विद्धि पुत्रक ॥ २३ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! अब तुम्हें भी मैं शीघ्र ही कल्याण[का] भागी बनाऊँगा । बेटा ! तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि इ[स] समय मैं तुम्हारे संशयोंका निवारण करनेके लि[ये] आया हूँ ॥ २३ ॥

न कृतं यैः पुरा कैश्चित् कर्म लोके महर्षिभिः ।
आश्चर्यभूतं तपसः फलं तद् दर्शयामि वः ॥ २४ ॥

'पूर्वकालके किन्हीं महर्षियोंने संसारमें अबतक ज[ो] चमत्कारपूर्ण कार्य नहीं किया था, वह भी आज मैं क[र] दिखाऊँगा । आज मैं तुम्हें अपनी तपस्याका आश्चर्यजन[क] फल दिखलाता हूँ ॥ २४ ॥

किमिच्छसि महीपाल मत्तः प्राप्तुमभीप्सितम् ।
द्रष्टुं स्प्रष्टुमथ श्रोतुं तत्कर्ताऽस्मि तवानघ ॥ २५ ॥

'निष्पाप महीपाल ! बताओ, तुम मुझसे कौन-सी अभी[ष्ट] वस्तु पाना चाहते हो ? किसको देखने, सुनने अथवा स्प[र्श] करनेकी तुम्हारी इच्छा है ? मैं उसे पूर्ण करूँगा' ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि आश्रमवासपर्वणि व्यासवाक्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत आश्रमवासपर्वमें व्यासवाक्यविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २८ ॥

(पुत्रदर्शनपर्व)

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका मृत बान्धवोंके शोकसे दुखी होना तथा गान्धारी और कुन्तीका व्यासजीसे अपने मरे हुए पुत्रोंके दर्शन करनेका अनुरोध

जनमेजय उवाच

नवासं गते विप्र धृतराष्ट्रे महीपतौ ।
सभार्ये नृपशार्दूले वध्वा कुन्त्या समन्विते ॥ १ ॥
वेदुरे चापि संसिद्धे धर्मराजं व्यपाश्रिते ।
सत्सु पाण्डुपुत्रेषु सर्वेष्वाश्रममण्डले ॥ २ ॥
त् तदाश्चर्यमिति वै करिष्यामीत्युवाच ह ।
यासः परमतेजस्वी महर्षिस्तद् वदस्व मे ॥ ३ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! जब अपनी धर्मपत्नी ान्धारी और बहू कुन्तीके साथ नृपश्रेष्ठ पृथ्वीपति धृतराष्ट्र नवासके लिये चले गये, विदुरजी सिद्धिको प्राप्त होकर र्मराज युधिष्ठिरके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और समस्त पाण्डव ाश्रममण्डलमें निवास करने लगे, उस समय परम तेजस्वी ासजीने जो यह कहा था कि 'मैं आश्चर्यजनक घटना कट करूँगा' वह किस प्रकार हुई ? यह मुझे बताइये ? ॥

नवासे च कौरव्यः कियन्तं कालमच्युतः ।
ुधिष्ठिरो नरपतिर्न्यवसत् सजनस्तदा ॥ ४ ॥

अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले कुरुवंशी राजा धिष्ठिर कितने दिनोंतक सब लोगोंके साथ वनमें रहे थे ? ॥

कमाहाराश्च ते तत्र ससैन्या न्यवसन् प्रभो ।
ान्तःपुरा महात्मान इति तद् ब्रूहि मेऽनघ ॥ ५ ॥

प्रभो ! निष्पाप मुने ! सैनिकों और अन्तःपुरकी स्त्रियों- साथ वे महात्मा पाण्डव क्या आहार करके वहाँ निवास रते थे ? ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

ऽनुज्ञातास्तदा राजन् कुरुराजेन पाण्डवाः ।
विधान्यन्नपानानि विश्राम्यानुभवन्ति ते ॥ ६ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन् ! कुरुराज धृतराष्ट्रने ण्डवोंको नाना प्रकारके अन्न-पान ग्रहण करनेकी आज्ञा दे थी; अतः वे वहाँ विश्राम पाकर सभी तरहके उत्तम ाजन करते थे ॥ ६ ॥

ासमेकं विजहुस्ते ससैन्यान्तःपुरा वने ।
थ तत्रागमद् व्यासो यथोक्तं ते मयानघ ॥ ७ ॥

वे सेनाओं तथा अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ वहाँ एक ासतक वनमें विहार करते रहे । अनघ ! इसी बीचमें जैसा ़ मैंने तुम्हें बताया है, वहाँ व्यासजीका आगमन हुआ ॥

तथा च तेषां सर्वेषां कथाभिर्नृपसंनिधौ ।
व्यासमन्वास्यतां राजन्नाजग्मुर्मुनयो परे ॥ ८ ॥

राजन् ! राजा धृतराष्ट्रके समीप व्यासजीके पीछे बैठे हुए उन सबलोगोंमें जब उपर्युक्त बातें होती रहीं, उसी समय वहाँ दूसरे-दूसरे मुनि भी आये ॥ ८ ॥

नारदः पर्वतश्चैव देवलश्च महातपाः ।
विश्वावसुस्तुम्बुरुश्च चित्रसेनश्च भारत ॥ ९ ॥

भारत ! उनमें नारद, पर्वत, महातपस्वी देवल, विश्वा- वसु, तुम्बुरु तथा चित्रसेन भी थे ॥ ९ ॥

तेषामपि यथान्यायं पूजां चक्रे महातपाः ।
धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ १० ॥

धृतराष्ट्रकी आज्ञासे महातपस्वी कुरुराज युधिष्ठिरने उन सबकी भी यथोचित पूजा की ॥ १० ॥

निषेदुस्ते ततः सर्वे पूजां प्राप्य युधिष्ठिरात् ।
आसनेषु च पुण्येषु बर्हिणेषु वरेषु च ॥ ११ ॥

युधिष्ठिरसे पूजा ग्रहण करके वे सब-के-सब मोरपंखके बने हुए पवित्र एवं श्रेष्ठ आसनोंपर विराजमान हुए ॥ ११॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु स तु राजा महामतिः ।
पाण्डुपुत्रैः परिवृतो निषसाद कुरूद्वह ॥ १२ ॥

कुरुश्रेष्ठ ! उन सबके बैठ जानेपर पाण्डवोंसे घिरे हुए परम बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र बैठे ॥ १२ ॥

गान्धारी चैव कुन्ती च द्रौपदी सात्वती तथा ।
स्त्रियश्चान्यास्तथान्याभिः सहोपविविशुस्ततः ॥ १३ ॥

गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा दूसरी स्त्रियाँ अन्य स्त्रियोंके साथ आसपास ही एक साथ बैठ गयीं ॥१३॥

तेषां तत्र कथा दिव्या धर्मिष्ठाश्चाभवन् नृप ।
ऋषीणां च पुराणानां देवासुरविमिश्रिताः ॥ १४ ॥

नरेश्वर ! उस समय उन लोगोंमें धर्मसे सम्बन्ध रखने- वाली दिव्य कथाएँ होने लगीं । प्राचीन ऋषियों तथा देव- ताओं और असुरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली चर्चाएँ छिड़ गयीं ॥

ततः कथान्ते व्यासस्तं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठः पुनरेव स तद् वचः ॥ १५ ॥
प्रीयमाणो महातेजाः सर्ववेदविदां वरः ।

बातचीतके अन्तमें सम्पूर्ण वेदवेत्ताओं और वक्ताओंमें

श्रेष्ठ महातेजस्वी महर्षि व्यासजीने प्रसन्न होकर प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रसे पुनः वही बात कही ॥ १५½ ॥

विदितं मम राजेन्द्र यत् ते हृदि विवक्षितम् ॥ १६ ॥
दह्यमानस्य शोकेन तव पुत्रकृतेन वै ।

'राजेन्द्र ! तुम्हारे हृदयमें जो कहनेकी इच्छा हो रही है, उसे मैं जानता हूँ । तुम निरन्तर अपने मरे हुए पुत्रोंके शोकसे जलते रहते हो ॥ १६½ ॥

गान्धार्याश्चैव यद् दुःखं हृदि तिष्ठति नित्यदा ॥ १७ ॥
कुन्त्याश्च यन्महाराज द्रौपद्याश्च हृदि स्थितम् ।

'महाराज ! गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदीके हृदयमें भी जो दुःख सदा बना रहता है, वह भी मुझे ज्ञात है ॥ १७½ ॥

यच्च धारयते तीव्रं दुःखं पुत्रविनाशजम् ॥ १८ ॥
सुभद्रा कृष्णभगिनी तच्चापि विदितं मम ।

'श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्रा अपने पुत्र अभिमन्युके मारे जानेका जो दुःसह दुःख हृदयमें धारण करती है, वह भी मुझसे अज्ञात नहीं है ॥ १८½ ॥

श्रुत्वा समागममिमं सर्वेषां वस्तुतो नृप ॥ १९ ॥
संशयच्छेदनार्थाय प्राप्तः कौरवनन्दन ।

'कौरवनन्दन ! नरेश्वर ! वास्तवमें तुम सब लोगोंका यह समागम सुनकर तुम्हारे मानसिक संदेहोंका निवारण करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ ॥ १९½ ॥

इमे च देवगन्धर्वाः सर्वे चेमे महर्षयः ॥ २० ॥
पश्यन्तु तपसो वीर्यमद्य मे चिरसम्भृतम् ।

'ये देवता, गन्धर्व और महर्षि सब लोग आज मेरी चिरसंचित तपस्याका प्रभाव देखें ॥ २०½ ॥

तदुच्यतां महाप्राज्ञ कं कामं प्रददामि ते ॥ २१ ॥
प्रवणोऽस्मि वरं दातुं पश्य मे तपसः फलम् ।

'महाप्राज्ञ नरेश ! बोलो, मैं तुम्हें कौन-सा अभीष्ट मनोरथ प्रदान करूँ ? आज मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वर देनेको तैयार हूँ । तुम मेरी तपस्याका फल देखो' ॥ २१½ ॥

एवमुक्तः स राजेन्द्रो व्यासेनामितबुद्धिना ॥ २२ ॥
मुहूर्तमिव संचिन्त्य वचनायोपचक्रमे ।

अमित बुद्धिमान् महर्षि व्यासके ऐसा कहनेपर महाराज धृतराष्ट्रने दो घड़ीतक विचार करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ २२½ ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतश्च सफलं जीवितं च मे ॥ २३ ॥
यन्मे समागमोऽद्येह भवद्भिः सह साधुभिः ।

'भगवन् ! आज मैं धन्य हूँ, आपलोगोंकी कृपाका पात्र हूँ तथा मेरा यह जीवन भी सफल है; क्योंकि आज यहाँ आप-जैसे साधु-महात्माओंका समागम मुझे प्राप्त हुआ है २३½

अद्य चाप्यवगच्छामि गतिमिष्टामिहात्मनः ॥ २४ ॥
ब्रह्मकल्पैर्भवद्भिर्यत् समेतोऽहं तपोधनाः ।

'तपोधनो ! आप ब्रह्मतुल्य महात्माओंका जो संग मुझे प्राप्त हुआ उससे मैं समझता हूँ कि यहाँ अपने लिये अभीष्ट गति मुझे प्राप्त हो गयी ॥ २४½ ॥

दर्शनादेव भवतां पूतोऽहं नात्र संशयः ॥ २५ ॥
विद्यते न भयं चापि परलोकान्ममानघाः ।

'इसमें संदेह नहीं कि मैं आपलोगोंके दर्शनमात्रसे पवित्र हो गया । निष्पाप महर्षियो ! अब मुझे परलोकसे कोई भय नहीं है ॥ २५½ ॥

किं तु तस्य सुदुर्बुद्धेर्मन्दस्यापनयैर्भृशम् ॥ २६ ॥
दूयते मे मनो नित्यं स्मरतः पुत्रगृद्धिनः ।

'परंतु अत्यन्त खोटी बुद्धिवाले उस मन्दमति दुर्योधनके अन्यायोंसे जो मेरे सारे पुत्र मारे गये हैं, उन्हें पुत्रोंमें आसक्त रहनेवाला मैं सदा याद करता हूँ; इसलिये मेरे मनको बड़ा दुःख होता है ॥ २६½ ॥

अपापाः पाण्डवा येन निकृताः पापबुद्धिना ॥ २७ ॥
घातिता पृथिवी येन सहया सनरद्विपा ।

पापपूर्ण विचार रखनेवाले उस दुर्योधनने निरपराध पाण्डवोंको सताया तथा घोड़ों, मनुष्यों और हाथियोंसहित इस सारी पृथ्वीके वीरोंका विनाश करा डाला ॥ २७½ ॥

राजानश्च महात्मानो नानाजनपदेश्वराः ॥ २८ ॥
आगम्य मम पुत्रार्थे सर्वे मृत्युवशं गताः ।

अनेक देशोंके स्वामी महामनस्वी नरेश मेरे पुत्रकी सहायताके लिये आकर सब-के-सब मृत्युके अधीन हो गये ।

ये ते पितॄंश्च दारांश्च प्राणांश्च मनसः प्रियान् ॥ २९ ॥
परित्यज्य गताः शूराः प्रेतराजनिवेशनम् ।

वे सब शूरवीर भूपाल अपने पिताओं, पत्नियों, प्राणों और मनको प्रिय लगनेवाले भोगोंका परित्याग करके यमलोकको चले गये ॥ २९½ ॥

का नु तेषां गतिर्ब्रह्मन् मित्रार्थे ये हता मृधे ॥ ३० ॥
तथैव पुत्रपौत्राणां मम ये निहता युधि ।

'ब्रह्मन् ! जो मित्रके लिये युद्धमें मारे गये उन राजाओंकी क्या गति हुई होगी ? तथा जो रणभूमिमें वीरगतिको प्राप्त हुए हैं, उन मेरे पुत्रों और पौत्रोंको किस गतिकी प्राप्ति हुई होगी ? ॥ ३०½ ॥

दूयते मे मनोऽभीक्ष्णं घातयित्वा महाबलम् ॥ ३१ ॥
भीष्मं शान्तनवं वृद्धं द्रोणं च द्विजसत्तमम् ।

'महाबली शान्तनुनन्दन भीष्म तथा वृद्ध ब्राह्मणप्रवर द्रोणाचार्यका वध कराकर मेरे मनको बारंबार दुःसह संताप प्राप्त होता है ॥ ३१½ ॥

म पुत्रेण मूढेन पापेनाकृतबुद्धिना ॥ ३२ ॥
क्षयं नीतं कुलं दीप्तं पृथिवीराज्यमिच्छता ।

'अपवित्र बुद्धिवाले मेरे पापी एवं मूर्ख पुत्रने समस्त भूमण्डलके राज्यका लोभ करके अपने दीप्तिमान् कुलका विनाश कर डाला ॥ ३२½ ॥

एतत् सर्वमनुस्मृत्य दह्यमानो दिवानिशम् ॥ ३३ ॥
न शान्तिमधिगच्छामि दुःखशोकसमाहतः ।
इति मे चिन्तयानस्य पितः शान्तिर्न विद्यते ॥ ३४ ॥

'ये सारी बातें याद करके मैं दिन-रात जलता रहता हूँ । दुःख और शोकसे पीड़ित होनेके कारण मुझे शान्ति नहीं मिलती है । पिताजी ! इन्हीं चिन्ताओंमें पड़े-पड़े मुझे कभी शान्ति नहीं प्राप्त होती' ॥ ३३-३४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा विविधं तस्य राजर्षेः परिदेवितम् ।
पुनर्नवीकृतः शोको गान्धार्या जनमेजय ॥ ३५ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजर्षि धृतराष्ट्रका वह भाँति-भाँतिसे विलाप सुनकर गान्धारीका शोक फिरसे नया-सा हो गया ॥ ३५ ॥

कुन्त्या द्रुपदपुत्र्याश्च सुभद्रायास्तथैव च ।
तासां च वरनारीणां वधूनां कौरवस्य ह ॥ ३६ ॥

कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा कुरुराजकी उन सुन्दरी बहुओंका शोक भी फिरसे उमड़ आया ॥ ३६ ॥

पुत्रशोकसमाविष्टा गान्धारी त्विदमब्रवीत् ।
श्वशुरं बद्धनयना देवी प्राञ्जलिरुत्थिता ॥ ३७ ॥

आँखोंपर पट्टी बाँधे गान्धारी देवी श्वशुरके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं और पुत्रशोकसे संतप्त होकर इस प्रकार बोलीं ॥ ३७ ॥

षोडशेमानि वर्षाणि गतानि मुनिपुङ्गव ।
अस्य राज्ञो हतान् पुत्राञ्छोचतो न शमो विभो ॥ ३८ ॥

मुनिवर ! प्रभो ! इन महाराजको अपने मरे हुए पुत्रोंके लिये शोक करते आज सोलह वर्ष बीत गये; किंतु अबतक इन्हें शान्ति नहीं मिली ॥ ३८ ॥

पुत्रशोकसमाविष्टो निःश्वसन् ह्येष भूमिपः ।
न शेते वसतीः सर्वा धृतराष्ट्रो महामुने ॥ ३९ ॥

'महामुने ! ये भूमिपाल धृतराष्ट्र पुत्रशोकसे संतप्त हो सदा लम्बी साँस खींचते और आहें भरते रहते हैं । इन्हें रातभर कभी नींद नहीं आती ॥ ३९ ॥

लोकानन्यान् समर्थोऽसि स्रष्टुं सर्वांस्तपोबलात् ।
किमु लोकान्तरगतान् राज्ञो दर्शयितुं सुतान् ॥ ४० ॥

'आप अपने तपोबलसे इन सब लोकोंकी दूसरी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, फिर लोकान्तरमें गये हुए पुत्रोंको एक बार राजासे मिला देना आपके लिये कौन बड़ी बात है ? ॥ ४० ॥

इयं च द्रौपदी कृष्णा हतज्ञातिसुता भृशम् ।
शोचत्यतीव सर्वासां स्नुषाणां दयिता स्नुषा ॥ ४१ ॥

'यह द्रुपदकुमारी कृष्णा मुझे अपनी समस्त पुत्र-वधुओंमें सबसे अधिक प्रिय है । इस बेचारीके भाई-बन्धु और पुत्र सभी मारे गये हैं; जिससे यह अत्यन्त शोकमग्न रहा करती है॥

तथा कृष्णस्य भगिनी सुभद्रा भद्रभाषिणी ।
सौभद्रवधसंतप्ता भृशं शोचति भाविनी ॥ ४२ ॥

'सदा मङ्गलमय वचन बोलनेवाली श्रीकृष्णकी बहिन भाविनी सुभद्रा सर्वदा अपने पुत्र अभिमन्युके वधसे संतप्त हो निरन्तर शोकमें ही डूबी रहती है ॥ ४२ ॥

इयं च भूरिश्रवसो भार्या परमसम्मता ।
भर्तृव्यसनशोकार्ता भृशं शोचति भाविनी ॥ ४३ ॥
यस्यास्तु श्वशुरो धीमान् बाह्लिकः स कुरूद्वहः ।
निहतः सोमदत्तश्च पित्रा सह महारणे ॥ ४४ ॥

'ये भूरिश्रवाकी परमप्यारी पत्नी बैठी है, जो पतिकी मृत्युके शोकसे व्याकुल हो अत्यन्त दुःखमें मग्न रहती है । इसके बुद्धिमान् श्वशुर कुरुश्रेष्ठ बाह्लिक भी मारे गये हैं । भूरिश्रवाके पिता सोमदत्त भी अपने पिताके साथ ही उस महासमरमें वीरगतिको प्राप्त हुए थे ॥ ४३–४४ ॥

श्रीमतोऽस्य महाबुद्धेः संग्रामेष्वपलायिनः ।
पुत्रस्य ते पुत्रशतं निहतं यद् रणाजिरे ॥ ४५ ॥
तस्य भार्याशतमिदं दुःखशोकसमाहतम् ।
पुनः पुनर्वर्धयानं शोकं राज्ञो ममैव च ॥ ४६ ॥
तेनारम्भेण महता मामुपास्ते महामुने ।

'आपके पुत्र, संग्राममें कभी पीठ न दिखानेवाले, परम बुद्धिमान् जो ये श्रीमान् महाराज हैं, इनके जो सौ पुत्र समराङ्गणमें मारे गये थे, उनकी ये सौ स्त्रियाँ बैठी हैं । ये मेरी बहुएँ दुःख और शोकके आघात सहन करती हुई मेरे और महाराजके भी शोकको बारंबार बढ़ा रही हैं । महामुने ! ये सब-की-सब शोकके महान् आवेगसे रोती हुई मुझे ही घेरकर बैठी रहती हैं ॥

ये च शूरा महात्मानः श्वशुरा मे महारथाः ॥ ४७ ॥
सोमदत्तप्रभृतयः का नु तेषां गतिः प्रभो ।

'प्रभो ! जो मेरे महामनस्वी श्वशुर शूरवीर महारथी सोमदत्त आदि मारे गये हैं, उन्हें कौन-सी गति प्राप्त हुई है ?॥

तव प्रसादाद् भगवन् विशोकोऽयं महीपतिः ॥ ४८ ॥
यथा स्याद् भविता चाहं कुन्ती चेयं वधूस्तव ।

'भगवन् ! आपके प्रसादसे ये महाराज, मैं और आपकी बहू कुन्ती—ये सब-के-सब जैसे भी शोकरहित हो जायँ, ऐसी कृपा कीजिये ॥ ४८½ ॥

इत्युक्तवत्यां गान्धार्यां कुन्ती व्रतकृशानना ॥ ४९ ॥
प्रच्छन्नजातं पुत्रं तं सस्मारादित्यसंनिभम् ।

जब गान्धारीने इस प्रकार कहा, तब व्रतसे दुर्बल मुखवाली कुन्तीने गुप्तरूपसे उत्पन्न हुए अपने सूर्यतुल्य तेजस्वी पुत्र कर्णका स्मरण किया ॥ ४९½ ॥

तामृषिर्वरदो व्यासो दूरश्रवणदर्शनः ॥ ५० ॥
अपश्यद् दुःखितां देवीं मातरं सव्यसाचिनः ।

दूरतककी देखने-सुनने और समझनेवाले वरदायक ऋषि व्यासने अर्जुनकी माता कुन्तीदेवीको दुःखमें डूबी हुई देखा ॥ ५०½ ॥

तामुवाच ततो व्यासो यत् ते कार्यं विवक्षितम् ॥ ५१
तद् ब्रूहि त्वं महाभागे यत् ते मनसि वर्तते ।

तब भगवान् व्यासने उनसे कहा—'महाभागे ! तु किसी कार्यके लिये यदि कुछ कहनेकी इच्छा हो, तुम मनमें यदि कोई बात उठी हो, तो उसे कहो ॥ ५१½ ॥

श्वशुराय ततः कुन्ती प्रणम्य शिरसा तदा ॥ ५२
उवाच वाक्यं सव्रीडा विवृण्वाना पुरातनम् ॥ ५३

तब कुन्तीने मस्तक झुकाकर श्वशुरको प्रणाम किया लज्जित हो प्राचीन गुप्त रहस्यको प्रकट करते कहा ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि धृतराष्ट्रादिकृतप्रार्थने एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें धृतराष्ट्र आदिकी की हुई प्रार्थनाविषयक उन्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

कुन्तीका कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताना और व्यासजीका उन्हें सान्त्वना देना

कुन्त्युवाच

भगवञ्श्वशुरो मेऽसि दैवतस्यापि दैवतम् ।
स मे देवातिदेवस्त्वं शृणु सत्यां गिरं मम ॥ १ ॥

कुन्ती बोली—भगवन् ! आप मेरे श्वशुर हैं, मेरे देवताके भी देवता हैं; अतः मेरे लिये देवताओंसे भी बढ़कर हैं (आज मैं आपके सामने अपने जीवनका एक गुप्त रहस्य प्रकट करती हूँ) । मेरी यह सच्ची बात सुनिये ॥ १ ॥

तपस्वी कोपनो विप्रो दुर्वासा नाम मे पितुः ।
भिक्षामुपागतो भोक्तुं तमहं पर्यतोषयम् ॥ २ ॥

एक समयकी बात है, परम क्रोधी तपस्वी ब्राह्मण दुर्वासा मेरे पिताके यहाँ भिक्षाके लिये आये थे । मैंने उन्हें अपने द्वारा की गयी सेवाओंसे संतुष्ट कर लिया ॥ २ ॥

शौचेन त्वागसस्त्यागैः शुद्धेन मनसा तथा ।
कोपस्थानेष्वपि महत्स्वकुप्यन्न कदाचन ॥ ३ ॥

मैं शौचाचारका पालन करती, अपराधसे बची रहती और शुद्ध हृदयसे उनकी आराधना करती थी । क्रोधके बड़े-से-बड़े कारण उपस्थित होनेपर भी मैंने कभी उनपर क्रोध नहीं किया ॥ ३ ॥

स प्रीतो वरदो मेऽभूत् कृतकृत्यो महामुनिः ।
अवश्यं ते गृहीतव्यमिति मां सोऽब्रवीद् वचः ॥ ४ ॥

इससे वे वरदायक महामुनि मुझपर बहुत प्रसन्न हुए । जब उनका कार्य पूरा हो गया तब वे बोले—'तुम्हें मेरा दिया हुआ वरदान अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा' ॥ ४ ॥

ततः शापभयाद् विप्रमवोचं पुनरेव तम् ।
एवमस्त्विति च प्राह पुनरेव स मे द्विजः ॥ ५

उनकी बात सुनकर मैंने शापके भयसे पुनः उन ब्रह्म कहा—'भगवन् ! ऐसा ही हो ।' तब वे ब्राह्मणदेवता मुझसे बोले—॥ ५ ॥

धर्मस्य जननी भद्रे भवित्री त्वं शुभानने ।
वशे स्थास्यन्ति ते देवा यांस्त्वमावाहयिष्यसि ॥ ६

'भद्रे ! तुम धर्मकी जननी होओगी । शुभानने ! तु जिन देवताओंका आवाहन करोगी वे तुम्हारे वशमें हो जायँगे।

इत्युक्त्वान्तर्हितो विप्रस्ततोऽहं विस्मिताभवम् ।
न च सर्वास्ववस्थासु स्मृतिर्मे विप्रणश्यति ॥ ७

यों कहकर वे ब्रह्मर्षि अन्तर्धान हो गये । उस सम मैं वहाँ आश्चर्यसे चकित हो गयी । किसी भी अवस्थामें उनक बात मुझे भूलती नहीं थी ॥ ७ ॥

अथ हर्म्यतलस्थाहं रविमुद्यन्तमीक्षती ।
संस्मृत्य तदृषेर्वाक्यं स्पृहयन्ती दिवानिशम् ॥ ८

एक दिन जब मैं अपने महलकी छतपर खड़ी थी, उग हुए सूर्यपर मेरी दृष्टि पड़ी । महर्षि दुर्वासाके वचनोंका स्मरण करके मैं दिन-रात सूर्यदेवको चाहने लगी ॥ ८ ॥

स्थिताऽहं बालभावेन तत्र दोषमबुद्ध्यती ।
अथ देवः सहस्रांशुर्मत्समीपगतोभवत् ॥ ९ ॥

उस समय मैं बाल-स्वभावसे युक्त थी । सूर्यदेवके आगमनसे किस दोषकी प्राप्ति होगी, इसे मैं नहीं समझ सकी ।

इधर मेरे आवाहन करते ही भगवान् सूर्य पास आकर खड़े हो गये ॥ ९ ॥

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहं भूमौ च गगनेऽपि च ।
तताप लोकानेकेन द्वितीयेनागमत् स माम् ॥ १० ॥

वे अपने दो शरीर बनाकर एकसे आकाशमें रहकर सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करने लगे और दूसरेसे पृथ्वीपर मेरे पास आ गये ॥ १० ॥

स मामुवाच वेपन्तीं वरं मत्तो वृणीष्व ह ।
गम्यतामिति तं चाहं प्रणम्य शिरसावदम् ॥ ११ ॥

मैं उन्हें देखते ही काँपने लगी । वे बोले—'देवि ! मुझसे कोई वर माँगो ।' तब मैंने सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'कृपया यहाँसे चले जाइये ॥'

स मामुवाच तिग्मांशुर्वृथाऽऽह्वानं न मे क्षमम् ।
धक्ष्यामि त्वां च विप्रं च येन दत्तो वरस्तव ॥ १२ ॥

तब उन प्रचण्डरश्मि सूर्यने मुझसे कहा—'मेरा आवाहन व्यर्थ नहीं हो सकता । तुम कोई-न-कोई वर अवश्य माँग लो अन्यथा मैं तुमको और जिसने तुम्हें वर दिया है, उस ब्राह्मणको भी भस्म कर डालूँगा' ॥ १२ ॥

तमहं रक्षती विप्रं शापादनपकारिणम् ।
पुत्रो मे त्वत्समो देव भवेदिति ततोऽब्रवम् ॥ १३ ॥
ततो मां तेजसाऽऽविश्य मोहयित्वा च भानुमान् ।
उवाच भविता पुत्रस्तवेत्यभ्यगमद् दिवम् ॥ १४ ॥

तब मैं उन निरपराध ब्राह्मणको शापसे बचाती हुई बोली—'देव ! मुझे आपके समान पुत्र प्राप्त हो ।' इतना कहते ही सूर्यदेव मुझे मोहित करके अपने तेजके द्वारा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो गये । तत्पश्चात् बोले—'तुम्हें एक तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा ।' ऐसा कहकर वे आकाशमें चले गये ॥

ततोऽहमन्तर्भवने पितुर्वृत्तान्तरक्षिणी ।
गूढोत्पन्नं सुतं बालं जले कर्णमवासृजम् ॥ १५ ॥

तबसे मैं इस वृत्तान्तको पिताजीसे छिपाये रखनेके लिये महलके भीतर ही रहने लगी और जब गुप्तरूपसे बालक उत्पन्न हुआ तो उसे मैंने पानीमें बहा दिया । वही मेरा पुत्र कर्ण था॥

नूनं तस्यैव देवस्य प्रसादात् पुनरेव तु ।
कन्याहमभवं विप्र यथा प्राह स मामृषिः ॥ १६ ॥

विप्रवर ! उसके जन्मके बाद पुनः उन्हीं भगवान् सूर्यकी कृपासे मैं कन्याभावको प्राप्त हो गयी । जैसा कि उन महर्षिने कहा था, वैसा ही हुआ ॥ १६ ॥

स मया मूढया पुत्रो ज्ञायमानोऽप्युपेक्षितः ।
तन्मां दहति विप्रर्षे यथा सुविदितं तव ॥ १७ ॥

ब्रह्मर्षे ! मुझ मूढ़ नारीने अपने पुत्रको पहचान लिया तो भी उसकी उपेक्षा कर दी । यह भूल मुझे शोकाग्निसे दग्ध करती रहती है । आपको तो यह बात अच्छी तरह ज्ञात ही है ॥ १७ ॥

यदि पापमपापं वा तवैतद् विवृतं मया ।
तन्मे दहन्तं भगवन् व्यपनेतुं त्वमर्हसि ॥ १८ ॥

भगवन् ! मेरा यह कार्य पाप हो या पुण्य, मैंने इसे आपके सामने प्रकट कर दिया । आप मेरे उस दाहक शोकको दूर कर दें ॥ १८ ॥

यच्चास्य राज्ञो विदितं हृदिस्थं भवतोऽनघ ।
तं चायं लभतां काममद्यैव मुनिसत्तम ॥ १९ ॥

निष्पाप मुनिश्रेष्ठ ! इन महाराजके हृदयमें जो बात है, वह भी आपको विदित ही है । ये अपने मनोरथको आज ही प्राप्त करें, ऐसी कृपा कीजिये ॥ १९ ॥

इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं व्यासो वेदविदां वरः ।
साधु सर्वमिदं भाव्यमेवमेतद् यथाऽऽत्थ माम् ॥ २० ॥

कुन्तीके इस प्रकार कहनेपर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षि व्यासने कहा—'बेटी ! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है, ऐसी ही होनहार थी ॥ २० ॥

अपराधश्च ते नास्ति कन्याभावं गता ह्यसि ।
देवाश्चैश्वर्यवन्तो वै शरीराण्याविशन्ति वै ॥ २१ ॥

'इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है; क्योंकि उस समय तुम अभी कुमारी बालिका थी । देवतालोग अणिमा आदि ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होते हैं; अतः दूसरेके शरीरोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ २१ ॥

सन्ति देवनिकायाश्च संकल्पाज्जनयन्ति ये ।
वाचा दृष्ट्या तथा स्पर्शात् संघर्षेणेति पञ्चधा ॥ २२ ॥

'बहुत-से ऐसे देवसमुदाय हैं, जो संकल्प, वचन, दृष्टि, स्पर्श तथा समागम—इन पाँचों प्रकारोंसे पुत्र उत्पन्न करते हैं॥

मनुष्यधर्मो दैवेन धर्मेण हि न दुष्यति ।
इति कुन्ति विजानीहि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २३ ॥

'कुन्ती ! देवधर्मके द्वारा मनुष्यधर्म दूषित नहीं होता, इस बातको जान लो । अब तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ २३ ॥

सर्वं बलवतां पथ्यं सर्वं बलवतां शुचि ।
सर्वं बलवतां धर्मः सर्वं बलवतां स्वकम् ॥ २४ ॥

'बलवानोंका सब कुछ ठीक या लाभदायक है । बलवानोंका सारा कार्य पवित्र है । बलवानोंका सब कुछ धर्म है और बलवानोंके लिये सारी वस्तुए अपनी हैं' ॥ २४ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि व्यासकुन्तीसंवादे त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें व्यास और कुन्तीका संवादविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीके द्वारा धृतराष्ट्र आदिके पूर्वजन्मका परिचय तथा उनके कहनेसे सब लोगोंका गङ्गा-तटपर जाना

व्यास उवाच

भद्रे द्रक्ष्यसि गान्धारि पुत्रान् भ्रातॄन् सखींस्तथा।
वधूश्च पतिभिः सार्धं निशि सुप्तोत्थिता इव ॥ १ ॥

व्यासजीने कहा—भद्रे गान्धारि ! आज रातमें तुम अपने पुत्रों, भाइयों और उनके मित्रोंको देखोगी। तुम्हारी वधुएँ तुम्हें पतियोंके साथ-साथ सोकर उठी हुई-सी दिखायी देंगी ॥ १ ॥

कर्णं द्रक्ष्यति कुन्ती च सौभद्रं चापि यादवी।
द्रौपदी पञ्च पुत्रांश्च पितॄन् भ्रातॄंस्तथैव च ॥ २ ॥

कुन्ती कर्णको, सुभद्रा अभिमन्युको तथा द्रौपदी पाँचों पुत्रोंको, पिताको और भाइयोंको भी देखेगी ॥ २ ॥

पूर्वमेवैष हृदये व्यवसायोऽभवन्मम।
यदास्मि चोदितो राज्ञा भवत्या पृथयैव च ॥ ३ ॥

जब राजा धृतराष्ट्रने, तुमने और कुन्तीने भी मुझे इसके लिये प्रेरित किया था, उससे पहले ही मेरे हृदयमें यह (मृत व्यक्तियोंके दर्शन करानेका) निश्चय हो गया था ॥ ३ ॥

न ते शोच्या महात्मानः सर्व एव नरर्षभाः।
क्षत्रधर्मपराः सन्तस्तथा हि निधनं गताः ॥ ४ ॥

तुम्हें क्षत्रिय-धर्मपरायण होकर तदनुसार ही वीरगतिको प्राप्त हुए उन समस्त महामनस्वी, नरश्रेष्ठ वीरोंके लिये कदापि शोक नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

भवितव्यमवश्यं तत् सुरकार्यमनिन्दिते।
अवतेरुस्ततः सर्वे देवभागा महीतलम् ॥ ५ ॥

सती-साध्वी देवि ! यह देवताओंका कार्य था और इसी रूपमें अवश्य होनेवाला था; इसलिये सभी देवताओंके अंश इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे ॥ ५ ॥

गन्धर्वाप्सरसश्चैव पिशाचा गुह्यराक्षसाः।
तथा पुण्यजनाश्चैव सिद्धा देवर्षयोऽपि च ॥ ६ ॥
देवाश्च दानवाश्चैव तथा देवर्षयोऽमलाः।
त एते निधनं प्राप्ताः कुरुक्षेत्रे रणाजिरे ॥ ७ ॥

गन्धर्व, अप्सरा, पिशाच, गुह्यक, राक्षस, पुण्यजन, सिद्ध, देवर्षि, देवता, दानव तथा निर्मल देवर्षिगण—ये सभी यहाँ अवतार लेकर कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें वधको प्राप्त हुए हैं॥

गन्धर्वराजो यो धीमान् धृतराष्ट्र इति श्रुतः।
स एव मानुषे लोके धृतराष्ट्रः पतिस्तव ॥ ८ ॥

गन्धर्वोंके लोकमें जो बुद्धिमान् गन्धर्वराज धृतराष्ट्रके नामसे विख्यात हैं, वे ही मनुष्यलोकमें तुम्हारे पति धृतराष्ट्रके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ८ ॥

पाण्डुं मरुद्गणाद् विद्धि विशिष्टतममच्युतम्।
धर्मस्यांशोऽभवत् क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः॥ ९ ॥

अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले राजा पाण्डुको तुम मरुद्गणोंसे भी श्रेष्ठतम समझो। विदुर धर्मके अंश थे। राजा युधिष्ठिर भी धर्मके ही अंश हैं ॥ ९ ॥

कलिं दुर्योधनं विद्धि शकुनिं द्वापरं तथा।
दुःशासनादीन् विद्धि त्वं राक्षसाञ्शुभदर्शने ॥ १० ॥

दुर्योधनको कलियुग समझो और शकुनिको द्वापर। शुभदर्शने ! अपने दुःशासन आदि पुत्रोंको राक्षस जानो ॥

मरुद्गणाद् भीमसेनं बलवन्तमरिंदमम्।
विद्धि त्वं तु नरमृषिमिमं पार्थं धनंजयम् ॥ ११ ॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले बलवान् भीमसेनको मरुद्गणों-के अंशसे उत्पन्न मानो। इन कुन्तीपुत्र धनंजयको तुम पुरातन ऋषि 'नर' समझो ॥ ११ ॥

नारायणं हृषीकेशमश्विनौ यमजौ तथा।
यः स वैरार्थमुद्भूतः संघर्षजननस्तथा।
तं कर्णं विद्धि कल्याणि भास्करं शुभदर्शने ॥ १२ ॥
यश्च पाण्डवदायादो हतः षड्भिर्महारथैः।
स सोम इह सौभद्रो योगादेवाभवद् द्विधा ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण नारायण ऋषिके अवतार हैं। नकुल और सहदेव दोनोंको अश्विनीकुमार समझो। कल्याणि ! जो केवल वैर बढ़ानेके लिये उत्पन्न हुआ था और कौरव-पाण्डवोंमें संघर्ष पैदा करानेवाला था, उस कर्णको सूर्य समझो। जिस पाण्डवपुत्रको छः महारथियोंने मिलकर मारा था, उस सुभद्राकुमार अभिमन्युके रूपमें साक्षात् चन्द्रमा ही इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। वे अपने योगबलसे दो रूपोंमें प्रकट हो गये थे (एक रूपसे चन्द्रलोकमें रहते थे और दूसरेसे भूतलपर) ॥ १२-१३ ॥

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमादित्यं तपतां वरम्।
लोकांश्च तापयानं वै विद्धि कर्णं च शोभने ॥ १४ ॥

शोभने ! तपनेवालोंमें श्रेष्ठ सूर्यदेव अपने शरीरके दो भाग करके एकसे सम्पूर्ण लोकोंको ताप देते रहे और दूसरे भागसे कर्णके रूपमें अवतीर्ण हुए। इस तरह कर्णको तुम सूर्यरूप जानो ॥ १४ ॥

द्रौपद्या सह सम्भूतं धृष्टद्युम्नं च पावकात्।
अग्नेर्भागं शुभं विद्धि राक्षसं तु शिखण्डिनम् ॥ १५ ॥

तुम्हें यह भी ज्ञात होना चाहिये कि जो द्रौपदीके साथ अग्निसे प्रकट हुआ था, वह धृष्टद्युम्न अग्निका शुभ अंश था और शिखण्डीके रूपमें एक राक्षसने अवतार लिया था ॥ १५ ॥

द्रोणं बृहस्पतेर्भागं विद्धि द्रौणिं च रुद्रजम् ।
भीष्मं च विद्धि गाङ्गेयं वसुं मानुषतां गतम् ॥ १६ ॥

द्रोणाचार्यको बृहस्पतिका और अश्वत्थामाको रुद्रका अंश जानो । गङ्गापुत्र भीष्मको मनुष्ययोनिमें अवतीर्ण हुआ एक वसु समझो ॥ १६ ॥

एवमेते महाप्राज्ञे देवा मानुष्यमेत्य हि ।
ततः पुनर्गताः स्वर्गं कृते कर्मणि शोभने ॥ १७ ॥

महाप्राज्ञे ! शोभने ! इस प्रकार ये देवता कार्यवश मानव-शरीरमें जन्म ले अपना काम पूरा कर लेनेपर पुनः स्वर्गलोकको चले गये हैं ॥ १७ ॥

यच्च वै हृदि सर्वेषां दुःखमेतच्चिरं स्थितम् ।
तदद्य व्यपनेष्यामि परलोककृताद् भयात् ॥ १८ ॥

तुम सब लोगोंके हृदयमें इनके लिये पारलौकिक भयके कारण जो चिरकालसे दुःख भरा हुआ है, उसे आज दूर कर दूँगा ॥ १८ ॥

सर्वे भवन्तो गच्छन्तु नदीं भागीरथीं प्रति ।
तत्र द्रक्ष्यथ तान् सर्वान् ये हतास्तत्र संयुगे ॥ १९ ॥

इस समय तुम सब लोग गङ्गाजीके तटपर चलो । वहीं सबको समराङ्गणमें मारे गये अपने सभी सम्बन्धियोंके दर्शन होंगे ॥ १९ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति व्यासस्य वचनं श्रुत्वा सर्वो जनस्तदा ।
महता सिंहनादेन गङ्गामभिमुखो ययौ ॥ २० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! महर्षि व्यासका यह वचन सुनकर सब लोग महान् सिंहनाद करते हुए प्रसन्नतापूर्वक गङ्गातटकी ओर चल दिये ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रश्च सामात्यः प्रययौ सह पाण्डवैः ।
सहितो मुनिशार्दूलैर्गन्धर्वैश्च समागतैः ॥ २१ ॥

राजा धृतराष्ट्र अपने मन्त्रियों, पाण्डवों, मुनिवरों तथा वहाँ आये हुए गन्धर्वोंके साथ गङ्गाजीके समीप गये ॥ २१ ॥

ततो गङ्गां समासाद्य क्रमेण स जनार्णवः ।
निवासमकरोत् सर्वो यथाप्रीति यथासुखम् ॥ २२ ॥

क्रमशः वह सारा जनसमुद्र गङ्गातटपर जा पहुँचा और सब लोग अपनी-अपनी रुचि तथा सुख-सुविधाके अनुसार जहाँ-तहाँ ठहर गये ॥ २२ ॥

राजा च पाण्डवैः सार्धमिष्टे देशे सहानुगः ।
निवासमकरोद् धीमान् सस्त्रीवृद्धपुरःसरः ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र स्त्रियों और वृद्धोंको आगे करके पाण्डवों तथा सेवकोंके साथ वहाँ अभीष्ट स्थानमें ठहरे ॥ २३ ॥

जगाम तदहश्चापि तेषां वर्षशतं यथा ।
निशां प्रतीक्षमाणानां दिदृक्षूणां मृतान् नृपान् ॥ २४ ॥

मृत राजाओंको देखनेकी इच्छासे सभी लोग वहाँ रात होनेकी प्रतीक्षा करते रहे; अतः वह दिन उनके लिये सौ वर्षोंके समान जान पड़ा तो भी वह धीरे-धीरे बीत ही गया ॥ २४ ॥

अथ पुण्यं गिरिवरमस्तमभ्यगमद् रविः ।
ततः कृताभिषेकास्ते नैशं कर्म समाचरन् ॥ २५ ॥

तदनन्तर सूर्यदेव परम पवित्र अस्ताचलको जा पहुँचे । उस समय सब लोग स्नान करके सायंकालोचित संध्यावन्दन आदि कर्म करने लगे ॥ २५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि गङ्गातीरगमने एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें सबका गङ्गातीरपर गमनविषयक एकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीके प्रभावसे कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये कौरव-पाण्डववीरोंका गङ्गाजीके जलसे प्रकट होना

वैशम्पायन उवाच

ततो निशायां प्राप्तायां कृतसायाह्निकक्रियाः ।
व्यासमभ्यगमन् सर्वे ये तत्रासन् समागताः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर जब रात होनेको आयी, तब जो लोग वहाँ आये थे, वे सब सायंकालोचित नित्य-नियम पूर्ण करके भगवान् व्यासके समीप गये ॥ १ ॥

धृतराष्ट्रस्तु धर्मात्मा पाण्डवैः सहितस्तदा ।
शुचिरेकमना सार्धमृषिभिस्तैरुपाविशत् ॥ २ ॥
गान्धार्या सह नार्यस्तु सहिताः समुपाविशन् ।
पौरजानपदश्चापि जनः सर्वो यथावयः ॥ ३ ॥

पाण्डवोंसहित धर्मात्मा धृतराष्ट्र पवित्र एवं एकाग्रचित्त हो उन ऋषियोंके साथ व्यासजीके निकट जा बैठे । कुरुकुलकी सारी स्त्रियाँ एक साथ हो गान्धारीके समीप बैठ

गयीं तथा नगर और जनपदके निवासी भी अवस्थाके अनुसार यथास्थान विराजमान हो गये ॥ २-३ ॥

ततो व्यासो महातेजाः पुण्यं भागीरथीजलम् ।
अवगाह्याजुहावाथ सर्वान् लोकान् महामुनिः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् महातेजस्वी महामुनि व्यासजीने भागीरथीके पवित्र जलमें प्रवेश करके पाण्डव तथा कौरवपक्षके सब लोगोंका आवाहन किया ॥ ४ ॥



पाण्डवानां च ये योधाः कौरवाणां च सर्वशः ।
राजानश्च महाभागा नानादेशनिवासिनः ॥ ५ ॥

पाण्डवों तथा कौरवोंके पक्षमें जो नाना देशोंके निवासी महाभाग नरेश योद्धा बनकर आये थे, उन सबका व्यासजीने आह्वान किया ॥ ५ ॥

ततः सुतुमुलः शब्दो जलान्ते जनमेजय ।
प्रादुरासीद् यथापूर्वं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ६ ॥

जनमेजय ! तदनन्तर जलके भीतरसे कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका पहले-जैसा ही भयङ्कर शब्द प्रकट होने लगा ॥ ६ ॥

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
ससैन्याः सलिलात् तस्मात् समुत्तस्थुः सहस्रशः ॥

फिर तो भीष्म-द्रोण आदि समस्त राजा अपनी सेनाओंके साथ सहस्रोंकी संख्यामें उस जलसे बाहर निकलने लगे ॥ ७ ॥

विराटद्रुपदौ चैव सहपुत्रौ ससैनिकौ ।
द्रौपदेयाश्च सौभद्रो राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ८ ॥

पुत्रों और सैनिकोंसहित विराट और द्रुपद पानीसे बाहर आये । द्रौपदीके पाँचों पुत्र, अभिमन्यु तथा राक्षस घटोत्कच—ये सभी जलसे प्रकट हो गये ॥ ८ ॥

कर्णदुर्योधनौ चैव शकुनिश्च महारथः ।
दुःशासनादयश्चैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः ॥ ९ ॥
जारासंधिर्भगदत्तो जलसंधश्च वीर्यवान् ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो वृषसेनश्च सानुजः ॥ १० ॥
लक्ष्मणो राजपुत्रश्च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजाः ।
शिखण्डिपुत्राः सर्वे च धृष्टकेतुश्च सानुजः ॥ ११ ॥
अचलो वृषकश्चैव राक्षसश्चाप्यलायुधः ।
वाह्लिकः सोमदत्तश्च चेकितानश्च पार्थिवः ॥ १२ ॥
एते चान्ये च बहवो बहुत्वाद् ये न कीर्तिताः ।
सर्वे भासुरदेहास्ते समुत्तस्थुर्जलात्ततः ॥ १३ ॥

कर्ण, दुर्योधन, महारथी, शकुनि, धृतराष्ट्रके पुत्र महाबली दुःशासन आदि, जरासन्धकुमार सहदेव, भगदत्त, पराक्रमी जलसन्ध, भूरिश्रवा, शल, शल्य, भाइयोंसहित वृषसेन, राजकुमार लक्ष्मण, धृष्टद्युम्नके पुत्र, शिखण्डीके सभी पुत्र, भाइयोंसहित धृष्टकेतु, अचल, वृषक, राक्षस अलायुध, राजा वाह्लिक, सोमदत्त और चेकितान—ये तथा दूसरे बहुत-से क्षत्रियवीर, जो संख्यामें अधिक होनेके कारण नाम लेकर नहीं बताये गये हैं, सभी देदीप्यमान शरीर धारण करके उस जलसे प्रकट हुए ॥ ९-१३ ॥

यस्य वीरस्य यो वेषो यो ध्वजो यच्च वाहनम् ।
तेन तेन व्यदृश्यन्त समुपेता नराधिपाः ॥ १४ ॥
दिव्याम्बरधराः सर्वे सर्वे भ्राजिष्णुकुण्डलाः ।
निर्वैरा निरहंकारा विगतक्रोधमत्सराः ॥ १५ ॥

जिस वीरका जैसा वेष, जैसी ध्वजा और जैसा वाहन था, वह उसीसे युक्त दिखायी दिया । वहाँ प्रकट हुए सभी नरेश दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे । सबके कानोंमें चमकीले कुण्डल शोभा पाते थे । उस समय वे वैर, अहंकार, क्रोध और मात्सर्य छोड़ चुके थे ॥ १४-१५ ॥

गन्धर्वैरुपगीयन्तः स्तूयमानाश्च वन्दिभिः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा वृताश्चाप्सरसां गणैः ॥ १६ ॥

गन्धर्व उनके गुण गाते और बन्दीजन स्तुति करते थे । उन सबने दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण कर रक्खे थे और सभी अप्सराओंसे घिरे हुए थे ॥ १६ ॥

धृतराष्ट्रस्य च तदा दिव्यं चक्षुर्नराधिप ।
मुनिः सत्यवतीपुत्रः प्रीतः प्रादात् तपोबलात् ॥ १७ ॥

नरेश्वर ! उस समय सत्यवतीनन्दन मुनिवर व्यासने प्रसन्न होकर अपने तपोबलसे धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र प्रदान किये ॥ १७ ॥



व्यासजीके द्वारा कौरव-पाण्डव-पक्षके मरे हुए सम्बन्धियोंका सेनासहित परलोकसे आवाहन

दिव्यज्ञानबलोपेता गान्धारी च यशस्विनी ।
ददर्श पुत्रांस्तान् सर्वान् ये चान्येऽपि मृधे हताः ॥ १८ ॥

यशस्विनी गान्धारी भी दिव्य ज्ञानबलसे सम्पन्न हो गयी थीं । उन दोनोंने युद्धमें मारे गये अपने पुत्रों तथा अन्य सब सम्बन्धियोंको देखा ॥ १८ ॥

तदद्भुतमचिन्त्यं च सुमहल्लोमहर्षणम् ।
विस्मितः स जनः सर्वो ददर्शानिमिषेक्षणः ॥ १९ ॥

वहाँ आये हुए सब लोग आश्चर्यचकित हो एकटक दृष्टिसे उस अद्भुत, अचिन्त्य एवं अत्यन्त रोमाञ्चकारी दृश्यको देख रहे थे ॥ १९ ॥

तदुत्सवमहोदग्रं हृष्टनारीनराकुलम् ।
आश्चर्यभूतं ददृशे चित्रं पटगतं यथा ॥ २० ॥

वह हर्षोत्फुल्ल नर-नारियोंसे भरा हुआ महान् आश्चर्य-जनक उत्सव कपड़ेपर अङ्कित किये गये चित्रकी भाँति दिखायी देता था ॥ २० ॥

धृतराष्ट्रस्तु तान् सर्वान् पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।
मुमुदे भरतश्रेष्ठ प्रसादात् तस्य वै मुनेः ॥ २१ ॥

भरतश्रेष्ठ ! राजा धृतराष्ट्र मुनिवर व्यासकी कृपासे मिले हुए दिव्य नेत्रोंद्वारा अपने समस्त पुत्रों और सम्बन्धियोंको देखते हुए आनन्दमग्न हो गये ॥ २१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि भीष्मादिदर्शने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें भीष्म आदिका दर्शनविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

परलोकसे आये हुए व्यक्तियोंका परस्पर रागद्वेषसे रहित होकर मिलना और रात बीतनेपर अदृश्य हो जाना, व्यासजीकी आज्ञासे विधवा क्षत्राणियोंका गङ्गाजीमें गोता लगाकर अपने-अपने पतिके लोकको प्राप्त करना तथा इस पर्वके श्रवणकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते पुरुषश्रेष्ठाः समाजग्मुः परस्परम् ।
विगतक्रोधमात्सर्याः सर्वे विगतकल्मषाः ॥ १ ॥
विधिं परममास्थाय ब्रह्मर्षिविहितं शुभम् ।
संहृष्टमनसः सर्वे देवलोक इवामराः ॥ २ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—क्रोध और मात्सर्यसे रहित तथा पापशून्य हुए वे सभी श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्मर्षियोंकी बनायी हुई उत्तम प्रणालीका आश्रय ले एक-दूसरेसे प्रेमपूर्वक मिले । उस समय देवलोकमें रहनेवाले देवताओंकी भाँति उन सबके मनमें हर्षोल्लास छा रहा था ॥ १-२ ॥

पुत्रः पित्रा च मात्रा च
भार्याश्च पतिभिः सह ।
भ्रात्रा भ्राता सखा चैव
सख्या राजन् समागताः ॥ ३ ॥

राजन् ! पुत्र पिता-माताके साथ, स्त्री पतिके साथ, भाई भाईके साथ और मित्र मित्रके साथ मिले ॥ ३ ॥

पाण्डवास्तु महेष्वासं कर्णं सौभद्रमेव च ।
सम्प्रहर्षात् समाजग्मुर्द्रौपदेयांश्च सर्वशः ॥ ४ ॥

पाण्डव महाधनुर्धर कर्ण, सुभद्राकुमार अभिमन्यु और द्रौपदीके पाँचों पुत्र—इन सबके साथ अत्यन्त हर्षपूर्वक मिले ॥

ततस्ते प्रीयमाणा वै कर्णेन सह पाण्डवाः ।
समेत्य पृथिवीपाल सौहृद्ये च स्थिता भवन् ॥ ५ ॥

भूपाल ! तत्पश्चात् सब पाण्डवोंने कर्णसे प्रसन्नता-पूर्वक मिलकर उनके साथ सौहार्दपूर्ण बर्ताव किया ॥ ५ ॥

परस्परं समागम्य योधास्ते भरतर्षभ ।
मुनेः प्रसादात् ते ह्येवं क्षत्रिया नष्टमन्यवः ॥ ६ ॥
असौहृदं परित्यज्य सौहृदे पर्यवस्थिताः ।

भरतभूषण ! वे समस्त योद्धा एक-दूसरेसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए । इस प्रकार मुनिकी कृपासे वे सभी क्षत्रिय अपने क्रोधको भुलाकर शत्रुभाव छोड़कर परस्पर सौहार्द स्थापित करके मिले ॥ ६½ ॥

एवं समागताः सर्वे गुरुभिर्बान्धवैः सह ॥ ७ ॥
पुत्रैश्च पुरुषव्याघ्राः कुरवोऽन्ये च पार्थिवाः ।

इस तरह वे सब पुरुषसिंह कौरव तथा अन्य नरेश गुरु-जनों, बान्धवों और पुत्रोंके साथ मिले ॥ ७½ ॥

तां रात्रिमखिलामेवं विहृत्य प्रीतमानसाः ॥ ८ ॥
मेनिरे परितोषेण नृपाः स्वर्गसदो यथा ।

सारी रात एक-दूसरेके साथ घूमने-फिरनेके कारण उन सबके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी । स्वर्गवासियोंके समान ही उन्हें वहाँ परम संतोषका अनुभव हुआ ॥ ८½ ॥

नात्र शोको भयं त्रासो नारतिर्नायशोऽभवत् ॥ ९ ॥
परस्परं समागम्य योधानां भरतर्षभ ।

भरतश्रेष्ठ ! एक-दूसरेसे मिलकर उन योद्धाओंके मनमें शोक, भय, त्रास, उद्वेग और अपयशको स्थान नहीं मिला ॥

समागतास्ताः पितृभिर्भ्रातृभिः पतिभिः सुतैः ॥ १० ॥
मुदं परमिकां प्राप्य नार्यो दुःखमथात्यजन् ।

वहाँ आयी हुई स्त्रियाँ अपने पिताओं, भाइयों, पतियों और पुत्रोंसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुईं । उनका सारा दुःख दूर हो गया ॥ १०½ ॥

एकां रात्रिं विहृत्यैव ते वीरास्ताश्च योषितः ॥ ११ ॥
आमन्त्र्यान्योन्यमाश्लिष्य ततो जग्मुर्यथागतम् ।

वे वीर और उनकी वे तरुणी स्त्रियाँ एक रात साथ-साथ विहार करके अन्तमें एक-दूसरेकी अनुमति ले परस्पर गले मिलकर जैसे आये थे, उसी प्रकार चले जानेको उद्यत हुए ॥

ततो विसर्जयामास लोकांस्तान् मुनिपुङ्गवः ॥ १२ ॥
क्षणेनान्तर्हिताश्चैव प्रेक्षतामेव तेऽभवन् ।
अवगाह्य महात्मानः पुण्यां भागीरथीं नदीम् ॥ १३ ॥
सरथाः सध्वजाश्चैव स्वानि वेश्मानि भेजिरे ।

तब मुनिवर व्यासजीने उन सब लोगोंका विसर्जन कर दिया और वे महामना नरेश एक ही क्षणमें सबके देखते-देखते पुण्यसलिला भागीरथीमें गोता लगाकर अदृश्य हो गये । रथों और ध्वजाओंसहित अपने-अपने लोकोंमें चले गये ॥

देवलोकं ययुः केचित् केचिद् ब्रह्मसदस्तथा ॥ १४ ॥
केचिच्च वारुणं लोकं केचित् कौबेरमाप्नुवन् ।
ततो वैवस्वतं लोकं केचिच्चैवाप्नुवन्नृपाः ॥ १५ ॥

कोई देवलोकमें गये, कोई ब्रह्मलोकमें, कुछ वरुणलोकमें पधारे और कुछ कुबेरके लोकमें । कितने ही नरेश भगवान् सूर्यके लोकमें चले गये ॥ १४-१५ ॥

राक्षसानां पिशाचानां केचिच्चाप्युत्तरान् कुरून् ।
विचित्रगतयः सर्वे यानवाप्यामरैः सह ॥ १६ ॥
आजग्मुस्ते महात्मानः सवाहाः सपदानुगाः ।

कितने ही राक्षसों और पिशाचोंके लोकोंमें चले गये और कितने ही उत्तरकुरुमें जा पहुँचे । इस प्रकार सबको विचित्र-विचित्र गतियोंकी प्राप्ति हुई थी और वे महामना वहींसे देवताओंके साथ अपने-अपने वाहनों और अनुचरोंसहित आये थे ॥ १६½ ॥

गतेषु तेषु सर्वेषु सलिलस्थो महामुनिः ॥ १७ ॥
धर्मशीलो महातेजाः कुरूणां हितकृत् तथा ।
ततः प्रोवाच ताः सर्वाः क्षत्रिया निहतेश्वराः ॥ १८ ॥

या याः पतिकृतान् लोका-
निच्छन्ति परमस्त्रियः ।
ता जाह्नवीजलं क्षिप्र-
मवगाहन्त्वतन्द्रिताः ॥ १९ ॥

ततस्तस्य वचः श्रुत्वा श्रद्दधाना वराङ्गनाः ।
श्वशुरं समनुज्ञाप्य विविशुर्जाह्नवीजलम् ॥ २० ॥

उन सबके अदृश्य हो जानेपर कौरवोंके हितकारी महातेजस्वी धर्मशील महामुनि व्यासजीने जलमें खड़े-खड़े उन सब विधवा क्षत्राणियोंसे कहा—'देवियो ! तुम लोगोंमेंसे जो जो सती-साध्वी स्त्रियाँ अपने-अपने पतिके लोकको जाना चाहती हों, वे आलस्य त्यागकर तुरंत गङ्गाजीके जलमें गोता लगावें ।' उनकी बात सुनकर उनमें श्रद्धा रखनेवाली वे सती स्त्रियाँ अपने श्वशुर धृतराष्ट्रकी आज्ञा ले गङ्गाजीके जलमें समा गयीं ॥ १७-२० ॥

विमुक्ता मानुषैर्देहैस्ततस्ता भर्तृभिः सह ।
समाजग्मुस्तदा साध्व्यः सर्वा एव विशाम्पते ॥ २१ ॥

प्रजानाथ ! वहाँ वे सभी साध्वी स्त्रियाँ मनुष्य-शरीरसे छुटकारा पाकर अपने-अपने पतिके साथ जा मिलीं ॥ २१ ॥

एवं क्रमेण सर्वास्ताः शीलवत्यः पतिव्रताः ।
प्रविश्य क्षत्रिया मुक्ता जग्मुर्भर्तृसलोकताम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार क्रमशः वे सभी शीलवती पतिव्रता क्षत्राणियाँ इस शरीरसे मुक्त हो पतिलोकको चली गयीं ॥ २२ ॥

दिव्यरूपसमायुक्ता दिव्याभरणभूषिताः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरा यथाऽऽसां पतयस्तथा ॥ २३ ॥

जैसे उनके पति थे, उसी प्रकार वे भी दिव्यरूपसे सम्पन्न हो गयीं । दिव्य आभूषण उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाने लगे तथा उन्होंने दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण कर लिये ॥

ताः शीलगुणसम्पन्ना विमानस्था गतक्लमाः ।
सर्वाः सर्वगुणोपेताः स्वस्थानं प्रतिपेदिरे ॥ २४ ॥

शील और सद्गुणसे सम्पन्न हुई वे सभी क्षत्रियबालाएँ समस्त सद्गुणोंसे अलंकृत हो विमानपर बैठकर अपने-अपने योग्य स्थानको चली गयीं । उनका सारा कष्ट दूर हो गया ॥

यस्य यस्य तु यः कामस्तस्मिन् काले बभूव ह ।
तं तं विसृष्टवान् व्यासो वरदो धर्मवत्सलः ॥ २५ ॥

उस समय जिसके-जिसके मनमें जो-जो कामना उत्पन्न हुई, धर्मवत्सल वरदायक भगवान् व्यासने वह सब पूर्ण की ॥

तच्छ्रुत्वा नरदेवानां पुनरागमनं नराः ।
जहृषुर्मुदिताश्चासन् नानादेशगता अपि ॥ २६ ॥

संग्राममें मरे हुए राजाओंके पुनरागमनका वृत्तान्त सुनकर भिन्न-भिन्न देशके मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य और आनन्द हुआ ॥ २६ ॥

प्रियैः समागमं तेषां यः सम्यक् शृणुयान्नरः ।
प्रियाणि लभते नित्यमिह च प्रेत्य चैव सः ॥ २७ ॥

जो मनुष्य कौरव-पाण्डवोंके प्रियजन समागमका यह

[वृ]त्तान्त भलीभाँति सुनेगा, उसे इहलोक और परलोकमें भी [प्र]िय वस्तुकी प्राप्ति होगी ॥ २७ ॥

[इ]ष्टबान्धवसंयोगमनायासमनामयम् ।
[य]श्चैतच्छ्रावयेद् विद्वान् विदुषो धर्मवित्तमः ॥ २८ ॥
[स] यशः प्राप्नुयाल्लोके परत्र च शुभां गतिम् ।

इतना ही नहीं, उसे अनायास ही इष्ट बन्धुओंसे मिलन [ह]ोगा तथा कोई दुःख-शोक नहीं सतावेगा । धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ [ज]ो विद्वान् विद्वानोंको यह प्रसङ्ग सुनायेगा, वह इस लोकमें [य]श और परलोकमें शुभ गति प्राप्त करेगा ॥ २८½ ॥

स्वाध्याययुक्ता मनुजास्तपोयुक्ताश्च भारत ॥ २९ ॥
साध्वाचारा दमोपेता दाननिर्धूतकल्मषाः ।
ऋजवः शुचयः शान्ता हिंसानृतविवर्जिताः ॥ ३० ॥
आस्तिकाः श्रद्दधानाश्च धृतिमन्तश्च मानवाः ।
श्रुत्वाऽऽश्चर्यमिदं पर्व ह्यवाप्स्यन्ति परां गतिम् ॥ ३१ ॥

भारत ! जो मनुष्य स्वाध्यायपरायण, तपस्वी, सदाचारी, जितेन्द्रिय, दानके द्वारा पापरहित, सरल, शुद्ध, शान्त, हिंसा और असत्यसे दूर, आस्तिक, श्रद्धालु और धैर्यवान् हैं, वे इस आश्चर्यजनक पर्वको सुनकर उत्तम गति प्राप्त करेंगे ।२९-३१।

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि स्त्रीणां स्वस्वपतिलोकगमने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें स्त्रियोंका अपने-अपने पतिके लोकमें गमनविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मरे हुए पुरुषोंका अपने पूर्व शरीरसे ही यहाँ पुनः दर्शन देना कैसे सम्भव है, जनमेजयकी इस शङ्काका वैशम्पायनद्वारा समाधान

सौतिरुवाच

[ए]तच्छ्रुत्वा नृपो विद्वान् हृष्टोऽभूज्जनमेजयः
[प]ितामहानां सर्वेषां गमनागमनं तदा ॥ १ ॥

सौति कहते हैं—अपने समस्त पितामहोंके इस प्रकार [प]रलोकसे आने और जानेका वृत्तान्त सुनकर विद्वान् राजा जनमेजय बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

[अ]ब्रवीच्च मुदा युक्तः पुनरागमनं प्रति ।
कथं नु त्यक्तदेहानां पुनस्तद्रूपदर्शनम् ॥ २ ॥

प्रसन्न होकर वे पुनरागमनके विषयमें संदेह करते हुए [ब]ोले—'भला, जिन्होंने अपने शरीरका परित्याग कर दिया है, उन पुरुषोंका उसी रूपमें दर्शन कैसे हो सकता है ?' ॥

[इ]त्युक्तः स द्विजश्रेष्ठो व्यासशिष्यः प्रतापवान् ।
[प्र]ोवाच वदतां श्रेष्ठस्तं नृपं जनमेजयम् ॥ ३ ॥

उनके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रतापी व्यासशिष्य [व]िप्रवर वैशम्पायनने उन राजा जनमेजयसे कहा ॥ ३ ॥

वैशम्पायन उवाच

अविप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामिति निश्चयः ।
कर्मजानि शरीराणि तथैवाकृतयो नृप ॥ ४ ॥

वैशम्पायनजी बोले—नरेश्वर ! यह सिद्धान्त है कि [स]मस्त कर्मोंका फल भोग किये बिना उनका नाश नहीं होता । जीवात्माको जो शरीर और नाना प्रकारकी आकृतियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब कर्मजनित ही हैं ॥ ४ ॥

महाभूतानि नित्यानि भूताधिपतिसंश्रयात् ।
तेषां च नित्यसंवासो न विनाशो वियुज्यताम् ॥ ५ ॥

भूतनाथ भगवान्के आश्रयसे पाँचों महाभूत हमारे शरीरोंकी अपेक्षा नित्य हैं । उन नित्य महाभूतोंका अनित्य शरीरोंके साथ संसार-दशामें नित्य संयोग है । अनित्य शरीरोंका नाश होनेपर इन नित्य महाभूतोंका उनसे वियोगमात्र होता है, विनाश नहीं ॥ ५ ॥

अनायासकृतं कर्म सत्यः श्रेष्ठः फलागमः ।
आत्मा चैभिः समायुक्तः सुखदुःखमुपाश्नुते ॥ ६ ॥

कर्तृत्व-अभिमानके बिना अनायास किये जानेवाले कर्मका जो फल प्राप्त होता है, वह सत्य और श्रेष्ठ है अर्थात् मुक्तिदायक है । कर्तृत्व-अभिमान और परिश्रमपूर्वक किये हुए कर्मोंसे बँधा हुआ जीवात्मा सुख-दुःखका उपभोग करता है ॥

अविनाश्यस्तथायुक्तः क्षेत्रज्ञ इति निश्चयः ।
भूतानामात्मको भावो यथासौ न वियुज्यते ॥ ७ ॥

क्षेत्रज्ञ इस प्रकार कर्मोंसे संयुक्त होकर भी वास्तवमें अविनाशी ही है, यह निश्चित है । किंतु भूतोंके साथ तादात्म्यभाव स्वीकार कर लेनेके कारण वह ज्ञानके बिना उनसे अलग नहीं हो पाता ॥ ७ ॥

यावन्न क्षीयते कर्म तावत् तस्य स्वरूपता ।
क्षीणकर्मा नरो लोके रूपान्यत्वं नियच्छति ॥ ८ ॥

जबतक शरीरके प्रारब्ध कर्मोंका क्षय नहीं होता तबतक उस जीवकी उस शरीरसे एकरूपता रहती है । जब कर्मोंका

क्षय हो जाता है, तब वह दूसरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

नानाभावास्तथैकत्वं शरीरं प्राप्य संहताः ।
भवन्ति ते तथा नित्याः पृथग्भावं विजानताम् ॥ ९ ॥

भूत-इन्द्रिय आदि नाना प्रकारके पदार्थ शरीरको पाकर एकत्वको प्राप्त हो गये हैं । जो देह आदिको आत्मासे पृथक् जानते हैं, उन योगियोंके लिये वे सारे पदार्थ नित्य आत्म-स्वरूप हो जाते हैं ॥ ९ ॥

अश्वमेधे श्रुतिश्चेयमश्वसंज्ञपनं प्रति ।
लोकान्तरगता नित्यं प्राणा नित्यं शरीरिणाम् ॥ १० ॥

अश्वमेध यज्ञमें जब अश्वका वध किया जाता है, उस समय जो 'सूर्यं ते चक्षुः वातं प्राणः (तुम्हारे नेत्र सूर्यको और प्राण वायुको प्राप्त हों)' इत्यादि मन्त्र पढ़े जाते हैं, उनसे यह सूचित होता है कि देहधारियोंके प्राण—इन्द्रियाँ निश्चितरूपसे सर्वदा लोकान्तरमें स्थित होती हैं । (अतः परलोकमें गये हुए जीवोंका वैसे ही रूपसे इस लोकमें पुनः प्रकट हो जाना असम्भव नहीं है)॥१० ॥

अहं हितं वदाम्येतत् प्रियं चेत् तव पार्थिव ।
देवयाना हि पन्थानः श्रुतास्ते यज्ञसंस्तरे ॥ ११ ॥

पृथ्वीनाथ ! तुम्हें प्रिय लगे तो मैं तुम्हारे हितकी बात बताता हूँ । यज्ञ आरम्भ करते समय तुमने देवयान-मार्गोंकी बात सुनी होगी । वे ही तुम्हारे योग्य हैं ॥ ११ ॥

आहुतो यत्र यज्ञस्ते तत्र देवा हितास्तव ।
यदा समन्विता देवाः पशूनां गमनेश्वराः ॥ १२ ॥

जब तुमने यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया, तभीसे देवतालोग तुम्हारे हितैषी सुहृद् हो गये । जब इस प्रकार देवता मित्रभावसे युक्त होते हैं, तब वे जीवोंको लोकान्तरकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होनेके कारण उनपर अनुग्रह करके उन्हें अभीष्ट लोकोंकी प्राप्ति करा देते हैं ॥ १२ ॥

गतिमन्तश्च तेनेष्ट्वा नान्ये नित्या भवन्त्युत ।
नित्येऽस्मिन् पञ्चके वर्गे नित्ये चात्मनि पूरुषः ॥ १३ ॥
अस्य नानासमायोगं यः पश्यति वृथामतिः ।
वियोगे शोचतेऽत्यर्थं स बाल इति मे मतिः ॥ १४ ॥

इसलिये नित्य जीव यज्ञोंद्वारा देवताओंकी आराधना करके लोकान्तरमें जानेकी शक्ति पाते हैं । जो यज्ञ नहीं करते वे वैसे नहीं हो पाते । यह पाञ्चभौतिक वर्ग नित्य है औ आत्मा भी नित्य है । ऐसी दशामें जो मनुष्य उस आत्माक अनेक प्रकारके देहोंसे सम्बन्ध तथा उनके जन्म और नाश आत्माका भी जन्म और नाश समझता है, उसकी बुि व्यर्थ है । इसी प्रकार किसीसे किसीका वियोग हो जानेप जो अत्यन्त शोक करता है, वह भी मेरे मतमें बाल ही है ॥ १३-१४ ॥

वियोगे दोषदर्शी यः संयोगं स विसर्जयेत् ।
असङ्गे सङ्गमो नास्ति दुःखं भुवि वियोगजम् ॥ १५ ॥

जो वियोगमें दोष देखता है, वह संयोगका त्याग क दे, क्योंकि असंग आत्मामें संगम या संयोग नहीं है । ज उसमें संयोगका आरोप करता है, उसीको इस भूतलप वियोगका दुःख सहना पड़ता है ॥ १५ ॥

परापरज्ञस्त्वपरो नाभिमानादुदीरितः ।
अपरज्ञः परां बुद्धिं ज्ञात्वा मोहाद् विमुच्यते ॥ १६

दूसरा जो अपने-परायेके ज्ञानमें ही उलझा रहता है, व अभिमानसे ऊपर नहीं उठ पाता । जो किसीके लिये पराय नहीं है, उस परमात्माको जाननेवाला पुरुष उत्तम बुद्धिक पाकर मोहसे मुक्त हो जाता है ॥ १६ ॥

अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः ।
नाहं तं वेद्मि नासौ मां न च मेऽस्ति विरागता ॥ १७

वह मुक्त पुरुष अव्यक्तसे ही प्रकट हुआ था और पुन अव्यक्तमें ही लीन हो गया । न मैं उसे जानता हूँ* *न व मुझे † । (फिर तुम भी वैसे ही बन्धनमुक्त क्यों न गये ? ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं ।) मुझमें वैराग्य न है (पर वैराग्य ही मोक्षका मुख्य साधन है ।) ॥ १७ ॥

येन येन शरीरेण करोत्ययमनीश्वरः ।
तेन तेन शरीरेण तदवश्यमुपाश्नुते ।
मानसं मनसाऽऽप्नोति शारीरं च शरीरवान् ॥ १८

यह पराधीन जीव जिस-जिस शरीरसे कर्म करता है, उस उस शरीरसे उसका फल अवश्य भोगता है । मानस कर्मक फल मनसे और शारीरिक कर्मका फल शरीर धारण कर भोगता है ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयं प्रति वैशम्पायनवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें जनमेजयके प्रति वैशम्पायनका वाक्यविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

---

* क्योंकि वह इन्द्रियोंका विषय नहीं रहा ।

† क्योंकि उसके लिये मुझे जाननेका कोई कारण नहीं रहा ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीकी कृपासे जनमेजयको अपने पिताका दर्शन प्राप्त होना

वैशम्पायन उवाच

अदृष्ट्वा तु नृपः पुत्रान् दर्शनं प्रतिलब्धवान्।
ऋषेः प्रसादात् पुत्राणां स्वरूपाणां कुरूद्वह ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—कुरुश्रेष्ठ जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्रने पहले कभी अपने पुत्रोंको नहीं देखा था, परंतु महर्षि व्यासके प्रसादसे उन्होंने उनके स्वरूपका दर्शन प्राप्त कर लिया ॥ १ ॥

स राजा राजधर्मांश्च ब्रह्मोपनिषदं तथा।
अवाप्तवान्नरश्रेष्ठो बुद्धिनिश्चयमेव च ॥ २ ॥
विदुरश्च महाप्राज्ञो ययौ सिद्धिं तपोबलात्।
धृतराष्ट्रः समासाद्य व्यासं चैव तपस्विनम् ॥ ३ ॥

उन नरश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने राजधर्म, ब्रह्मविद्या तथा बुद्धिका यथार्थ निश्चय भी पा लिया था। महाज्ञानी विदुरने तो अपने तपोबलसे सिद्धि प्राप्त की थी; परंतु धृतराष्ट्रने तपस्वी व्यासका आश्रय लेकर सिद्धिलाभ किया था ॥ २-३ ॥

जनमेजय उवाच

ममापि वरदो व्यासो दर्शयेत् पितरं यदि।
तद्रूपवेषवयसं श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ ४ ॥
प्रियं मे स्यात् कृतार्थश्च स्यामहं कृतनिश्चयः।
प्रसादादृषिमुख्यस्य मम कामः समृध्यताम् ॥ ५ ॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन् ! यदि वरदायक भगवान् व्यास मुझे भी मेरे पिताका उसी रूप, वेश और अवस्थामें दर्शन करा दें तो मैं आपकी बतायी हुई सारी बातोंपर विश्वास कर सकता हूँ। उस अवस्थामें मैं कृतार्थ होकर दृढ़ निश्चयको प्राप्त हो जाऊँगा। इससे मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य सिद्ध होगा। आज मुनिश्रेष्ठ, व्यासजीके प्रसादसे मेरी इच्छा भी पूर्ण होनी चाहिये ॥ ४-५ ॥

सौतिरुवाच

इत्युक्तवचने तस्मिन् नृपे व्यासः प्रतापवान्।
प्रसादमकरोद् धीमानानयच्च परीक्षितम् ॥ ६ ॥

सौति कहते हैं—राजा जनमेजयके इस प्रकार कहनेपर परम प्रतापी बुद्धिमान् महर्षि व्यासने उनपर भी कृपा की। उन्होंने राजा परीक्षित्को उस यज्ञभूमिमें बुला दिया ॥ ६ ॥

ततस्तद्रूपवयसमागतं नृपतिं दिवः।
श्रीमन्तं पितरं राजा ददर्श जनमेजयः ॥ ७ ॥

स्वर्गसे उसी रूप और अवस्थामें आये अपने तेजस्वी पिता राजा परीक्षित्का भूपाल जनमेजयने दर्शन किया ॥ ७ ॥

शमीकं च महात्मानं पुत्रं तं चास्य शृङ्गिणम्।
अमात्या ये बभूवुश्च राज्ञस्तांश्च ददर्श ह ॥ ८ ॥

उनके साथ ही महात्मा शमीक और उनके पुत्र शृङ्गी-ऋषि भी थे। राजा परीक्षित्के जो मन्त्री थे, उनका भी जनमेजयने दर्शन किया ॥ ८ ॥

ततः सोऽवभृथे राजा मुदितो जनमेजयः।
पितरं स्नापयामास स्वयं सस्नौ च पार्थिवः ॥ ९ ॥
(परीक्षिदपि तत्रैव बभूव स तिरोहितः।)

तदनन्तर राजा जनमेजयने प्रसन्न होकर यज्ञान्तस्नानके समय पहले अपने पिताको नहलाया; फिर स्वयं स्नान किया। फिर राजा परीक्षित् वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ९ ॥

स्नात्वा स नृपतिर्विप्रमास्तीकमिदमब्रवीत्।
यायावरकुलोत्पन्नं जरत्कारुसुतं तदा ॥ १० ॥

स्नान करके उन नरेशने यायावरकुलमें उत्पन्न जरत्कारुकुमार आस्तीक मुनिसे इस प्रकार कहा—॥ १० ॥

आस्तीक विविधाश्चर्यो यज्ञोऽयमिति मे मतिः।
यद्द्यायं पिता प्राप्तो मम शोकप्रणाशनः ॥ ११ ॥

'आस्तीकजी ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, मेरा यह यज्ञ नाना प्रकारके आश्चर्योंका केन्द्र हो रहा है; क्योंकि आज मेरे शोकोंका नाश करनेवाले ये पिताजी भी यहाँ उपस्थित हो गये थे' ॥ ११ ॥

आस्तीक उवाच

ऋषिर्द्वैपायनो यत्र पुराणस्तपसो निधिः।
यज्ञे कुरुकुलश्रेष्ठ तस्य लोकावुभौ जितौ ॥ १२ ॥

आस्तीक बोले—कुरुकुलश्रेष्ठ ! राजन् ! जिसके यज्ञमें तपस्याकी निधि पुरातन ऋषि महर्षि द्वैपायन व्यास विराजमान हों, उसकी तो दोनों लोकोंमें विजय है ॥ १२ ॥

श्रुतं विचित्रमाख्यानं त्वया पाण्डवनन्दन।
सर्पाश्च भस्मसान्नीता गताश्च पदवीं पितुः ॥ १३ ॥

पाण्डवनन्दन ! तुमने यह विचित्र उपाख्यान सुना। तुम्हारे शत्रु सर्पगण भस्म होकर तुम्हारे पिताकी ही पदवीको पहुँच गये ॥ १३ ॥

कथंचित् तक्षको मुक्तः सत्यत्वात् तव पार्थिव।
ऋषयः पूजिताः सर्वे गतिर्दृष्टा महात्मनः ॥ १४ ॥

पृथ्वीनाथ ! तुम्हारी सत्यपरायणताके कारण किसी तरह तक्षकके प्राण बच गये हैं। तुमने समस्त ऋषियोंकी

पूजा की और महात्मा व्यासकी कहाँतक पहुँच है, इसे प्रत्यक्ष देख लिया ॥ १४ ॥

प्राप्तः सुविपुलो धर्मः श्रुत्वा पापविनाशनम् ।
विमुक्तो हृदयग्रन्थिरुदारजनदर्शनात् ॥ १५ ॥

इस पापनाशक कथाको सुनकर तुम्हें महान् धर्मकी प्राप्ति हुई है । उदार हृदयवाले संतोंके दर्शनसे तुम्हारे हृदयकी गाँठ खुल गयी—तुम्हारा सारा संशय दूर हो गया॥ १५॥

ये च पक्षधरा धर्मे सद्वृत्तरुचयश्च ये ।
यान् दृष्ट्वा हीयते पापं तेभ्यः कार्या नमस्क्रिया ॥ १६ ॥

जो लोग धर्मके पक्षपाती हैं, जो सदाचारके पालनमें रुचि रखते हैं तथा जिनके दर्शनसे पापका नाश होता है, उन महात्माओंको अब तुम्हें नमस्कार करना चाहिये ॥ १६ ॥

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठात् स राजा जनमेजयः ।
पूजयामास तमृषिमनुमान्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥

सौति कहते हैं—शौनक ! विप्रवर आस्तीकके मुखसे यह बात सुनकर राजा जनमेजयने उन महर्षि व्यासका बार-बार पूजन और सत्कार किया ॥ १७ ॥

पप्रच्छ तमृषिं चापि वैशम्पायनमच्युतम् ।
कथावशेषं धर्मज्ञो वनवासस्य सत्तम ॥ १८ ॥

साधुशिरोमणे ! तत्पश्चात् उन धर्मज्ञ नरेशने धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले महर्षि वैशम्पायनसे पुनः धृतराष्ट्रके वनवासकी अवशिष्ट कथा पूछी ॥ १८ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि जनमेजयस्य स्वपितृदर्शने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें जनमेजयके द्वारा अपने पिताका दर्शनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीकी आज्ञासे धृतराष्ट्र आदिका पाण्डवोंको विदा करना और पाण्डवोंका सदलबल हस्तिनापुरमें आना

जनमेजय उवाच

दृष्ट्वा पुत्रांस्तथा पौत्रान् सानुबन्धान् जनाधिपः ।
धृतराष्ट्रः किमकरोद् राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! राजा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरने परलोकसे आये हुए पुत्रों, पौत्रों तथा सगे-सम्बन्धियोंके दर्शन करके क्या किया ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पुत्राणां दर्शनं नृप ।
वीतशोकः स राजर्षिः पुनराश्रममागमत् ॥ २ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—नरेश्वर ! मरे हुए पुत्रोंका दर्शन एक महान् आश्चर्यकी घटना थी । उसे देखकर राजर्षि धृतराष्ट्रका दुःख-शोक दूर हो गया । वे फिर अपने आश्रमपर लौट आये ॥ २ ॥

इतरस्तु जनः सर्वस्ते चैव परमर्षयः ।
प्रतिजग्मुर्यथाकामं धृतराष्ट्राभ्यनुज्ञया ॥ ३ ॥

दूसरे सब लोग तथा महर्षिगण धृतराष्ट्रकी अनुमति ले अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंको चले गये ॥ ३ ॥

पाण्डवास्तु महात्मानो लघुभूयिष्ठसैनिकाः ।
पुनर्जग्मुर्महात्मानं सदारास्तं महीपतिम् ॥ ४ ॥

महात्मा पाण्डव छोटे-बड़े सैनिकों और अपनी स्त्रियोंके साथ पुनः महामना राजा धृतराष्ट्रके पीछे-पीछे गये ॥ ४ ॥

तत्राश्रमपदं धीमान् ब्रह्मर्षिर्लोकपूजितः ।
मुनिः सत्यवतीपुत्रो धृतराष्ट्रमभाषत ॥ ५ ॥

उस समय लोकपूजित बुद्धिमान् सत्यवतीनन्दन ब्रह्मर्षि व्यास भी उस आश्रमपर गये तथा इस प्रकार बोले—॥ ५ ॥

धृतराष्ट्र महाबाहो शृणु कौरवनन्दन ।
श्रुतं ते ज्ञानवृद्धानामृषीणां पुण्यकर्मणाम् ॥ ६ ॥
श्रद्धाभिजनवृद्धानां वेदवेदाङ्गवेदिनाम् ।
धर्मज्ञानां पुराणानां वदतां विविधाः कथाः ॥ ७ ॥
मा स्म शोके मनः कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः ।

'कौरवनन्दन महाबाहु धृतराष्ट्र ! तुमने श्रद्धा और कुलमें बढ़े-चढ़े, वेद-वेदाङ्गवेत्ता, ज्ञानवृद्ध, पुण्यकर्मा एवं धर्मज्ञ प्राचीन महर्षियोंके मुखसे नाना प्रकारकी कथाएँ सुनी हैं; अतः अपने मनसे शोकको निकाल दो; क्योंकि विद्वान् पुरुष प्रारब्धके विधानमें दुःख नहीं मानते हैं ॥ ६-७½ ॥

श्रुतं देवरहस्यं ते नारदाद् देवदर्शनात् ॥ ८ ॥
गतास्ते क्षत्रधर्मेण शस्त्रपूतां गतिं शुभाम् ।
यथा दृष्टास्त्वया पुत्रास्तथा कामविहारिणः ॥ ९ ॥

'तुमने देवदर्शी नारद मुनिसे देवताओंका गुप्त रहस्य

भी सुन लिया है। वे सब वीर क्षत्रिय धर्मके अनुसार शास्त्रोंसे पवित्र हुई शुभ गतिको प्राप्त हुए हैं। जैसा कि तुमने देखा है, तुम्हारे सभी पुत्र इच्छानुसार विहार करनेवाले स्वर्गवासी हुए हैं ॥ ८-९ ॥

युधिष्ठिरः स्वयं धीमान् भवन्तमनुरुध्यते।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः सदारः ससुहृज्जनः ॥ १० ॥

'ये बुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर अपने समस्त भाइयों, घरकी स्त्रियों और सुहृदोंके साथ स्वयं तुम्हारी सेवामें लगे हुए हैं ॥ १० ॥

विसर्जयैनं यात्वेष स्वराज्यमनुशासताम्।
मासः समधिकस्तेषामतीतो वसतां वने ॥ ११ ॥

'अब इन्हें विदा कर दो। ये जायँ और अपने राज्यका काम सँभालें। इन लोगोंको वनमें रहते एक महीनेसे अधिक हो गया ॥ ११ ॥

एतद्धि नित्यं यत्नेन पदं रक्ष्यं नराधिप।
बहुप्रत्यर्थिकं ह्येतद् राज्यं नाम कुरूद्वह ॥ १२ ॥

'कुरुश्रेष्ठ! नरेश्वर! राज्यके बहुत-से शत्रु होते हैं; अतः इसकी सदा ही यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये' ॥ १२ ॥

इत्युक्तः कौरवो राजा व्यासेनातुलतेजसा।
युधिष्ठिरमथाहूय वाग्मी वचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥

अनुपम तेजस्वी व्यासजीके ऐसा कहनेपर प्रवचनकुशल कुरुराज धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको बुलाकर इस प्रकार कहा—॥ १३ ॥

अजातशत्रो भद्रं ते शृणु मे भ्रातृभिः सह।
त्वत्प्रसादान्महीपाल शोको नास्मान् प्रबाधते ॥ १४ ॥

'अजातशत्रो! तुम्हारा कल्याण हो। तुम अपने भाइयोंसहित मेरी बात सुनो। भूपाल! तुम्हारे प्रसादसे अब हमलोगोंको किसी प्रकारका शोक कष्ट नहीं दे रहा है ॥ १४ ॥

रमे चाहं त्वया पुत्र पुरेव गजसाह्वये।
नाथेनानुगतो विद्वन् प्रियेषु परिवर्तिना ॥ १५ ॥
प्राप्तं पुत्रफलं त्वत्तः प्रीतिर्मे परमा त्वयि।
न मे मन्युर्महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ १६ ॥

'बेटा! तुम्हारे साथ रहकर तथा तुम-जैसे रक्षकसे सुरक्षित होकर मैं उसी तरह आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ, जैसे पहले हस्तिनापुरमें करता था। विद्वन्! प्रियजनोंकी सेवामें लगे रहनेवाले तुम्हारे द्वारा मुझे पुत्रका फल प्राप्त हो गया। तुमपर मेरा बहुत प्रेम है। महाबाहो! पुत्र! मेरे मनमें तुम्हारे प्रति किंचिन्मात्र भी क्रोध नहीं है; अतः तुम राजधानीको जाओ, अब विलम्ब न करो ॥ १५-१६ ॥

भवन्तं चेह सम्प्रेक्ष्य तपो मे परिहीयते।
तपोयुक्तं शरीरं च त्वां दृष्ट्वा धारितं पुनः ॥ १७ ॥

'तुमको यहाँ देखकर मेरी तपस्यामें बाधा पड़ रही है। यह शरीर तपस्यामें लगा दिया था, परंतु तुम्हें देखकर फिर इसकी रक्षा करने लगा ॥ १७ ॥

मातरौ ते तथैवेमे शीर्णपर्णकृताशने।
मम तुल्यव्रते पुत्र न चिरं वर्तयिष्यतः ॥ १८ ॥

बेटा! मेरी ही तरह तुम्हारी ये दोनों माताएँ भी व्रत-धारणपूर्वक सूखे पत्ते चबाकर रहा करती हैं। अब ये अधिक दिनोंतक जीवन धारण नहीं कर सकतीं ॥ १८ ॥

दुर्योधनप्रभृतयो दृष्टा लोकान्तरं गताः।
व्यासस्य तपसो वीर्याद् भवतश्च समागमात् ॥ १९ ॥
प्रयोजनं च निर्वृत्तं जीवितस्य ममानघ।
उग्रं तपः समास्थास्ये त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ २० ॥

'तुम्हारे समागम और व्यासजीके तपोबलसे मुझे अपने परलोकवासी पुत्र दुर्योधन आदिके दर्शन हो गये; इसलिये मेरे जीवित रहनेका प्रयोजन पूरा हो गया। अनघ! अब मैं कठोर तपस्यामें संलग्न होऊँगा। तुम इसके लिये मुझे अनुमति दे दो ॥ १९-२० ॥

त्वय्यद्य पिण्डः कीर्तिश्च कुलं चेदं प्रतिष्ठितम्।
श्वो वाद्य वा महाबाहो गम्यतां पुत्र मा चिरम् ॥ २१ ॥

'महाबाहो! आजसे पितरोंके पिण्डका, सुयशका और इस कुलका भार भी तुम्हारे ही ऊपर है। पुत्र! आज या कल अवश्य चले जाओ; विलम्ब न करना ॥ २१ ॥

राजनीतिः सुबहुशः श्रुता ते भरतर्षभ।
संदेष्टव्यं न पश्यामि कृतं मे भवता विभो ॥ २२ ॥

'भरतश्रेष्ठ! प्रभो! तुमने राजनीति बहुत बार सुनी है; अतः तुम्हें संदेश देने लायक कोई बात मुझे नहीं दिखायी देती। तुमने मेरे लिये बहुत कुछ किया है ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तवचनं तं तु नृपो राजानमब्रवीत्।
न मामर्हसि धर्मज्ञ परित्यक्तुमनागसम् ॥ २३ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब राजा धृतराष्ट्रने वैसी बात कही, तब युधिष्ठिरने उनसे इस प्रकार कहा—'धर्मके ज्ञाता महाराज! आप मेरा परित्याग न करें, क्योंकि मैं सर्वथा निरपराध हूँ ॥ २३ ॥

कामं गच्छन्तु मे सर्वे भ्रातरोऽनुचरास्तथा।
भवन्तमहमन्विष्ये मातरौ च यतव्रतः ॥ २४ ॥

'मेरे ये सब भाई और सेवक इच्छा हो तो चले जायँ; किंतु मैं नियम और व्रतका पालन करता हुआ आपकी तथा इन दोनों माताओंकी सेवा करूँगा ॥ २४ ॥

तमुवाचाथ गान्धारी मैवं पुत्र शृणुष्व च ।
त्वय्यधीनं कुरुकुलं पिण्डश्च श्वशुरस्य मे ॥ २५ ॥
गम्यतां पुत्र पर्याप्तमेतावत् पूजिता वयम् ।
राजा यदाह तत् कार्यं त्वया पुत्र पितुर्वचः ॥ २६ ॥

यह सुनकर गान्धारीने कहा—'बेटा ! ऐसी बात न कहो । मैं जो कहती हूँ उसे सुनो । यह सारा कुरुकुल तुम्हारे ही अधीन है । मेरे श्वशुरका पिण्ड भी तुमपर ही अवलम्बित है; अतः पुत्र ! तुम जाओ, तुमने हमारे लिये जितना किया है, वही बहुत है । तुम्हारे द्वारा हमलोगोंका स्वागत-सत्कार भलीभाँति हो चुका है । इस समय महाराज जो आज्ञा दे रहे हैं, वही करो; क्योंकि पिताका वचन मानना तुम्हारा कर्तव्य है' ॥ २५-२६ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तः स तु गान्धार्या कुन्तीमिदमभाषत ।
स्नेहबाष्पाकुले नेत्रे प्रमृज्य रुदतीं वचः ॥ २७ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन् ! गान्धारीके इस प्रकार आदेश देनेपर राजा युधिष्ठिरने अपने आँसूभरे नेत्रोंको पोंछकर रोती हुई कुन्तीसे कहा—॥ २७ ॥

विसर्जयति मां राजा गान्धारी च यशस्विनी ।
भवत्यां बद्धचित्तस्तु कथं यास्यामि दुःखितः ॥ २८ ॥

'माँ ! राजा और यशस्विनी गान्धारीदेवी मुझे घर लौटनेकी आज्ञा दे रही हैं; किंतु मेरा मन आपमें लगा हुआ है । जानेका नाम सुनकर ही मैं बहुत दुखी हो जाता हूँ । ऐसी दशामें मैं कैसे जा सकूँगा ? ॥ २८ ॥

न चोत्सहे तपोविघ्नं कर्तुं ते धर्मचारिणि ।
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ॥ २९ ॥

'धर्मचारिणि ! मैं आपकी तपस्यामें विघ्न डालना नहीं चाहता; क्योंकि तपसे बढ़कर कुछ नहीं है । (निष्काम भावपूर्वक) तपस्यासे परब्रह्म परमात्माकी भी प्राप्ति हो जाती है ॥

ममापि न तथा राज्ञि राज्ये बुद्धिर्यथा पुरा ।
तपस्येवानुरक्तं मे मनः सर्वात्मना तथा ॥ ३० ॥

'रानी माँ ! अब मेरा मन भी पहलेकी तरह राजकाजमें नहीं लगता है । हर तरहसे तपस्या करनेको ही जी चाहता है॥

शून्येयं च मही कृत्स्ना न मे प्रीतिकरी शुभे ।
बान्धवा नः परिक्षीणा बलं नो न यथा पुरा ॥ ३१ ॥

'शुभे ! यह सारी पृथ्वी मेरे लिये सूनी हो गयी है; अतः इससे मुझे प्रसन्नता नहीं होती । हमारे सगे-सम्बन्धी नष्ट हो गये; अब हमारे पास पहलेकी तरह सैन्यबल भी नहीं है ॥

पञ्चालाः सुभृशं क्षीणाः कथामात्रावशेषिताः ।
न तेषां कुलकर्तारं कंचित् पश्याम्यहं शुभे ॥ ३२ ॥

'पाञ्चालोंका तो सर्वथा नाश ही हो गया । उनकी कथा मात्र शेष रह गयी है । शुभे ! अब मुझे कोई ऐसा नहीं दिखायी देता, जो उनके वंशको चलानेवाला हो ॥ ३२ ॥

सर्वे हि भस्मसान्नीतास्ते द्रोणेन रणाजिरे ।
अवशिष्टाश्च निहता द्रोणपुत्रेण वै निशि ॥ ३३ ॥

'प्रायः द्रोणाचार्यने ही सबको समराङ्गणमें भस्म कर डाला था । जो थोड़े-से बच गये थे, उन्हें द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रातको सोते समय मार डाला ॥ ३३ ॥

चेदयश्चैव मत्स्याश्च दृष्टपूर्वास्तथैव नः ।
केवलं वृष्णिचक्रं च वासुदेवपरिग्रहात् ॥ ३४ ॥

'हमारे सम्बन्धी चेदि और मत्स्यदेशके लोग भी जैसे पहले देखे गये थे, वैसे ही अब नहीं रहे । केवल भगवान् श्रीकृष्णके आश्रयसे वृष्णिवंशी वीरोंका समुदाय अबतक सुरक्षित है ।

यद् दृष्ट्वा स्थातुमिच्छामि धर्मार्थं नार्थहेतुतः ।
शिवेन पश्य नः सर्वान् दुर्लभं तव दर्शनम् ॥ ३५ ॥
अविषह्यं च राजा हि तीव्रं चारप्स्यते तपः ।

'उसे ही देखकर अब मैं केवल धर्मसम्पादनकी इच्छासे यहाँ रहना चाहता हूँ, धनके लिये नहीं । तुम हम सब लोगोंकी ओर कल्याणमयी दृष्टिसे देखो; क्योंकि तुम्हारा दर्शन हमलोगोंके लिये अब दुर्लभ हो जायगा । कारण कि राजा धृतराष्ट्र अब बड़ी कठोर और असह्य तपस्या आरम्भ करेंगे॥

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुः सहदेवो युधां पतिः ॥ ३६ ॥
युधिष्ठिरमुवाचेदं बाष्पव्याकुललोचनः ।

यह सुनकर योद्धाओंके स्वामी महाबाहु सहदेव अपने दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर युधिष्ठिरसे इस प्रकार बोले—

नोत्सहेऽहं परित्यक्तुं मातरं भरतर्षभ ॥ ३७ ॥
प्रतियातु भवान् क्षिप्रं तपस्तप्स्याम्यहं विभो ।
इहैव शोषयिष्यामि तपसेदं कलेवरम् ॥ ३८ ॥
पादशुश्रूषणे रक्तो राज्ञो मात्रोस्तथानयोः ।

'भरतश्रेष्ठ ! मुझमें माताजीको छोड़कर जानेका साहस नहीं है । प्रभो ! आप शीघ्र लौट जायँ । मैं यहीं रहकर तपस्या करूँगा और तपके द्वारा अपने शरीरको सुखा डालूँगा । मैं यहाँ महाराज और इन दोनों माताओंके चरणोंकी सेवामें ही अनुरक्त रहना चाहता हूँ' ॥ ३७-३८½ ॥

तमुवाच ततः कुन्ती परिष्वज्य महाभुजम् ॥ ३९ ॥
गम्यतां पुत्र मैवं त्वं वोचः कुरु वचो मम ।
आगमा वः शिवाः सन्तु स्वस्था भवत पुत्रकाः ॥ ४० ॥

यह सुनकर कुन्तीने महाबाहु सहदेवको छातीसे लगा



लिया और कहा—'बेटा ! ऐसा न कहो। तुम मेरी बात मानो और चले जाओ। पुत्रो ! तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी हों और तुम सदा स्वस्थ रहो ॥ ३९-४० ॥

उपरोधो भवेदेवमस्माकं तपसः कृते।
त्वत्स्नेहपाशबद्धा च हीयेयं तपसः परात् ॥ ४१ ॥
तस्मात् पुत्रक गच्छ त्वं शिष्टमल्पं च नः प्रभो।

'तुम लोगोंके रहनेसे हमलोगोंकी तपस्यामें विघ्न पड़ेगा। मैं तुम्हारे स्नेहपाशमें बँधकर उत्तम तपस्यासे गिर जाऊँगी, अतः सामर्थ्यशाली पुत्र ! चले जाओ। अब हमलोगोंकी आयु बहुत थोड़ी रह गयी है' ॥ ४१½ ॥

एवं संस्तम्भितं वाक्यैः कुन्त्या बहुविधैर्मनः ॥ ४२ ॥
सहदेवस्य राजेन्द्र राज्ञश्चैव विशेषतः।

राजेन्द्र ! इस तरह अनेक प्रकारकी बातें कहकर कुन्तीने सहदेव तथा राजा युधिष्ठिरके मनको धीरज बँधाया ॥ ४२½ ॥

ते मात्रा समनुज्ञाता राज्ञा च कुरुपुङ्गवाः ॥ ४३ ॥
अभिवाद्य कुरुश्रेष्ठमामन्त्रयितुमारभन् ।

माता तथा धृतराष्ट्रकी आज्ञा पाकर कुरुश्रेष्ठ पाण्डवोंने कुरुकुलतिलक धृतराष्ट्रको प्रणाम किया और उनसे विदा लेनेके लिये इस प्रकार कहा ॥ ४३½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

राज्यं प्रतिगमिष्यामः शिवेन प्रतिनन्दिताः ॥ ४४ ॥
अनुज्ञातास्त्वया राजन् गमिष्यामो विकल्मषाः।

युधिष्ठिर बोले—महाराज ! आपके आशीर्वादसे आनन्दित होकर हमलोग कुशलपूर्वक राजधानीको लौट जायँगे। राजन् ! इसके लिये आप हमें आज्ञा दें। आपकी आज्ञा पाकर हम पापरहित हो यहाँसे यात्रा करेंगे ॥ ४४½ ॥

एवमुक्तः स राजर्षिर्धर्मराज्ञा महात्मना ॥ ४५ ॥
अनुजज्ञे स कौरव्यमभिनन्द्य युधिष्ठिरम्।

महात्मा धर्मराजके ऐसा कहनेपर राजर्षि धृतराष्ट्रने कुरुनन्दन युधिष्ठिरका अभिनन्दन करके उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी ॥ ४५½ ॥

भीमं च बलिनां श्रेष्ठं सान्त्वयामास पार्थिवः ॥ ४६ ॥
स चास्य सम्यङ्मेधावी प्रत्यपद्यत वीर्यवान्।

इसके बाद राजा धृतराष्ट्रने बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेनको सान्त्वना दी। बुद्धिमान् एवं पराक्रमी भीमसेनने भी उनकी बातोंको यथार्थरूपसे ग्रहण किया—हृदयसे स्वीकार किया ॥

अर्जुनं च समाश्लिष्य यमौ च पुरुषर्षभौ ॥ ४७ ॥
अनुजज्ञे स कौरव्यः परिष्वज्याभिनन्द्य च।
गान्धार्या चाभ्यनुज्ञाताः कृतपादाभिवादनाः ॥ ४८ ॥
जनन्या समुपाघ्राताः परिष्वक्ताश्च ते नृपम्।
चक्रुः प्रदक्षिणं सर्वे वत्सा इव निवारणे ॥ ४९ ॥
पुनः पुनर्निरीक्षन्तः प्रचक्रुस्ते प्रदक्षिणम्।

तदनन्तर धृतराष्ट्रने अर्जुन और पुरुषप्रवर नकुल-सहदेवको छातीसे लगा उनका अभिनन्दन करके विदा किया। इसके बाद उन पाण्डवोंने गान्धारीके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ली। फिर माता कुन्तीने उन्हें हृदयसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा। जैसे बछड़े अपनी माताका दूध पीनेसे रोके जानेपर बार-बार उसकी ओर देखते हुए उसके चारों ओर चक्कर लगाते हैं, उसी प्रकार पाण्डवोंने राजा तथा माताकी ओर बार-बार देखते हुए उन नरेशकी परिक्रमा की ॥४७—४९½॥

द्रौपदीप्रमुखाश्चैव सर्वाः कौरवयोषितः ॥ ५० ॥
न्यायतः श्वशुरे वृत्तिं प्रयुज्य प्रययुस्ततः।
श्वश्रूभ्यां समनुज्ञाताः परिष्वज्याभिनन्दिताः ॥ ५१ ॥
संदिष्टाश्चेति कर्तव्यं प्रययुर्भर्तृभिः सह।

द्रौपदी आदि समस्त कौरवस्त्रियोंने अपने श्वशुरको न्यायपूर्वक प्रणाम किया। फिर दोनों सासुओंने उन्हें गलेसे लगाकर आशीर्वाद दे जानेकी आज्ञा दी और उन्हें उनके कर्तव्यका उपदेश भी दिया। तत्पश्चात् वे अपने पतियोंके साथ चली गयीं ॥ ५०-५१½ ॥

ततः प्रजज्ञे निनदः सूतानां युज्यतामिति ॥ ५२ ॥
उष्ट्राणां क्रोशतां चापि हयानां हेषतामपि।
ततो युधिष्ठिरो राजा सदारः सहसैनिकः।

नगरं हास्तिनपुरं पुनरायात् सबान्धवः ॥ ५३ ॥

तदनन्तर सारथियोंने 'रथ जोतो, रथ जोतो' की पुकार मचायी। फिर ऊँटोंके चिग्घाड़ने और घोड़ोंके हिनहिनानेकी आवाज हुई। इसके बाद अपने घरकी स्त्रियों, भाइयों और सैनिकोंके साथ राजा युधिष्ठिर पुनः हस्तिनापुर नगरको लौट आये ॥ ५२-५३ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि पुत्रदर्शनपर्वणि युधिष्ठिरप्रत्यागमे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत पुत्रदर्शनपर्वमें युधिष्ठिरका प्रत्यागमनविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

(नारदागमनपर्व)

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

नारदजीसे धृतराष्ट्र आदिके दावानलमें दग्ध हो जानेका हाल जानकर युधिष्ठिर आदिका शोक

वैशम्पायन उवाच

द्विवर्षोपनिवृत्तेषु पाण्डवेषु यदृच्छया।
देवर्षिर्नारदो राजन्नाजगाम युधिष्ठिरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! पाण्डवोंको तपोवनसे आये जब दो वर्ष व्यतीत हो गये, तब एक दिन देवर्षि नारद दैवेच्छासे घूमते-घामते राजा युधिष्ठिरके यहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

तमभ्यर्च्य महाबाहुः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
आसीनं परिविश्वस्तं प्रोवाच वदतां वरः ॥ २ ॥

महाबाहु कुरुराज युधिष्ठिरने नारदजीकी पूजा करके उन्हें आसनपर बिठाया। जब वे आसनपर बैठकर थोड़ी देर विश्राम कर चुके, तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने उनसे इस प्रकार पूछा ॥ २ ॥

चिरात्तु नानुपश्यामि भगवन्तमुपस्थितम्।
कच्चित् ते कुशलं विप्र शुभं वा प्रत्युपस्थितम्॥ ३ ॥

'भगवन्! इधर दीर्घकालसे मैं आपकी उपस्थिति यहाँ नहीं देखता हूँ। ब्रह्मन् ! कुशल तो है न ? अथवा आपको शुभकी ही प्राप्ति होती है न ? ॥ ३ ॥

के देशाः परिदृष्टास्ते किं च कार्यं करोमि ते।
तद् ब्रूहि द्विजमुख्य त्वं त्वं ह्यस्माकं परा गतिः॥ ४ ॥

'विप्रवर ! इस समय आपने किन-किन देशोंका निरीक्षण किया है ? बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? क्योंकि आप हमलोगोंकी परम गति हैं' ॥ ४ ॥

नारद उवाच

चिरदृष्टोऽसि मेत्येवमागतोऽहं तपोवनात्।
परिदृष्टानि तीर्थानि गङ्गा चैव मया नृप ॥ ५ ॥

नारदजीने कहा—नरेश्वर ! बहुत दिन पहले मैंने तुम्हें देखा था, इसीलिये मैं तपोवनसे सीधे यहाँ चला आ रहा हूँ। रास्तेमें मैंने बहुत-से तीर्थों और गङ्गाजीका भी दर्शन किया है ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

वदन्ति पुरुषा मेऽद्य गङ्गातीरनिवासिनः।
धृतराष्ट्रं महात्मानमास्थितं परमं तपः ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन्! गङ्गाके किनारे रहनेवाले मनुष्य मेरे पास आकर कहा करते हैं कि महामनस्वी महाराज धृतराष्ट्र इन दिनों बड़ी कठोर तपस्यामें लगे हुए हैं ॥ ६ ॥

अपि दृष्टस्त्वया तत्र कुशली स कुरूद्वहः।
गान्धारी च पृथा चैव सूतपुत्रश्च संजयः ॥ ७ ॥

क्या आपने भी उन्हें देखा है ? वे कुरुश्रेष्ठ वहाँ कुशलसे तो हैं न ? गान्धारी, कुन्ती तथा सूतपुत्र संजय भी सकुशल हैं न ? ॥ ७ ॥

कथं च वर्तते चाद्य पिता मम स पार्थिवः।
श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि दृष्टस्त्वया नृपः ॥ ८ ॥

आजकल मेरे ताऊ राजा धृतराष्ट्र कैसे रहते हैं ? भगवन् यदि आपने उन्हें देखा हो तो मैं उनका समाचार सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

नारद उवाच

स्थिरीभूय महाराज शृणु वृत्तं यथातथम्।
यथा श्रुतं च दृष्टं च मया तस्मिंस्तपोवने ॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—महाराज ! मैंने उस तपोवनमें जो कुछ देखा और सुना है, वह सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक बतला रहा हूँ। तुम स्थिरचित्त होकर सुनो ॥ ९ ॥

वनवासनिवृत्तेषु भवत्सु कुरुनन्दन।
कुरुक्षेत्रात् पिता तुभ्यं गङ्गाद्वारं ययौ नृप ॥ १० ॥

ान्धार्या सहितो धीमान् वध्वा कुन्त्या समन्वितः।
ंजयेन च सूतेन साग्निहोत्रः सयाजकः॥ ११॥

कुरुकुलको आनन्दित करनेवाले नरेश ! जब तुमलोग नसे लौट आये, तब तुम्हारे बुद्धिमान् ताऊ राजा धृतराष्ट्र ान्धारी, बहू कुन्ती, सूत सञ्जय, अग्निहोत्र और पुरोहितके ाथ कुरुक्षेत्रसे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) को चले गये १०-११

गतस्थे स तपस्तीव्रं पिता तव तपोधनः।
ीटां मुखे समाधाय वायुभक्षोऽभवन्मुनिः॥ १२॥

वहाँ जाकर तपस्याके धनी तुम्हारे ताऊने कठोर तपस्या ारम्भ की। वे मुँहमें पत्थरका टुकड़ा रखकर वायुका ाहार करते और मौन रहते थे॥ १२॥

ने स मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महातपाः।
वगस्थिमात्रशेषः स षण्मासानभवन्नृपः॥ १३॥

उस वनमें जितने ऋषि रहते थे, वे लोग उनका विशेष म्मान करने लगे। महातपस्वी धृतराष्ट्रके शरीरपर चमड़ेसे की हुई हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया था। उस अवस्थामें न्होंने छः महीने व्यतीत किये॥ १३॥

ान्धारी तु जलाहारा कुन्ती मासोपवासिनी।
ंजयः षष्ठभुक्तेन वर्तयामास भारत॥ १४॥

भारत ! गान्धारी केवल जल पीकर रहने लगीं। कुन्ती- ी एक महीनेतक उपवास करके एक दिन भोजन करती ीं और संजय छठे समय अर्थात् दो दिन उपवास करके सरे दिन संध्याको आहार ग्रहण करते थे॥ १४॥

ग्नींस्तु याजकास्तत्र जुहुवुर्विधिवत् प्रभो।
श्यतोऽदृश्यतश्चैव वने तस्मिन् नृपस्य वै॥ १५॥

प्रभो ! राजा धृतराष्ट्र उस वनमें कभी दिखायी देते और भी अदृश्य हो जाते थे। यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण वहाँ उनके रा स्थापित की हुई अग्निमें विधिवत् हवन करते रहते थे १५

निकेतोऽथ राजा स बभूव वनगोचरः।
चापि सहिते देव्यौ संजयश्च तमन्वयुः॥ १६॥

अब राजाका कोई निश्चित स्थान नहीं रह गया। वे वन- सब ओर विचरते रहते थे। गान्धारी और कुन्ती ये दोनों वियाँ साथ रहकर राजाके पीछे-पीछे लगी रहती थीं। संजय उन्हींका अनुसरण करते थे॥ १६॥

जयो नृपतेर्नेता समेषु विषमेषु च।
न्धार्याश्च पृथा चैव चक्षुरासीदनिन्दिता॥ १७॥

ऊँची-नीची भूमि आ जानेपर संजय ही राजा धृतराष्ट्रको ाते थे और अनिन्दिता सती-साध्वी कुन्ती गान्धारीके लिये बनी हुई थीं॥ १७॥

ततः कदाचिद् गङ्गायाः कच्छे स नृपसत्तमः।
गङ्गायामाप्लुतो धीमानाश्रमाभिमुखोऽभवत्॥ १८॥

तदनन्तर एक दिनकी बात है, बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्रने गङ्गाके कछारमें जाकर उनके जलमें डुबकी लगायी और स्नानके पश्चात् वे अपने आश्रमकी ओर चल पड़े॥ १८॥

अथ वायुः समुद्भूतो दावाग्निरभवन्महान्।
ददाह तद् वनं सर्वं परिगृह्य समन्ततः॥ १९॥

इतनेहीमें वहाँ बड़े जोरकी हवा चली। जिससे उस वनमें बड़ी भारी दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने चारों ओरसे उस सारे वनको जलाना आरम्भ किया॥ १९॥

दह्यत्सु मृगयूथेषु द्विजिह्वेषु समन्ततः।
वराहाणां च यूथेषु संश्रयत्सु जलाशयान्॥ २०॥

सब ओर मृगोंके झुंड और सर्प दग्ध होने लगे। बनैले सूअर भाग-भागकर जलाशयोंकी शरण लेने लगे॥ २०॥

समाविद्धे वने तस्मिन् प्राप्ते व्यसन उत्तमे।
निराहारतया राजन् मन्दप्राणविचेष्टितः॥ २१॥
असमर्थोऽपसरणे सुकृशे मातरौ च ते।

राजन् ! सारा वन आगसे घिर गया और उन लोगोंपर बड़ा भारी संकट आ गया। उपवास करनेसे प्राणशक्ति क्षीण हो जानेके कारण राजा धृतराष्ट्र वहाँसे भागनेमें असमर्थ थे, तुम्हारी दोनों माताएँ भी अत्यन्त दुर्बल हो गयी थीं; अतः वे भी भागनेमें असमर्थ थीं॥ २१½॥

ततः स नृपतिर्दृष्ट्वा वह्निमायान्तमन्तिकात्॥ २२॥
इदमाह ततः सूतं संजयं जयतां वरः।

तदनन्तर विजयी पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रने उस अग्निको निकट आती जान सूत संजयसे इस प्रकार कहा—॥ २२½॥

गच्छ संजय यत्राग्निर्न त्वां दहति कर्हिचित्॥ २३॥
वयमत्राग्निना युक्ता गमिष्यामः परां गतिम्।

'संजय ! तुम किसी ऐसे स्थानमें भाग जाओ, जहाँ यह दावाग्नि तुम्हें कदापि जला न सके। हमलोग तो अब यहीं अपनेको अग्निमें होम कर परम गति प्राप्त करेंगे'॥ २३½॥

तमुवाच किलोद्विग्नः संजयो वदतां वरः॥ २४॥
राजन् मृत्युरनिष्टोऽयं भविता ते वृथाग्निना।
न चोपायं प्रपश्यामि मोक्षणे जातवेदसः॥ २५॥

तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ संजयने अत्यन्त उद्विग्न होकर कहा—'राजन् ! इस लौकिक अग्निसे आपकी मृत्यु होना ठीक नहीं है, (आपके शरीरका दाह-संस्कार तो आहवनीय अग्निमें होना चाहिये।) किंतु इस समय इस दावानलसे छुटकारा पानेका कोई उपाय भी मुझे नहीं दिखायी देता २४-२५

यदत्रानन्तरं कार्यं तद् भवान् वक्तुमर्हति।
इत्युक्तः संजयेनेदं पुनराह स पार्थिवः॥ २६॥

'अब इसके बाद क्या करना चाहिये—यह बतानेकी

कृपा करें ।' संजयके ऐसा कहनेपर राजाने फिर कहा—॥२६॥

नैष मृत्युरनिष्टो नो निःसृतानां गृहात् स्वयम् ।
जलमग्निस्तथा वायुरथवापि विकर्षणम् ॥ २७ ॥
तापसानां प्रशस्यन्ते गच्छ संजय मा चिरम् ।

'संजय ! हमलोग स्वयं गृहस्थाश्रमका परित्याग करके चले आये हैं, अतः हमारे लिये इस तरहकी मृत्यु अनिष्टकारक नहीं हो सकती । जल, अग्नि तथा वायुके संयोगसे अथवा उपवास करके प्राण त्यागना तपस्वियोंके लिये प्रशंसनीय माना गया है; इसलिये अब तुम शीघ्र यहाँसे चले जाओ । विलम्ब न करो' ॥ २७½ ॥

इत्युक्त्वा संजयं राजा समाधाय मनस्तथा ॥ २८ ॥
प्राङ्मुखः सह गान्धार्या कुन्त्या चोपाविशत् तदा ।

संजयसे ऐसा कहकर राजा धृतराष्ट्रने मनको एकाग्र किया और गान्धारी तथा कुन्तीके साथ वे पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये ॥ २८½ ॥

संजयस्तं तथा दृष्ट्वा प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ २९ ॥
उवाच चैनं मेधावी युङ्क्ष्वात्मानमिति प्रभो ।

उन्हें उस अवस्थामें देख मेधावी संजयने उनकी परिक्रमा की और कहा—'महाराज ! अब अपनेको योगयुक्त कीजिये ॥ २९½ ॥

ऋषिपुत्रो मनीषी स राजा चक्रेऽस्य तद् वचः ॥ ३० ॥
सन्निरुध्येन्द्रियग्राममासीत् काष्ठोपमस्तदा ।

महर्षि व्यासके पुत्र मनीषी राजा धृतराष्ट्रने संजयकी वह बात मान ली । वे इन्द्रियसमुदायको रोककर काष्ठकी भाँति निश्चेष्ट हो गये ॥ ३०½ ॥



गान्धारी च महाभागा जननी च पृथा तव ॥ ३१
दावाग्निना समायुक्ते स च राजा पिता तव ।
संजयस्तु महामात्रस्तस्माद् दावादमुच्यत ॥ ३२

इसके बाद महाभागा गान्धारी, तुम्हारी माता कु तथा तुम्हारे ताऊ राजा धृतराष्ट्र—ये तीनों ही दावाग्निमें ज कर भस्म हो गये; परंतु महामात्य संजय उस दावाग्नि जीवित बच गये हैं ॥ ३१-३२ ॥

गङ्गाकूले मया दृष्टस्तापसैः परिवारितः ।
स तानामन्त्र्य तेजस्वी निवेद्यैतच्च सर्वशः ॥ ३३
प्रययौ संजयो धीमान् हिमवन्तं महीधरम् ।

मैंने संजयको गङ्गातटपर तापसोंसे घिरा देखा है बुद्धिमान् और तेजस्वी संजय तापसोंको यह सब समाच बताकर उनसे विदा ले हिमालयपर्वतपर चले गये ॥ ३३½

एवं स निधनं प्राप्तः कुरुराजो महामनाः ॥ ३४
गान्धारी च पृथा चैव जनन्यौ ते विशाम्पते ।

प्रजानाथ ! इस प्रकार महामनस्वी कुरुराज धृतराष्ट्र त तुम्हारी दोनों माताएँ गान्धारी और कुन्ती मृत्युको प्र हो गयीं ॥ ३४½ ॥

यदृच्छयानुव्रजता मया राज्ञः कलेवरम् ॥ ३५
तयोश्च देव्योरुभयोर्मया दृष्टानि भारत ।

भरतनन्दन ! वनमें घूमते समय अकस्मात् रा धृतराष्ट्र तथा उन देवियोंके मृत शरीर मेरी दृष्टि पड़े थे ॥ ३५½ ॥

ततस्तपोवने तस्मिन् समाजग्मुस्तपोधनाः ॥ ३६
श्रुत्वा राज्ञस्तदा निष्ठां न त्वशोचन् गतीश्च ते ।

तदनन्तर राजाकी मृत्युका समाचार सुनकर बहुत- तपोधन उस तपोवनमें आये । उन्होंने उनके लिये को शोक नहीं किया; क्योंकि उन तीनोंकी सद्गतिके विषयमें उन मनमें संशय नहीं था ॥ ३६½ ॥

तत्राश्रौषमहं सर्वमेतत् पुरुषसत्तम ॥ ३७
यथा च नृपतिर्दग्धो देव्यौ ते चेति पाण्डव ।

पुरुषप्रवर पाण्डव ! जिस प्रकार राजा धृतराष्ट्र त उन दोनों देवियोंका दाह हुआ है, यह सारा समाचार मैं वहीं सुना था ॥ ३७½ ॥

न शोचितव्यं राजेन्द्र स्वतः स पृथिवीपतिः ॥ ३८
प्राप्तवानग्निसंयोगं गान्धारी जननी च ते ।

राजेन्द्र ! राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और तुम्हारी मात कुन्ती—तीनोंने स्वतः अग्निसंयोग प्राप्त किया था; अतः उन लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये ॥ ३८½ ॥

वैशम्पायन उवाच

ेतच्छ्रुत्वा च सर्वेषां पाण्डवानां महात्मनाम्॥ ३९॥
नेर्याणं धृतराष्ट्रस्य शोकः समभवन्महान्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! राजा धृतराष्ट्र-का यह परलोकगमनका समाचार सुनकर उन सभी महामना ाण्डवोंको बड़ा शोक हुआ ॥ ३९½ ॥

न्तःपुराणां च तदा महानार्तस्वरोऽभवत्॥ ४०॥
ौराणां च महाराज श्रुत्वा राज्ञस्तदा गतिम्।

महाराज ! उनके अन्तःपुरमें उस समय महान् आर्त-ाद होने लगा। राजाकी वैसी गति सुनकर पुरवासियोंमें ी हाहाकार मच गया ॥ ४०½ ॥

हो धिगिति राजा तु विक्रुश्य भृशदुःखितः॥ ४१॥
ऊर्ध्वबाहुः स्मरन् मातुः प्ररुरोद युधिष्ठिरः।

'अहो ! धिक्कार है !' इस प्रकार अपनी निन्दा करके ाजा युधिष्ठिर बहुत दुखी हो गये तथा दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर अपनी माताको याद करके फूट-फूटकर ोने लगे ॥ ४१½ ॥

भीमसेनपुरोगाश्च भ्रातरः सर्व एव ते॥ ४२॥
अन्तःपुरेषु च तदा सुमहान् रुदितस्वनः।
प्रादुरासीन्महाराज पृथां श्रुत्वा तथागताम्॥ ४३॥

भीमसेन आदि सभी भाई रोने लगे। महाराज ! कुन्तीकी वैसी दशा सुनकर अन्तःपुरमें भी रोने-बिलखनेका महान् शब्द सुनायी देने लगा ॥ ४२-४३ ॥

तं च वृद्धं तथा दग्धं हतपुत्रं नराधिपम्।
अन्वशोचन्त ते सर्वे गान्धारीं च तपस्विनीम्॥ ४४॥

पुत्रहीन बूढ़े राजा धृतराष्ट्र तथा तपस्विनी गान्धारीदेवीको इस प्रकार दग्ध हुई सुनकर सब लोग बारंबार शोक करने लगे ॥ ४४ ॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे मुहूर्तादिव भारत।
निगृह्य बाष्पं धैर्येण धर्मराजोऽब्रवीदिदम्॥ ४५॥

भरतनन्दन ! दो घड़ी बाद जब रोने-धोनेकी आवाज बंद हुई, तब धर्मराज युधिष्ठिर धैर्यपूर्वक अपने आँसू पोंछकर नारदजीसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि दावाग्निना धृतराष्ट्रादिदाहे सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें धृतराष्ट्र आदिका दावाग्निसे दाहविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

नारदजीके सम्मुख युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिके लौकिक अग्निमें दग्ध हो जानेका वर्णन करते हुए विलाप और अन्य पाण्डवोंका भी रोदन

युधिष्ठिर उवाच

तथा महात्मनस्तस्य तपस्युग्रे च वर्ततः।
अनाथस्येव निधनं तिष्ठत्स्वास्मासु बन्धुषु॥ १॥

युधिष्ठिर बोले—भगवन् ! हम-जैसे बन्धु-बान्धवोंके रहते हुए भी कठोर तपस्यामें लगे हुए महामना धृतराष्ट्रकी अनाथके समान मृत्यु हुई, यह कितने दुःखकी बात है ! ॥ १॥

दुर्विज्ञेया गतिर्ब्रह्मन् पुरुषाणां मतिर्मम।
यत्र वैचित्रवीर्योऽसौ दग्ध एवं वनाग्निना॥ २॥

ब्रह्मन् ! मेरा तो ऐसा मत है कि मनुष्योंकी गतिका ठीक-ठीक ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है; जब कि विचित्रवीर्यकुमार धृतराष्ट्रको इस तरह दावानलसे दग्ध होकर मरना पड़ा ॥२॥

यस्य पुत्रशतं श्रीमदभवद् बाहुशालिनः।
नागायुतबलो राजा स दग्धो हि दवाग्निना॥ ३॥

जिन बाहुबलशाली नरेशके सौ पुत्र थे, जो स्वयं भी दस हजार हाथियोंके समान बलवान् थे, वे ही दावानलसे जलकर मरे हैं, यह कितने दुःखकी बात है ! ॥ ३ ॥

यं पुरा पर्यवीजन्त तालवृन्तैर्वरस्त्रियः।
तं गृध्राः पर्यवीजन्त दावाग्निपरिकालितम्॥ ४॥

पूर्वकालमें सुन्दरी स्त्रियाँ जिन्हें सब ओरसे ताड़के पंखोंद्वारा हवा करती थीं, उन्हें दावानलसे दग्ध हो जानेपर गीधोंने अपनी पाँखोंसे हवा की है ॥ ४ ॥

सूतमागधसंघैश्च शयानो यः प्रबोध्यते।
धरण्यां स नृपः शेते पापस्य मम कर्मभिः॥ ५॥

जो बहुमूल्य शय्यापर सोते थे और जिन्हें सूत तथा मागधोंके समुदाय मधुर गीतोंद्वारा जगाया करते थे, वे ही महाराज मुझ पापीकी करतूतोंसे पृथ्वीपर सो रहे हैं ॥ ५ ॥

न च शोचामि गान्धारीं हतपुत्रां यशस्विनीम्।
पतिलोकमनुप्राप्तां तथा भर्तृव्रते स्थिताम्॥ ६॥

मुझे पुत्रहीना यशस्विनी गान्धारीके लिये उतना शोक

नहीं है, क्योंकि वे पातिव्रत्य-धर्मका पालन करती थीं; अतः पतिलोकमें गयी हैं ॥ ६ ॥

पृथामेव च शोचामि या पुत्रैश्वर्यमृद्धिमत् ।
उत्सृज्य सुमहद् दीप्तं वनवासमरोचयत् ॥ ७ ॥

मैं तो उन माता कुन्तीके लिये ही अधिक शोक करता हूँ, जिन्होंने पुत्रोंके समृद्धिशाली एवं परम समुज्ज्वल ऐश्वर्य-को ठुकराकर वनमें रहना पसंद किया था ॥ ७ ॥

धिग् राज्यमिदमस्माकं धिग् बलं धिक् पराक्रमम् ।
क्षत्रधर्मं च धिग् यस्मान्मृता जीवामहे वयम् ॥ ८ ॥

हमारे इस राज्यको धिक्कार है, बल और पराक्रमको धिक्कार है तथा इस क्षत्रिय-धर्मको भी धिक्कार है ! जिससे आज हमलोग मृतकतुल्य जीवन बिता रहे हैं ॥ ८ ॥

सुसूक्ष्मा किल कालस्य गतिर्द्विजवरोत्तम ।
यत् समुत्सृज्य राज्यं सा वनवासमरोचयत् ॥ ९ ॥

विप्रवर ! कालकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है, जिससे प्रेरित होकर माता कुन्तीने राज्य त्यागकर वनमें ही रहना ठीक समझा ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरस्य जननी भीमस्य विजयस्य च ।
अनाथवत् कथं दग्धा इति मुह्यामि चिन्तयन् ॥ १० ॥

युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुनकी माता अनाथकी भाँति कैसे जल गयी, यह सोचकर मैं मोहित हो जाता हूँ ॥

वृथा संतर्पितो वह्निः खाण्डवे सव्यसाचिना ।
उपकारमजानन् स कृतघ्न इति मे मतिः ॥ ११ ॥

सव्यसाची अर्जुनने जो खाण्डववनमें अग्निदेवको तृप्त किया था, वह व्यर्थ हो गया । वे उस उपकारको याद न रखनेके कारण कृतघ्न हैं—ऐसी मेरी धारणा है ॥ ११ ॥

यत्रादहत् स भगवान् मातरं सव्यसाचिनः ।
कृत्वा यो ब्राह्मणच्छद्म भिक्षार्थी समुपागतः ॥ १२ ॥
धिगग्निं धिक् च पार्थस्य विश्रुतां सत्यसंधताम् ।

जो एक दिन ब्राह्मणका वेश बनाकर अर्जुनसे भीख माँगने आये थे, उन्हीं भगवान् अग्निदेवने अर्जुनकी माँको जलाकर भस्म कर दिया । अग्निदेवको धिक्कार है ! अर्जुनकी जो सुप्रसिद्ध सत्यप्रतिज्ञता है, उसको भी धिक्कार है ! ॥ १२½ ॥

इदं कष्टतरं चान्यद् भगवन् प्रतिभाति मे ॥ १३ ॥
वृथाग्निना समायोगो यदभूत् पृथिवीपतेः ।

भगवन् ! राजा धृतराष्ट्रके शरीरको जो व्यर्थ (लौकिक) अग्निका संयोग प्राप्त हुआ, यह दूसरी अत्यन्त कष्ट देनेवाली बात जान पड़ती है ॥ १३½ ॥

तथा तपस्विनस्तस्य राजर्षेः कौरवस्य ह ॥ १४ ॥
कथमेवंविधो मृत्युः प्रशास्य पृथिवीमिमाम् ।

जिन्होंने पहले इस पृथ्वीका शासन करके अन्तमें वैसे कठोर तपस्याका आश्रय लिया था, उन कुरुवंशी राजर्षिको ऐसी मृत्यु क्यों प्राप्त हुई ? ॥ १४½ ॥

तिष्ठत्सु मन्त्रपूतेषु तस्याग्निषु महावने ॥ १५ ॥
वृथाग्निना समायुक्तो निष्ठां प्राप्तः पिता मम ।

हाय, उस महान् वनमें मन्त्रोंसे पवित्र हुई अग्नियोंके रहते हुए भी मेरे ताऊ लौकिक अग्निसे दग्ध होकर क्यों मृत्युको प्राप्त हुए ! ॥ १५½ ॥

मन्ये पृथा वेपमाना कृशा धमनिसंतता ॥ १६ ॥
हा तात ! धर्मराजेति समाक्रन्दन्महाभये ।

मैं तो समझता हूँ कि अत्यन्त दुर्बल हो जानेके कारण जिनके शरीरमें फैली हुई नस-नाड़ियाँतक स्पष्ट दिखायी देती थीं, वे मेरी माता कुन्ती अग्निका महान् भय उपस्थित होनेपर 'हा तात ! हा धर्मराज !' कहकर कातर पुकार मचाने लगी होंगी ॥ १६½ ॥

भीम पर्याप्नुहि भयादिति चैवाभिवाशती ॥ १७ ॥
समन्ततः परिक्षिप्ता माताभून्मे दवाग्निना ।

'भीमसेन ! इस भयसे मुझे बचाओ' ऐसा कहकर चारों ओर चीखती-चिल्लाती हुई मेरी माताको दावानलने जलाकर भस्म कर दिया होगा ॥ १७½ ॥

सहदेवः प्रियस्तस्याः पुत्रेभ्योऽधिक एव तु ॥ १८ ॥
न चैनां मोक्षयामास वीरो माद्रवतीसुतः ।

सहदेव मेरी माताको अपने सभी पुत्रोंसे अधिक प्रिय था; परंतु वह वीर माद्रीकुमार भी माको उस संकटसे बचा न सका ॥ १८½ ॥

तच्छ्रुत्वा रुरुदुः सर्वे समालिङ्ग्य परस्परम् ॥ १९ ॥
पाण्डवाः पञ्च दुःखार्ता भूतानीव युगक्षये ।

यह सुनकर समस्त पाण्डव एक दूसरेको हृदयसे लगाकर रोने लगे । जैसे प्रलयकालमें पाँचों भूत पीडित हो जाते हैं, उसी प्रकार उस समय पाँचों पाण्डव दुःखसे आतुर हो उठे ।

तेषां तु पुरुषेन्द्राणां रुदतां रुदितस्वनः ॥ २० ॥
प्रासादाभोगसंरुद्धे अन्वरौत्सीत् स रोदसी ॥ २१ ॥

वहाँ रोदन करते हुए उन पुरुषप्रवर पाण्डवोंके रोनेका शब्द महलके विस्तारसे अवरुद्ध हुए भूतल और आकाशमें गूँजने लगा ॥ २०-२१ ॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि युधिष्ठिरविलापे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें युधिष्ठिरका विलापविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

राजा युधिष्ठिरद्वारा धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती—इन तीनोंकी हड्डियोंको गङ्गामें प्रवाहित कराना तथा श्राद्धकर्म करना

नारद उवाच

ासौ वृथाग्निना दग्धो यथा तत्र श्रुतं मया।
चित्रवीर्यो नृपतिस्तत् ते वक्ष्यामि सुव्रत ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले रेश ! विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रका दाह व्यर्थ लौकिक) अग्निसे नहीं हुआ है। इस विषयमें मैंने वहाँ सा सुना था, वह सब तुम्हें बताऊँगा ॥ १ ॥

नं प्रविशतानेन वायुभक्षेण धीमता।
ग्नयः कारयित्वेष्टिमुत्सृष्टा इति नः श्रुतम् ॥ २ ॥

हमारे सुननेमें आया है कि वायु पीकर रहनेवाले वे द्धिमान् नरेश जब घने वनमें प्रवेश करने लगे, उस समय न्होंने याजकोंद्वारा इष्टि कराकर तीनों अग्नियोंको वहीं त्याग देया ॥ २ ॥

ाजकास्तु ततस्तस्य तानग्नीन्निर्जने वने।
समुत्सृज्य यथाकामं जग्मुर्भरतसत्तम ॥ ३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! तदनन्तर उनकी उन अग्नियोंको उसी निर्जन वनमें छोड़कर उनके याजकगण इच्छानुसार अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ३ ॥

स विवृद्धस्तदा वह्निर्वने तस्मिन्नभूत् किल।
तेन तद् वनमादीप्तमिति ते तापसाब्रुवन् ॥ ४ ॥

कहते हैं, वही अग्नि बढ़कर उस वनमें सब ओर फैल गयी और उसीने उस सारे वनको भस्मसात् कर दिया—यह बात मुझसे वहाँके तापसोंने बतायी थी ॥ ४ ॥

स राजा जाह्नवीतीरे यथा ते कथितं मया।
तेनाग्निना समायुक्तः स्वेनैव भरतर्षभ ॥ ५ ॥

भरतश्रेष्ठ ! वे राजा गङ्गाके तटपर, जैसा कि मैंने तुम्हें बताया है, उस अपनी ही अग्निसे दग्ध हुए हैं ॥ ५ ॥

एवमावेदयामासुर्मुनयस्ते ममानघ।
ये ते भागीरथीतीरे मया दृष्टा युधिष्ठिर ॥ ६ ॥

निष्पाप नरेश ! गङ्गाजीके तटपर मुझे जिनके दर्शन हुए थे, उन मुनियोंने मुझसे ऐसा ही बताया था ॥ ६ ॥

एवं स्वेनाग्निना राजा समायुक्तो महीपते।
मा शोचिथास्त्वं नृपतिं गतः स परमां गतिम् ॥ ७ ॥

पृथ्वीनाथ ! इस प्रकार राजा धृतराष्ट्र अपनी ही अग्निसे दाहको प्राप्त हुए हैं, तुम उन नरेशके लिये शोक न करो। वे परम उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥

गुरुशुश्रूषया चैव जननी ते जनाधिप।
प्राप्ता सुमहतीं सिद्धिमिति मे नात्र संशयः ॥ ८ ॥

जनेश्वर ! तुम्हारी माता कुन्तीदेवी गुरुजनोंकी सेवाके प्रभावसे बहुत बड़ी सिद्धिको प्राप्त हुई हैं, इस विषयमें मुझे कोई संदेह नहीं है ॥ ८ ॥

कर्तुमर्हसि राजेन्द्र तेषां त्वमुदकक्रियाम्।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैरेतदत्र विधीयताम् ॥ ९ ॥

राजेन्द्र ! अब अपने सब भाइयोंके साथ जाकर तुम्हें उन तीनोंके लिये जलाञ्जलि देनी चाहिये। इस समय यहाँ इसी कर्तव्यका पालन करना चाहिये ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः स पृथिवीपालः पाण्डवानां धुरंधरः।
निर्ययौ सहसोदर्यः सदारश्च नरर्षभः ॥ १० ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तब पाण्डव-धुरन्धर पृथ्वीपाल नरश्रेष्ठ युधिष्ठिर अपने भाइयों और स्त्रियोंके साथ नगरसे बाहर निकले ॥ १० ॥

पौरजानपदाश्चैव राजभक्तिपुरस्कृताः।
गङ्गां प्रजग्मुरभितो वाससैकेन संवृताः ॥ ११ ॥

उनके साथ राजभक्तिको सामने रखनेवाले पुरवासी और जनपदनिवासी भी थे। वे सब एकवस्त्र धारण करके गङ्गाजीके समीप गये ॥ ११ ॥

ततोऽवगाह्य सलिले सर्वे ते नरपुङ्गवाः।
युयुत्सुमग्रतः कृत्वा ददुस्तोयं महात्मने ॥ १२ ॥

उन सभी श्रेष्ठ पुरुषोंने गङ्गाजीके जलमें स्नान करके युयुत्सुको आगे रखते हुए महात्मा धृतराष्ट्रके लिये जलाञ्जलि दी ॥ १२ ॥

गान्धार्याश्च पृथायाश्च विधिवन्नामगोत्रतः।
शौचं निर्वर्तयन्तस्ते तत्रोषुर्नगराद् बहिः ॥ १३ ॥

फिर विधिपूर्वक नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए गान्धारी और कुन्तीके लिये भी उन्होंने जल-दान किया। तत्पश्चात् शौचसम्पादन या अशौचनिवृत्तिके लिये प्रयत्न करते हुए वे सब लोग नगरसे बाहर ही ठहर गये ॥ १३ ॥

प्रेषयामास स नरान् विधिज्ञानाप्तकारिणः।
गङ्गाद्वारं नरश्रेष्ठो यत्र दग्धोऽभवन्नृपः ॥ १४ ॥
तत्रैव तेषां कृत्यानि गङ्गाद्वारेऽन्वशात् तदा।
कर्तव्यानीति पुरुषान् दत्तदेयान्महीपतिः ॥ १५ ॥

नरश्रेष्ठ युधिष्ठिरने जहाँ राजा धृतराष्ट्र दग्ध हुए थे, उस स्थानपर भी हरद्वारमें विधि-विधानके जाननेवाले विश्वासपात्र मनुष्योंको भेजा और वहीं उनके श्राद्धकर्म करनेकी आज्ञा दी। फिर उन भूपालने उन पुरुषोंको दानमें देनेयोग्य नाना प्रकारकी वस्तुएँ अर्पित कीं॥ १४-१५॥

द्वादशेऽहनि तेभ्यः स कृतशौचो नराधिपः।
ददौ श्राद्धानि विधिवद् दक्षिणावन्ति पाण्डवः॥ १६॥

शौच-सम्पादनके लिये दशाह आदि कर्म कर लेनेके पश्चात् पाण्डुनन्दन राजा युधिष्ठिरने बारहवें दिन धृतराष्ट्र आदिके उद्देश्यसे विधिवत् श्राद्ध किया तथा उन श्राद्धोंमें ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणाएँ दीं॥ १६॥

धृतराष्ट्रं समुद्दिश्य ददौ स पृथिवीपतिः।
सुवर्णं रजतं गाश्च शय्याश्च सुमहाधनाः॥ १७॥
गान्धार्याश्चैव तेजस्वी पृथायाश्च पृथक् पृथक्।
संकीर्त्य नामनी राजा ददौ दानमनुत्तमम्॥ १८॥

तेजस्वी राजा युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीके लिये पृथक्-पृथक् उनके नाम ले-लेकर सोना, चाँदी, गौ तथा बहुमूल्य शय्याएँ प्रदान कीं तथा परम उत्तम दान दिया॥ १७-१८॥

यो यदिच्छति यावच्च तावत् स लभते नरः।
शयनं भोजनं यानं मणिरत्नमथो धनम्॥ १९॥
यानमाच्छादनं भोगान् दासीश्च समलंकृताः।
ददौ राजा समुद्दिश्य तयोर्मात्रोर्महीपतिः॥ २०॥

उस समय जो मनुष्य जिस वस्तुको जितनी मात्रामें लेना चाहता, वह उस वस्तुको उतनी ही मात्रामें प्राप्त कर लेता था। राजा युधिष्ठिरने अपनी उन दोनों माताओंके उद्देश्यसे शय्या, भोजन, सवारी, मणि, रत्न, धन, वाहन, वस्त्र, नाना प्रकारके भोग तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दासियाँ प्रदान कीं॥ १९-२०॥

ततः स पृथिवीपालो दत्त्वा श्राद्धान्यनेकशः।
प्रविवेश पुरं राजा नगरं वारणाह्वयम्॥ २१॥

इस प्रकार अनेक बार श्राद्धके दान देकर पृथ्वीपा राजा युधिष्ठिरने हस्तिनापुरनामक नगरमें प्रवेश किया।

ते चापि राजवचनात् पुरुषा ये गताभवन्।
संकल्प्य तेषां कुल्यानि पुनः प्रत्यागमंस्ततः॥ २२॥
माल्यैर्गन्धैश्च विविधैरर्चयित्वा यथाविधि।
कुल्यानि तेषां संयोज्य तदाचख्युर्महीपतेः॥ २३॥

जो लोग राजाकी आज्ञासे हरद्वारमें भेजे गये थे, उन तीनोंकी हड्डियोंको संचित करके वहाँसे फिर गङ्गाजी तटपर गये। फिर भाँति-भाँतिकी मालाओं और चन्दनों विधिपूर्वक उनकी पूजा की। पूजा करके उन सबको गङ्गाजी प्रवाहित कर दिया। इसके बाद हस्तिनापुरमें लौटकर उन्हों यह सब समाचार राजाको कह सुनाया॥ २२-२३॥

समाश्वास्य तु राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम्।
नारदोऽप्यगमद् राजन् परमर्षिर्यथेप्सितम्॥ २४॥

राजन्! तदनन्तर देवर्षि नारदजी धर्मात्मा राजा युधिष्ठि को आश्वासन देकर अभीष्ट स्थानको चले गये॥ २४॥

एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः।
वनवासे तथा त्रीणि नगरे दश पञ्च च॥ २५॥
हतपुत्रस्य संग्रामे दानानि ददतः सदा।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य च॥ २६॥

इस प्रकार जिनके पुत्र रणभूमिमें मारे गये थे, उ राजा धृतराष्ट्रने अपने जाति-भाई, सम्बन्धी, मित्र, बन्धु औ स्वजनोंके निमित्त सदा दान देते हुए (युद्ध समाप्त होनेके बाद पंद्रह वर्ष हस्तिनापुर नगरमें व्यतीत किये थे और तीन व वनमें तपस्या करते हुए बिताये थे॥ २६॥

युधिष्ठिरस्तु नृपतिर्नातिप्रीतमनास्तदा।
धारयामास तद् राज्यं निहतज्ञातिबान्धवः॥ २७॥

जिनके बन्धु-बान्धव नष्ट हो गये थे, वे राजा युधिष्ठि मनमें अधिक प्रसन्न न रहते हुए किसी प्रकार राज्यका भा सँभालने लगे॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते आश्रमवासिके पर्वणि नारदागमनपर्वणि श्राद्धदाने ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आश्रमवासिकपर्वके अन्तर्गत नारदागमनपर्वमें श्राद्धदानविषयक उन्तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

आश्रमवासिकपर्व सम्पूर्ण

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुल योग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	१०६१	(३४)	४६।।	११०७।।
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	१।।	×	×	१।।

आश्रमवासिकपर्वकी कुल श्लोकसंख्या—११०९।



साम्बके पेटसे यदुवंश-विनाशके लिये मूसल पैदा होनेका ऋषियोंद्वारा शाप